

कुण्डलिनी विज्ञान

एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान

पुस्तक~3

कुंडलिनी तांत्रिक योग को यौन-प्रवर्धन व वीर्य रूपांतरण की सहायता से दिखाता हिंदु शिवपुराण~संभोग से समाधि

प्रेमयोगी वज्र

कुण्डलिनी विज्ञान

एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान-3

लेखक- प्रेमयोगी वज्र

2022

पुस्तक परिचय

यह पुस्तक कुण्डलिनी विज्ञान श्रृंखला का तीसरा भाग (पुस्तक-3) है। इसका पहला और दूसरा भाग (पुस्तक-2) भी उपलब्ध है। यह ब्लॉग-पोस्टों का संकलित रूप है। इन पोस्टों को प्रेमयोगी वज्र ने लिखा है, जो एक रहस्यवादी योगी हैं। वह प्रबुद्ध है और साथ ही उसकी कुंडलिनी भी जागृत है। ये सभी पोस्टें कुंडलिनी से संबंधित हैं। एक पोस्ट एक अध्याय से मेल खाती है। प्रेमयोगी वज्र 4 साल पहले से, तब से कुंडलिनी के बारे में लिख रहे हैं, जब उनकी कुंडलिनी एक साल के लंबे कुंडलिनी योग ध्यान के बाद जागृत हुई थी। पुस्तक को वर्तमान तिथि तक कुंडलिनी विचारों या पोस्टों के साथ अद्यतन या अपडेट किया गया है। वह यह देखकर चकित हो गया कि कहीं भी कुंडलिनी का उल्लेख या वर्णन पूरी तरह से नहीं किया गया है। यहां तक कि कुंडलिनी को ठीक से परिभाषित भी नहीं किया गया था। उन्होंने कुंडलिनी जागरण के कई अनुभवों को खोजा और पढ़ा, लेकिन उन्हें वास्तविक और पूर्ण रूप में कोई नहीं मिला। यद्यपि उन्होंने पतंजलि योग सूत्र में कुंडलिनी के समतुल्य समाधि का उल्लेख पाया है, लेकिन इसका रहस्यवादी और प्राचीन तरीके से वर्णन किया गया है, जिसे आम जनता के लिए समझा जाना मुश्किल है। इसलिए इन कमियों से प्रेरित होकर, उन्होंने कुण्डलिनी से सम्बंधित हर चीज को जमीनी स्तर पर, सत्य, अनुभवात्मक, वैज्ञानिक, मूल, व्यावहारिक और सहज ज्ञान युक्त रखने के लिए बहुत सरल या बचकाने तरीके से कुंडलिनी के बारे में समझने और लिखने का फैसला किया। इस अद्भुत पुस्तक की उत्पत्ति के परिणामस्वरूप रहस्यात्मक कुण्डलिनी की लिए वास्तविक, ईमानदार और मानवीय प्रयास हुआ। इसीलिए यह पुस्तक कुण्डलिनी साधकों के लिए वरदान के रूप में प्रतीत होती है। चूँकि चकाचौंध पैदा करने वाली स्क्रीनों पर एक साथ इतने सारे ब्लॉग पोस्टों को पढ़ना सहज नहीं है, इसलिए उन पोस्टों को एक किंडल ई-बुक के रूप में प्रस्तुत किया गया, जो पढ़ने में आरामदायक और आनंददायक है। नतीजतन, यह पूरी तरह से आशा की जाती है कि पाठकों को यह पुस्तक आध्यात्मिक रूप से उत्थान करने वाली, सत्य की खोज करने वाली, और अत्यधिक आनंद देने वाली लगेगी।

लेखक परिचय

प्रेमयोगी वज्र का जन्म वर्ष 1975 में भारत के हिमाचल प्रान्त की एक सुन्दर व कटोरानुमा घाटी में बसे एक छोटे से गाँव में हुआ था। वह स्वाभाविक रूप से लेखन, दर्शन, आध्यात्मिकता, योग, लोक-व्यवहार, व्यावहारिक विज्ञान और पर्यटन के शौक़ीन हैं। उन्होंने पशुपालन व पशु चिकित्सा के क्षेत्र में भी प्रशंसनीय काम किया है। वह पोलीहाऊस खेती, जैविक खेती, वैज्ञानिक और पानी की बचत युक्त सिंचाई, वर्षाजल संग्रहण, किचन गार्डनिंग, गाय पालन, वर्मीकम्पोस्टिंग, वैबसाईट डिवेलपमेंट, स्वयंप्रकाशन, संगीत (विशेषतः बांसुरी वादन) और गायन के भी शौक़ीन हैं। लगभग इन सभी विषयों पर उन्होंने दस के करीब पुस्तकें भी लिखी हैं, जिनका वर्णन एमाजोन ऑथर सेन्ट्रल, ऑथर पेज, प्रेमयोगी वज्र पर उपलब्ध है। इन पुस्तकों का वर्णन उनकी निजी वैबसाईट demystifyingkundalini.com पर भी उपलब्ध है। वे थोड़े समय के लिए एक वैदिक पुजारी भी रहे थे, जब वे लोगों के घरों में अपने वैदिक पुरोहित दादा जी की सहायता से धार्मिक अनुष्ठान किया करते थे। उन्हें कुछ उन्नत आध्यात्मिक अनुभव (आत्मज्ञान और कुण्डलिनी जागरण) प्राप्त हुए हैं। उनके अनोखे अनुभवों सहित उनकी आत्मकथा विशेष रूप से "शरीरविज्ञान दर्शन- एक आधुनिक कुण्डलिनी तंत्र (एक योगी की प्रेमकथा)" पुस्तक में साझा की गई है। यह पुस्तक उनके जीवन की सबसे प्रमुख और महत्त्वाकांक्षी पुस्तक है। इस पुस्तक में उनके जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण 25 सालों का जीवन दर्शन समाया हुआ है। इस पुस्तक के लिए उन्होंने बहुत मेहनत की है। एमाजोन डॉट इन पर एक गुणवत्तापूर्ण व निष्पक्षतापूर्ण समीक्षा में इस पुस्तक को पांच सितारा, सर्वश्रेष्ठ, सबके द्वारा अवश्य पढ़ी जाने योग्य व अति उत्तम (एक्सेलेंट) पुस्तक के रूप में समीक्षित किया गया है। गूगल प्ले बुक की समीक्षा में भी इस पुस्तक को फाईव स्टार मिले थे, और इस पुस्तक को अच्छा (कूल) व गुणवत्तापूर्ण आंका गया था। इस पुस्तक का अंग्रेजी में मिलान "Love story of a Yogi- what Patanjali says" पुस्तक है। प्रेमयोगी वज्र एक रहस्यमयी व्यक्ति है। वह एक बहुरूपिए की तरह है, जिसका अपना कोई निर्धारित रूप नहीं होता। उसका वास्तविक रूप उसके मन में लग रही समाधि के आकार-प्रकार पर निर्भर करता है, बाहर से वह चाहे कैसा भी दिखे। वह आत्मज्ञानी (एनलाईटनड) भी है, और उसकी कुण्डलिनी भी जागृत हो चुकी है। उसे आत्मज्ञान की अनुभूति

प्राकृतिक रूप से / प्रेमयोग से हुई थी, और कुण्डलिनी जागरण की अनुभूति कृत्रिम रूप से / कुण्डलिनी योग से हुई। प्राकृतिक समाधि के समय उसे सांकेतिक व समवाही तंत्रयोग की सहायता मिली, जबकि कृत्रिम समाधि के समय पूर्ण व विषमवाही तंत्रयोग की सहायता उसे उसके अपने प्रयासों के अधिकाँश योगदान से प्राप्त हुई।

अधिक जानकारी के लिए, कृपया निम्नांकित स्थान पर देखें-

https://demystifyingkundalini.com/

©2020 प्रेमयोगी वज्र। सर्वाधिकार सुरक्षित।

वैधानिक टिप्पणी (लीगल डिस्क्लेमर)-

इस तंत्र-सम्मत पुस्तक को किसी पूर्वनिर्मित साहित्यिक रचना की नक़ल करके नहीं बनाया गया है। फिर भी यदि यह किसी पूर्वनिर्मित रचना से समानता रखती है, तो यह केवल मात्र एक संयोग ही है। इसे किसी भी दूसरी धारणाओं को ठेस पहुंचाने के लिए नहीं बनाया गया है। पाठक इसको पढ़ने से उत्पन्न ऐसी-वैसी परिस्थिति के लिए स्वयं जिम्मेदार होंगे। हम वकील नहीं हैं। यह पुस्तक व इसमें लिखी गई जानकारियाँ केवल शिक्षा के प्रचार के नाते प्रदान की गई हैं, और आपके न्यायिक सलाहकार द्वारा प्रदत्त किसी भी वैधानिक सलाह का स्थान नहीं ले सकतीं। छपाई के समय इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि इस पुस्तक में दी गई सभी जानकारियाँ सही हों व पाठकों के लिए उपयोगी हों, फिर भी यह बहुत गहरा प्रयास नहीं है। इसलिए इससे किसी प्रकार की हानि होने पर पुस्तक-प्रस्तुतिकर्ता अपनी जिम्मेदारी व जवाबदेही को पूर्णतया अस्वीकार करते हैं। पाठकगण अपनी पसंद, काम व उनके परिणामों के लिए स्वयं जिम्मेदार हैं। उन्हें इससे सम्बंधित किसी प्रकार का संदेह होने पर अपने न्यायिक-सलाहकार से संपर्क करना चाहिए।

कुंडलिनी-शिव विवाह ही साधारण लौकिक विवाह का उद्गम स्थान है

मित्रो, आप सभी को छठ पर्व की शुभकामनाएं। मैं हाल ही के एक लेख में बता रहा था कि हिंदू त्यौहारों वाली आध्यात्मिक संस्कृति प्रकृति की पुजारी है, और वातावरणीय प्रदूषण के विरुद्ध है। सूत्रों के अनुसार अभी जब 2-3 दिन पहले छठी देवी की पूजा करने के लिए कुछ महिलाएं दिल्ली की यमुना नदी के पानी के बीच में सूर्य को अर्घ्य देने के लिए खड़ी हुईं, तो दुनिया को यमुना के वास्तविक प्रदूषण का पता चला। यमुना का पानी काला था, और उस पर इतनी ज्यादा सफेद झाग तैर रही थी कि वह ध्रुवीय समुद्र के बीच में तैर रहे बर्फ के पहाड़ लग रहे थे। बताने की जरूरत नहीं है कि अब यमुना की सफाई के प्रयास जोरों से शुरु हो गए हैं। पर इसको करवाने के लिए अनजाने में ही व्हिसल ब्लोवर का काम उन हिन्दू परंपरावादी महिलाओं से हो गया जो अपनी जान को जोखिम में डालकर प्रकृति को सम्मान देने और उसकी पूजा करने के लिए ज़हरीली नदी में उतरीं। कुछ तथाकथित अत्याधुनिक लोग तो उन्हें रूढ़िवादी और अंधविश्वासी कह सकते हैं, पर उन्होंने वह काम कर दिखाया जिसे बड़े-बड़े आधुनिकतावादी और तर्कवादी भी न करे। यह एक छोटा सा उदाहरण है। प्रकृति प्रेमी हिंदूवाद की इसी तरह हर जगह बेकद्री होती हुई दिखती है, इसीलिए प्रकृति विनाश की तरफ जाती हुई प्रतीत होती है। मैं यहाँ किसी धर्मविशेष का पक्ष नहीं ले रहा हूँ, और न ही किसी विचारधारा का विरोध कर रहा हूँ, बल्कि जो सत्य घटना घटित हुई है, उसीका वर्णन और विश्लेषण कर रहा हूँ।

राजा हिमाचल मस्तिष्क का और उसका राज्य शरीर का प्रतीक है

शिवपुराण में आता है कि राजा हिमाचल ने विवाह महोत्सव के लिए अपने सभी संबंधी पर्वतों और नदियों को निमंत्रण दिया। विभिन्न प्रकार के अन्नों का भंडारण करवाया। चारों तरफ साज-सज्जा की गई। अपने राज्य के सभी लोगों के लिए खूब सुख-सुविधाएं वितरित कीं। उससे उसके पूरे राज्य के लोग प्रसन्न हो गए। प्रमुख ऋषियों को शिव के पास विवाह का निमंत्रण लेकर कैलाश मिलने भेजा। दरअसल राजा हिमाचल और उसका महल मस्तिष्क ही है। कैलाश सहस्रार चक्र है। धरती ही राजा हिमाचल का राज्य है। वह पूरा शरीर है। वैसे भी पर्वत को भूभृत कहते हैं। इसका मतलब है, धरती को पालने वाला। मस्तिष्क ही शरीर को पालता है। राजा हिमाचल सभी नदियों को अपने महल बुलाता है, मतलब मस्तिष्क शरीर की सभी नाड़ियों की ऊर्जा को अपनी तरफ आकर्षित करता है। वह सभी पर्वतों को भी न्यौता देता है, मतलब मस्तिष्क का मुख्य केंद्र अन्य छोटे-छोटे केंद्रों से संवेदना-शक्ति को इकट्ठा करके कुंडलिनी जागरण की सर्वोच्च संवेदना को अभिव्यक्त करता है। यही शिव विवाह है, और इसीको ही विभिन्न पर्वतों का शिवविवाह में सम्मिलित होना कहा गया है। पर्वतराज हिमाचल विभिन्न खाद्यान्नों का भंडारण करता है, मतलब मस्तिष्क शरीर की सारी ऊर्जा अपनी तरफ खींचता है। भोजन ही ऊर्जा है, ऊर्जा ही भोजन है। प्राण ऊर्जा की प्राप्ति के लिए ही भोजन किया जाता है। तभी तो कहते हैं कि अन्न ही प्राण है। राजा हिमाचल के पूरे राज्य की जनता धन-धान्य से युक्त होकर हर्षोल्लास से भर जाती है, मतलब मस्तिष्क में जब ऊर्जा की भरमार होती है, तब उससे ऐसे रसायन निकलते हैं, जो पूरे शरीर को लाभ पहुंचाते हैं। शरीर और ब्रह्मांड के बीच में इस तरह की समकक्षता पुस्तक 'शरीरविज्ञान दर्शन' में सर्वोत्तम रूप में दर्शाई गई है। शिवविवाह के दिन राज्य के सभी लोग विभिन्न भोगों की धाम खाते हैं, और विभिन्न विलासों का भरपूर आनन्द उठाते हैं। इसका मतलब है कि

कुंडलिनी जागरण वाले दिन पूरे शरीर में रक्तसंचार बढ़ जाता है। ऋषियों को आम आदमी के जैसे साधारण विवाह को इतने विस्तार से लिखने की क्या जरूरत थी, क्योंकि वे ज्यादातर खुद ब्रह्मचारी या अविवाहित होते थे, और कई तो गृहस्थी से दूर रहकर वनों में तप करते थे। कुंडलिनी के तो माता-पिता हैं, पर शिव के कोई नहीं। वह तो स्वयंभू परमात्मा हैं, इसीलिए शम्भु कहे जाते हैं। इससे जाहिर होता है कि यह साधारण विवाह नहीं है। कुंडलिनी जागरण को ही शिवविवाह के रूप में वर्णित किया गया है, ताकि गृहस्थी में बंधे हुए आमजन भी उसे समझ सके और उसे आसानी से प्राप्त कर सके।

हिमाचल राज्य का सर्वोच्च महल सहस्रार है, जहाँ पर शिव-शक्ति का वैवाहिक जोड़ा ही स्थायी रूप से निवास कर सकता है

उपरोक्तानुसार सप्तऋषियों को विवाह के निमंत्रण पत्र के साथ शिव के पास कैलाश भेजा। कैलाश सहस्रार चक्र है। वहाँ पर ही अद्वैतभाव रूपी शिव का निवासस्थान है। दरअसल प्राणोत्थान के बाद शरीर की ऊर्जा-नदी का प्रवाह सहस्रार की तरफ ही होता है। उससे स्वाभाविक है कि उस ऊर्जा के बल से सहस्रार क्षेत्र में अद्वैतभाव व आनन्द के साथ सुंदर चित्र प्रकट होते रहते हैं। यह भी स्वाभाविक ही है कि अधिकांशतः वे चित्र भी उन्हीं लोगों या वस्तुओं के बनते हैं, जिनके साथ अद्वैत भाव या आध्यात्मिक भाव जुड़ा होता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि कोई व्यक्ति उसी क्षेत्र में जाना चाहता है, जो क्षेत्र उसके अनुकूल या उसके जैसा हो। ऋषि-मुनियों से अधिक अद्वैतरूप या आध्यात्मिक कौन हो सकता है। इसीलिए उन आध्यात्मिक वस्तुओं या व्यक्तियों को सप्तर्षिओं के रूप में दिखाया गया है। वैसे वह गुरु, मंदिर का पुजारी, मंदिर, गाय, गंगा आदि कोई भी आध्यात्मिक वस्तु हो सकती है। शिवजी के नजदीक तो ये चीजें जाती हैं, और उन्हें कुंडलिनी के साथ एकाकार होने के लिए प्रेरित भी करती हैं, पर खुद शिव से एकाकार नहीं हो पातीं। इसीको इनके द्वारा शिव को उन्हीं के विवाह के लिए निमंत्रण देने के रूप में दिखाया गया है। विवाह किससे, कुंडलिनी से। शिव के साथ एकाकार न हो पाने के कारण ही इन्हें निमंत्रण देकर वापिस आते हुए दिखाया गया है। कोई भी चित्र शिव से जुड़े बिना निरन्तर सहस्रार में नहीं बना रह सकता, उसे जल्दी ही मस्तिष्क के निम्नतर ऊर्जा स्तर वाले निचले साधारण क्षेत्रों में आना ही पड़ता है। कुंडलिनी ही शिव के साथ एकाकार होने या जागृत होने के फलस्वरूप शिव के साथ कैलाश में निरंतर बनी रह पाती है। मतलब कि कुंडलिनी जागरण के बाद आदमी को अपनी आत्मा के साथ जुड़ी हुई कुंडलिनी का अनुभव सहस्रार चक्र में निरंतर होता रहता है। यही कुंडलिनी जागरण की सर्वप्रमुख खूबी है, और यही आदमी को मोक्ष की ओर ले जाती है।

प्राण ही सहस्रार में शिव-शक्ति का विवाह रचाते हैं

फिर आता है कि शिव के विवाह समारोह के लिए विश्वकर्मा ने अद्भुत व दिव्य विवाह मंडप, भवन व प्रांगण आदि बनाए। जड़ मूर्तियां सजीव लग रही थीं, और सजीव वस्तुएं जड़ मूर्तियां लग रही थीं। जल में स्थल का और स्थल में जल का भान हो रहा था। दरअसल कुंडलिनी जागरण के आसपास प्राणों के सहस्रार में होने के कारण सब कुछ अद्भुत व दिव्य लगता है। अतीव आनन्द की स्थिति होती है। चारों ओर शांति महसूस होती है। अद्वैत भाव चरम के करीब होता है, और कुंडलिनी जागरण के दौरान तो चरम पर पहुंच जाता है। सभी कुछ एक जैसा लगता है। भेद दृष्टि खत्म सी हो जाती है। यह नशे के जैसी मूढ़ अवस्था नहीं होती, पर परम चेतनता और आनन्द से भरी होती है। इसी आध्यात्मिक भाव को यहाँ उपरोक्त रोचक कथानक के रूप में दर्शाया गया है। जल का थल लगना या थल का जल लगना, मतलब जल और थल के बीच में अभेद का अनुभव। जड़ का चेतन की तरह दिखना व चेतन का जड़ की तरह दिखना, मतलब जड़ और चेतन के बीच में समानता नजर आना। हर जगह झाड़-बुहार के

पूरी तरह से साफ व निर्मल कर दी गई थी। इसका मतलब है कि सहस्रार में ही असली व पूर्ण निर्मलता का अनुभव होता है। बाहर से जितना मर्जी सफाई कर लो, यदि सहस्रार में प्राण नहीं हैं, तो सबकुछ मैला ही लगता है। इसी वजह से तो गाय के गोबर से पुते हुए आध्यात्मिक स्थान अति पवित्र महसूस होते हैं, क्योंकि आध्यात्मिकता के प्रभाव से सहस्रार चक्र प्राण से संपन्न होता है। जिन मूल्यवान भवनों में लड़ाई-झगड़ों का बोलबाला हो, वहां की चाकचौबंद सफाई भी रास नहीं आती, और वहाँ दम सा घुटता है। इसके विपरीत एक आध्यात्मिक साधु पुरुष की गोबर से लिपीपुती घासफूस की झौंपड़ी भी बड़ी आकर्षक व संजीदा लगती है।

कुंडलिनी और ब्रह्ममुहूर्त के अन्तर्सम्बन्ध से भूतों का विनाश

सभी मित्रों को गुरु नानक दिवस की हार्दिक शुभकामनाएं

कालरात्रि के चाँद गुरु नानक देव

मित्रो, इस वर्ष के गुरु नानक दिवस के उपलक्ष्य में अपने सिख भाई व पड़ौसी के यहाँ प्रभात-फेरी कथा में जाने का मौका मिला। बड़े प्यार और आदर से निमंत्रण दिया था, इसलिए कुंडलिनी की प्रेरणा से सुबह के चार बजे से पहले ही आंख खुल गई। जैसे ही तैयार होकर कथा में पत्नी के साथ पहुंचा, वैसे ही गुरुद्वारा साहिब से ग्रन्थ साहिब भी पहुंच गए। ऐसा लगा कि जैसे मुझे ही सेवादारी के लिए विशेष निमंत्रण मिला था। बहुत ही भावपूर्ण व रोमांचक दृश्य था। सुबह साढ़े चार बजे से लेकर साढ़े पांच बजे तक मधुर संगीत के साथ शब्द कीर्तन हुआ। अच्छा लगा। यह समय ब्रह्ममुहूर्त के समय के बीचोंबीच था, जो लगभग 4 बजे से 6 बजे तक रहता है। ऐसा लगा कि हम पूरी रातभर कीर्तन कर रहे हों। ऐसा ब्रह्ममुहूर्त की उच्च आध्यात्मिक ऊर्जा के कारण ही लगता है। इसीलिए आध्यात्मिक साधना के लिए यही समय सर्वोपरि निश्चित किया गया है। ब्रह्ममुहूर्त में आध्यात्मिक साधना से कुंडलिनी चरम के करीब पहुंच जाती है। मुझे भी कुछ ऐसा ही लगा। कथा-कीर्तन के अंत में हल्का जलपान भी हुआ। आदमी हर पल कुछ न कुछ सीखता है। सिख मतलब सीख। इससे सिद्ध हो जाता है कि यह धर्म अत्याधुनिक और वैज्ञानिक भी है, क्योंकि आजकल सीखने का ही तो युग है। इसी तरह से इसमें सेवादारी का भी बड़ा महत्त्व है। आजकल का उपभोक्तावाद, व्यावसायिक व प्रतिस्पर्धा का युग जनसेवा या पब्लिक सर्विस का ही तो युग है। आत्मसुरक्षा का भाव तो इस धर्म के मूल में है। यह भाव भी आजकल बहुत प्रासंगिक है, क्योंकि हर जगह झूठ-फरेब, और अत्याचार का बोलबाला दिखता है। ब्रह्ममुहूर्त के बारे में सुना तो बहुत था, पर खुद अच्छी तरह से अनुभव नहीं किया था। लोगों को जो इसकी शक्ति का पता नहीं चलता, उसका कारण यही है कि वे ढंग से साधना नहीं करते। शक्ति के पास बुद्धि नहीं होती। बुद्धि आत्मा या विवेक के पास होती है। यदि शक्ति के साथ विवेक-बुद्धि का दिशानिर्देशन है, तभी वह आत्मकल्याण करती है, नहीं तो उससे विध्वंस भी संभव है। उदाहरण के लिए पाकिस्तान को देख सकते हैं। सूत्रों के अनुसार पाकिस्तानी सेना निर्दोष व निहत्थी जनता को मारती है। कई बार यह देश कम, और दुष्प्रचार करने वाली मशीन ज्यादा लगता है। बन्दर के हाथ उस्तरा लग जाए, तो अंजाम कुछ भी हो सकता है। शक्ति तो एक धक्का है। यदि मन में पहले से ही कचरा है, तो शक्ति से उसीको धक्का मिलेगा, जिससे वह और ज्यादा फैल जाएगा। इससे तो आदमी ब्रह्ममूहूर्त में जागने से भी तौबा करेगा। यदि मन में कुंडलिनी है, तो विकास का धक्का कुंडलिनी को ही मिलेगा। मेरा जन्म से ही एक हिंदु परिवार से सम्बन्ध रहा है। मेरे दादाजी एक प्रख्यात हिंदु पुरोहित थे। मैंने कई वर्षों तक उनके साथ एक शिष्य की तरह काम किया है। लगता है कि वे अनजाने में ही मेरे गुरु बन गए थे। मुझे तो हिंदु धर्म और सिख धर्म एकजैसे ही लगे। दोनों में धर्मध्वज, ग्रन्थ और गुरु का पूजन या सम्मान समान रूप से किया जाता है। दरअसल, भीतर से सभी धर्म एकसमान हैं, कुछ लोग बाहर-2 से भेद करते हैं। तंत्र के अनुसार, कुंडलिनी ही गुरु है, और गुरु ही कुंडलिनी है। हाँ, क्योंकि सिक्ख धर्म धर्मयौद्धाओं से जुड़ा हुआ है, इसलिए इसमें पारम्परिक हिंदु धर्म की अपेक्षा थोड़ी ज्यादा संक्षिप्तता, व्यावहारिकता और कट्टरता होना स्वाभाविक ही है। पर वह भी कुछ विशेष धर्मों के सामने तो नगण्यतुल्य ही है। हालांकि सिक्ख धर्म बचाव पक्ष को लेकर बना है, आक्रामक पक्ष को लेकर नहीं। यदि कभी आक्रामक हुआ भी

है, तो अपने और हिंदु धर्म के बचाव के लिए ही हुआ है, अन्यथा नहीं। मैं यहाँ किसी धर्मविशेष का पक्ष नहीं ले रहा हूँ। हम सभी धर्मों का सम्मान करते हैं। केवल मानवीय सत्य को स्पष्ट कर रहा हूँ। युक्तिपूर्ण विचार व लेखन से सत्य ज्यादा स्पष्ट हो जाता है। कुछ न कुछ कट्टरता तो सभी धर्मों में है। कुछ सकारात्मक कट्टरता तो धर्म के लिए जरूरी भी है, पर यदि वह मानवता और सामाजिकता के दायरे में रहे, तो ज्यादा बेहतर है, जिसके लिए सिक्ख धर्म अक्सर जाना और माना जाता है। मध्ययुग में जिस समय जेहादी आक्रांताओं के कारण भारतीय उपमहाद्वीप अंधेरे में था, उस समय ईश्वर की प्रेरणा से पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्रमा की तरह गुरु नानकदेव का अभ्युदय हुआ था, जिसने भयजनित अंधेरे को सुहानी चांदनी में तब्दील कर दिया था।

भगवान शिव भूतों से भरी रात के बीच में पूर्ण चन्द्रमा की तरह प्रकाशमान रहते हैं

किसी धार्मिक क्रियाकलाप में प्रकाशमान भगवान के साथ उसका साया अंधेरा भी प्रकट हो सकता है। क्योंकि प्रकाश और अंधकार साथसाथ रहते हैं। अंधेरे को शिव का भूतगण समझकर सम्मानित करना चाहिए, क्योंकि वह शिव के साथ ही आया। चान्द के साथ रात तो होती ही है। उससे डरना नहीं चाहिए। इससे शक्तिशाली अद्वैत पैदा होता है, जो कुंडलिनी जागरण में सहायक होता है। दरअसल धार्मिक विद्वेष के लिए यही भूत जिम्मेदार होते हैं, शिव नहीं। आपने भी देखा या सुना ही होगा कि अमुक आदमी बहुत ज्यादा धार्मिक बनने के बाद अजीब सा हो गया। कई बार आदमी गलत काम भी कर बैठता है। मेरा एक रिश्तेदार है। वह गाँव के ही अपने एक मित्र के साथ निरन्तर धार्मिक चर्चाएँ करता रहता था। उन दोनों को इकट्ठा देखकर गांव की महिलाएं उनका मजाक उड़ाते हुए आपस में बतियाने लगतीं कि देखो सखियो, अब श्रीमद्भागवत पुराण का कथा-प्रवचन शुरु होने वाला है। कुछ समय बाद मेरे रिश्तेदार के उस मित्र ने अचानक आत्महत्या कर ली, जिससे सभी अचम्भित हो गए, क्योंकि उसमें अवसाद के लक्षण नहीं दिखते थे। अति सर्वत्र वर्जयेत। हो सकता है कि सतही धार्मिकता ने एक पर्दे का काम किया, और उसके अवसाद को ढक कर रखा। उस अपूर्ण धार्मिकता ने उसके मुंह पर नकली मुस्कान पैदा कर दी। हो सकता है कि अगर वह अधूरी आध्यात्मिकता का चोला न पहनता, तो लोग उसके अंदरूनी अवसाद के लिए जिम्मेदार समस्या को जान जाते, और उसे उससे अवगत कराते और उसका हल भी सुझाते। उससे वह घातक कदम न उठाता। तभी तो कहा गया है कि लिटल नॉलेज इज ए डेंजरस थिंग। इसके विपरीत अगर उसने आध्यात्मिकता को पूर्णता के साथ अपनाया होता, तो उसका अवसाद तो मिट ही जाता, साथ में उसे कुंडलिनी जागरण भी प्राप्त हो जाता। धार्मिकता या आध्यात्मिकता की चरमावस्था व पूर्णता तांत्रिक कुंडलिनी योग में ही निहित है। तांत्रिक कुण्डलिनी योग सिर्फ एक नाम या प्रतीक या तरीका है एक मनोवैज्ञानिक तथ्य का। इस आध्यात्मिक व मनोवैज्ञानिक सिद्धांत को धरातल पर उतारने वाले अन्य नाम, प्रतीक या तरीके भी हो सकते हैं। हिंदु ही क्यों, अन्य धर्म भी हो सकते हैं। ऐसा है भी, पर उसे हम समझते नहीं, पहचानते नहीं। जब सभी धर्मों व जीवनव्यवहारों का वैज्ञानिक रूप से गम्भीर अध्ययन किया जाएगा, तभी पूरा पता चल पाएगा। इसलिए जब तक पता नहीं चलता, तब तक हिंदु धर्म के कुंडलिनी योग से काम चला लेना चाहिए। हमें पीने के लिए शुद्ध जल चाहिए, वह जहां मर्जी से आए, या उसका जो मर्जी नाम हो। अध्यात्म की कमी का कुछ हल तंत्र ने तो ढूंढा था। उसने भूतबलि को पंचमकार के एक अंग के रूप में स्वीकार किया। यह गौर करने वाली बात है कि सिक्ख धर्म मे पंचककार होते हैं। ये पाँच चीजें होती हैं, जिनके नाम क अक्षर से शुरु होते हैं, और जिन्हें एक सिक्ख को हमेशा साथ रखना पड़ता है। ये पाँच चीजें हैं, केश, कड़ा, कंघा, कच्छा और कटार। इससे ऐसा लगता है कि उस समय वामपंथी तंत्र का बोलबाला था, जिससे पंचमकार की जगह पँचककार प्रचलन में आया। भूतबलि, मतलब भूत के लिए बलि। इससे भूत संतुष्ट होकर शांत हो जाते हैं। एकबार मुझे कुछ समय के लिए ऊंचे हिमालयी क्षेत्रों में रहने का मौका मिला।

वहाँ पर घर-घर में जब देवता बुलाया जाता है, तो उसे पशुबलि भी दी जाती है। पूछने पर वहाँ के स्थानीय लोगों ने बताया कि वह बलि देवता के लिए नहीं, बल्कि उसके साथ आए वजीर आदि अनुचरों के लिए होती है। देवता का आहार-विहार तो सात्विक होता है। तो वे अनुचर एकप्रकार से शिवगण या भूत ही हुए, और देवता शिव हुए। आजकल भी इसी तर्ज पर बहुत से चतुर लोग दफ्तर के बाबुओं को खुश करके बहुत से काम निकाल लेते हैं, अधिकारी बस देखते ही रह जाते हैं। दरअसल बलिभोग ऊर्जा के भंडार होते हैं। उसमें तमोगुण भी होता है। ऊर्जा और तमोगुण के शरीर में प्रविष्ट होने से जरूरत से ज्यादा बढ़ा हुआ सतोगुण संतुलित हो जाता है, और मन में एक अद्वैत सा छा जाता है। संतुलन जरूरी है। जरूरत से ज्यादा ऊर्जा और तमोगुण से भी काम खराब हो जाता है। अद्वैत भाव को धारण करने के लिए भी शरीर को काफी ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। अद्वैत भाव पैदा होने से फिर से सतोगुण बढ़ने लगता है। तमोगुण की सहायता से सतोगुण को पैदा करना, वामपंथी शैवों व तांत्रिकों का सम्भवतः यही एक दिव्य फार्मूला है। मूलाधार चक्र तमोगुण का प्रतीक है, और सहस्रार चक्र सतोगुण का प्रतीक है। पहले तमोगुण से कुंडलिनी को मूलाधार पर आने दिया जाता है। फिर तांत्रिक कुंडलिनी योग से उसे सहस्रार तक सीधे ही उठाया जाता है। उससे एकदम से सतोगुण बढ़ जाता है, हालांकि संतुलन या अद्वैत के साथ। कुंडलिनी योग से कुंडलिनी को मन में बना कर रखने के अनगनित लाभों में से गुण-संतुलन का लाभ भी एक है। क्योंकि कुंडलिनी पूरे शरीर में माला के मनके की तरह घूमते हुए तीनों गुणों का संतुलन बना कर रखती है। सारा खेल ऊर्जा या शक्ति का ही है। तभी तो कहते हैं कि शक्ति से ही शिव मिलता है। वैसे ऊर्जा और गुण-संतुलन या अद्वैत को प्राप्त करने के और भी बहुत से सात्विक तरीके हैं, जिनसे अध्यात्म शास्त्र भरे पड़े हैं। ऐसी ही एक आधुनिक पुस्तक है, "शरीरविज्ञान दर्शन~एक आधुनिक कुंडलिनी तंत्र"। भूत तब प्रबल होकर परेशान करते हैं, जब शिव का ध्यान या पूजन ढंग से नहीं किया जाता। जब इसके साथ अद्वैत भाव जुड़ जाता है, तब वे शांत होकर गायब हो जाते हैं। दरअसल वे गायब न होकर प्रकाशमान शिव में ही समा जाते हैं। भूत एक छलावा है। भूत एक साया है। भूत का अपना कोई अस्तित्व नहीं है। भूत मन का भ्रम है, जो दुनिया की मोहमाया से पैदा होता है। इसका मतलब है कि भूत अद्वैतभाव रखना सिखाते हैं। इसलिए वे शिव के अनुचर ही हुए, क्योंकि वे सबको अपने स्वामी शिव की तरह अद्वैतरूप बनाना चाहते हैं। उन्हें अपने स्वामी शिव के सिवाय कुछ भी अच्छा नहीं लगता। शिवपुराण में इस रूपक को कथाओं के माध्यम से बड़ी मनोरंजकता से प्रस्तुत किया गया है। इन्हीं भूतों को बौद्ध धर्म में रैथफुल डाईटी कहते हैं, जो ज्ञानसाधना के दौरान साधक को परेशान करते हैं। इनको डरावनी आकृतियों के रूप में चित्रित किया जाता है।

कुंडलिनी भी एक भूत है~ एक पवित्र भूत

दोस्तो, मैं पिछली पोस्ट में बता रहा था कि भूत क्या होते हैं। कुछ लोगों ने सवाल किया कि अंग्रेजी में इसे घोस्ट शब्द में क्यों ट्रांसलेट किया है, घोस्ट का कोई आध्यात्मिक महत्व नहीं। मैंने कहा कि यह गूगल ने ट्रांसलेट किया है, मैंने नहीं। दरअसल हम शब्दों में ज्यादा उलझे रहते हैं, मूल भावना को कम समझने की कोशिश करते हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक कमजोरी है। पर उनकी बात भी सही है।जो वास्तविक शाब्दिक अर्थ भूत शब्द का बनता है, वह घोस्ट शब्द का बनता ही नहीं। भूत मन ही है। यही आदमी को डराता है, ताकि आदमी सीधे रास्ते पर चले। भटके हुए मन के विविध रूप ही विविध प्रकार के भूत हैं। किसी के पेट पर आँख है, कोई अनगिनत भुजाओं वाला है, कोई अनगिनत टांगों वाला है आदि। समुद्री जीव भी तो ऐसे ही विविध व आश्चर्यजनक रूपों वाले होते हैं। उनके अंदर भी भटका हुआ मन है। वही अजीब मन ही अजीब किस्म का भूत है, जो अजीब शरीर को ही अपने रहने के लिए चुन पाता है। शरीर के मरने के बाद भी मन नहीं मरता। मन भी आत्मा की तरह ही अमर है। मन मर नहीं सकता, केवल आत्मा में विलीन ही हो सकता है। शरीर के न रहने पर मन अजीब से घने अंधकार का रूप ले लेता है। वह काले कज्जल की तरह घना और चमकीला सा होता है। उसमें उसकी शुरु से लेकर सारी सूचनाएं मनोवैज्ञानिक कोड के़ रूप में दर्ज होती हैं। वे इतनी स्पष्ट होती हैं कि यदि कोई अपनी जानपहचान वाले आदमी का भूत देख ले तो तुरंत पहचान जाता है कि वह उसका भूत है। यहाँ तक कि जीव की वे़ व्यक्तिगत सूचनाएं उसके भूत में उसके अपने जीवित समय के शरीर से भी ज्यादा स्पष्ट व प्रत्यक्ष होती हैं। दरअसल भूत मन में प्रत्यक्ष की तरह महसूस होता है। दिमाग उससे प्रेरित होकर भूत के रूप के अनुसार चित्र बना लेता है। दिमाग के ट्रिकस सबको पता ही हैं। वह हमें लगता है कि आंखों से दिख रहा है, पर होता वह दिमाग में है। आदमी समझता है कि सिर्फ मरने के बाद ही भूत बनते हैं। दरअसल जिंदा जीव या आदमी भी भूत ही है। भूत का शाब्दिक अर्थ ही "पैदा होया हुआ पदार्थ" है। न तो भगवान पैदा होता है, न ही प्रकृति। दोनों अनादि व अनंत हैं। केवल जीव ही परमात्मा से पैदा होता है, और उसीमें विलीन भी होता है। पैदा भी नहीं होता। असल में यह उसकी परछाई की तरह है। परछाई केवल महसूस होती है। परछाई का अस्तित्व नहीं होता। ऐसा ही भूत भी है। इसलिए जीव ही भूत है। मृत भूत ही लोगों को डरावना लगता है, क्योंकि उसका शरीर नहीं होता। अब यदि कोई आसमान में बिना लकड़ी की आग देख ले, तो वह डरेगा ही कि यह क्या हुआ।

धर्म के लिए कुछ कट्टरता जरूरी भी है

फिर मैं यह बात भी बता रहा था कि जहाँ अति कट्टरता हानिकारक है, वहीं थोड़ी कट्टरता या थोड़ा हठ धर्म के लिए जरूरी भी है। यदि आप नियमित कुंडलिनी योग करने का हठ नहीं पकड़ोगे, तो कर ही नहीं पाओगे। कभी यह बहाना बनाओगे कि उस दिन आपने इसलिए नहीं किया क्योंकि उस दिन आप विवाह या बारात में गए थे। यदि आप कट्टर होते तो थोड़ी देर के लिए एकांत ढूंढ कर जरूर कुंडलिनी योग करते। कभी आप यह बहाना बनाओगे कि उस दिन मैं शहर गया था जहाँ जगह की कमी थी। यदि आप कट्टर होते तो कुर्सी पर भी कर लेते। कभी यह बहाना बनाओगे कि उस दिन आप देर रात को घर पहुंचे, इसलिए योग नहीं कर पाए। पर यदि आप हठी होते तो चाहे कम समय के लिए करते, पर करते जरूर। कभी आप बहाना बनाओगे कि उस दिन आपने खाना खा लिया था या आप बीमार थे। पर आप हल्के आसन और हल्के प्राणायाम भी कर सकते थे। साथ में, समस्याओं के बीच में भी कुंडलिनी योग करने से तो कुंडलिनी लाभ कई गुना बढ़ जाता है। इस तरह से यदि सकारात्मक कट्टरता न हो, तो बहाने खत्म ही नहीं होते, जिससे आदमी साधना पे अडिग नहीं रह पाता।

अगर पूजा ही सबकुछ होती, तो पूजा करने वालों के साथ दुखदायी घटनाएं न घटित हुआ करतीं

पूजा साधन है, साध्य नहीं। साध्य अद्वैत है। वही ईश्वर है। पूजा से भक्ति बढ़ती है, और भक्ति से अद्वैत। अद्वैत के साथ कुंडलिनी अवश्य रहती है। यह तो सभी जानते हैं कि कुंडलिनी हमेशा मंगल ही करती है। वैसे उसमें अद्वैत का ही अधिकांश योगदान है, जो कुंडलिनी से पैदा होता है। अद्वैत से कुंडलिनी, और कुंडलिनी से अद्वैत, ये दोनों एकदूसरे को बढ़ाते रहते हैं। अद्वैत से आदमी संतुलित और ऊर्जा से भरा रहता है, इससे बुद्धि अच्छे से काम करती है। अद्वैत से विचारों के शोर पर लगाम लगती है, जिससे ऊर्जा की बर्बादी नहीं होती। एकबार मैं किसी लघु जानपहचान वाले के घर एक व्यावसायिक कार्य से उसके द्वारा बुलाने पर गया था। उस घर का एक सदस्य जो मुझे मित्र के जैसा लगता था, वह मुझे अपने साथ ले गया था। वहाँ उसके नवयुवक भाई से तब बात हुई, जब उसने मेरा अभिवादन किया। उसके चेहरे पर मुझे एक विचित्र सा तेज नजर आ रहा था। उसका नाम भी शिव के नाम से जुड़ा था। इसलिए मैंने अनजाने में ही खुशी और मुस्कुराहट के साथ उसकी तुलना शिव से कर दी। दरअसल स्वभाव भी उसका कुछ वैसा ही था। उससे वह भी मुस्कुराया, और परिवार के अन्य लोग भी। आकर्षक, शर्मीला, मां-बाप का विशेष लाड़ला और मेहनती लड़का था वह। उसके एक या दो दिन बाद वह अपने स्कूल टाईम के मित्र के साथ उसकी एकदम नई खरीदी मोटरसाइकिल पर उत्साह से भरा हुआ कहीं घूमने चला गया। सम्भवतः उसका वह दोस्त बाइक चलाना सीख ही रहा था। रास्ते में वे एक प्रख्यात शिव व स्थानीय देवता के मंदिर में दर्शन के लिए रुके। सम्भवतः नई गाड़ी की पूजा करवाना ही मुख्य उद्देश्य था वहाँ रुकने का। वहां से शहर घूमने निकले तो रास्ते में एक ट्रैक्टर ट्रॉली के पिछले हिस्से से टकरा गए। राइडर तो बच गया, पर पीछे बैठे उस नवयुवक ने मौके पर ही दम तोड़ दिया। इससे यह भी पता लगता है कि बच्चों को बचपन में ही साइकिल आदि दोपहिया वाहनों का अच्छा प्रशिक्षण मिलना चाहिए। आम आदमी सोचता है कि बच्चा बड़ा होकर खुद सीख जाएगा, पर कई बार तब तक काफी देर हो चुकी होती है। चोरी छिप के चलाने वाले या सीखने वाले कुछ अन्य किशोरों में भी मैंने ऐसे हादसे देखे हैं। हो सकता है कि मेरे अवचेतन मन पर शिव के भूतों का प्रभाव पड़ा हो, जिससे शिव वाली बात मेरे मुंह से निकली हो। यह भी हो सकता है कि शक्तिशाली अद्वैत साधना से मेरे अवचेतन मन को घटना का पूर्वाभास हो गया हो। हालाँकि उस समय मैं कोई विशेष व नियमित योगसाधना नहीं करता था। मेरा काम करने का तरीका ही ऐसा था कि उससे खुद ही योगसाधना हो जाती थी। उस तरीके का सविस्तार वर्णन पुस्तक "शरीरविज्ञान दर्शन~ एक आधुनिक कुंडलिनी तंत्र" में मिलता है। परिवार वाले हैरान होकर सोचते कि शिवनाम का सहारा होने पर भी वह बड़ा हादसा कैसे हो गया। होता भी, तो जान तो बच ही जाती। फिर यह मानकर संतुष्ट हो जाते कि उसे शिवनाम से मुक्ति मिल गई होगी। अब ये तो किसको पता कि क्या हुआ होगा पर इतना जरूर है कि पूजा लापरवाही को नहीं भर सकती। भौतिक कमियां केवल भौतिक साधनों से ही पूरी की जा सकती है। पूजा से सहयोग तो मिलता है, पर उसकी भी अपनी सीमाएं हैं। मन को बेशक लगे कि ऑल इज वैल, पर लगने और होने में फर्क है। अच्छा लगना और अच्छा होना। फील गुड एण्ड बींग गुड़। हालांकि दोनों आपस में जुड़े हैं, पर एक निश्चित सीमा तक ही। उसके परिवार वाले यह भी कहते कि वह पिछले कुछ समय से अजीब-अजीब सी और अपने स्वयं के बारे में दुनिया से जाने वाली जैसी बातें भी करता था। होनी ही वैसी रही होगी। उसके पिता जो अक्सर बीमार रहते थे, वे भी अपने बेटे के गम में कुछ दिनों के बाद चल बसे। जो कुछ भी हुआ, उससे पगलाए जैसे उसके भाई से मेरी मित्रता टूट जैसी चुकी थी। कुछ डिस्टर्ब जैसा तो वह पहले भी लगा करता था, पर उतना नहीं। कई बार वह यह सोचने लग जाता था कि कहीं उसके भाई को मंदिर में किसी काले तंत्र ने बलि का बकरा न बनाया हो। दुखी मन क्या नहीं सोचता। उसका सदमा मुझे भी काफी लगा और कुछ समय मुझे भी डिप्रेशन की गोलियाँ खानी पड़ीं, जिसको लेने के कुछ अन्य कारण भी थे, हालांकि मेरे स्वनिर्मित अद्वैत दर्शन और उसके अनुसार मेरी काम करने की

आदत ने मुझे जल्दी ही संभाल लिया। मुझे महसूस हुआ कि डिप्रेशन की दवाइयां भी अद्वैत ही पैदा करवाती हैं, हालाँकि जबरदस्ती से और कुछ घटिया गुणवत्ता के साथ और स्मरणशक्ति व कार्यदक्षता के ह्रास के साथ। साथ में, शरीर और दिमाग को भी हानि पहुंचाती हैं। जब मूलतः अद्वैत से ही अवसाद दूर होता है, तब क्यों न कुंडलिनी की सहायता ली जाए, क्यों भौतिक दवाइयों की आदत डाली जाए। मैंने ऐसे सहव्यवसायी भी देखे हैं, जिन्हें इन दवाओं की आदत है। वे कुछकुछ मरीजों, खासकर मानसिक मरीजों की तरह लगते हैं। भगवान करे, ऐसे हादसे किसी के साथ न हों।

अवसाद भूत का छोटा भाई है, जिसे कुंडलिनी ही सर्वोत्तम रीति से भगा सकती है

वैसे तो ईश्वर के सिवाय सभी कुछ भूत है, पर लोकव्यवहार में शरीररहित जीवात्मा को ही भूत माना जाता है। अवसाद की अवस्था भी शरीररहित अवस्था से मिलती जुलती है। इसमें शरीर के विविध सुखों का अनुभव घट जाता है। सम्भवतः यही प्रमुख कारण है कि अवसादग्रस्त व्यक्ति में आत्महत्या करने की प्रवृत्ति ज्यादा होती है। अवसाद में कुंडलिनी योग एक जीवनरक्षक की भूमिका निभा सकता है। अवसादरोधी दवाओं से भी अद्वैत या कुंडलिनी ज्यादा स्पष्ट हो जाती है। मतलब कि अवसादरोधी दवाएं भी कुंडलिनी सिद्धांत से ही काम करती हैं। इसका वैज्ञानिक अन्वेषण होना चाहिये। मुझे लगता है कुण्डलिनी के प्रारंभिक अन्वेषण के लिए इनका इस्तेमाल विशेषज्ञ चिकित्सक की निगरानी में थोड़े समय के लिए किया जा सकता है। मुझे यह भी लगता है कि भांग भी यही काम करती है, इसीलिए योगी साधु इनका समुचित व नियंत्रित सेवन किया करते थे। कुंडलिनी ही शरीर के सभी सुखों का स्रोत या आधार है। इससे मस्तिष्क में भौतिक सुखों को अनुभव कराने वाले रसायन बनने लगते हैं। हम मन के रूप में ही भौतिक सुखों को अनुभव कर सकते हैं, सीधे नहीं। कुंडलिनी उच्च कोटि का संवर्धित और परिष्कृत मन ही तो है। इससे भौतिक वस्तुओं के बिना ही भौतिक सुख जैसा सुख मिलने लगता है। सीधा सा मतलब है कि कुंडलिनी भौतिक सुखों के लिए भौतिक सुविधाओं को बाईपास करने वाला अनूठा तरीका है। मुझे यह कुंडलिनी लाभ एकबार नहीं, अनेक बार मिला है। सबको मिलता है, पर वे इसकी गहराई में नहीं जाते। भारत कभी कुंडलिनी योग प्रधान देश था, तभी तो यह भौतिकवाद के बिना भी सर्वाधिक विकसित होता था।

अद्वैत का सबसे व्यावहारिक तरीका हमेशा अपने को संपूर्ण का हिस्सा मानना है

कोई उसे परमात्मा कहता है, कोई ईश्वर, कोई गॉड और कोई और कुछ। पर व्यावहारिकता में उसे संपूर्ण कम ही लोग मानते हैं। कई लोग मानते हैं, यद्यपि बाहर-बाहर से ही, क्योंकि अगर उनके सामने कोई भूखा या लाचार कुत्ता आ जाए, तो वे उसे गाली दे सकते हैं, या डंडा मार सकते हैं। फिर कैसा सम्पूर्ण का ध्यान या पूजन हुआ, जब उसके एक हिस्से से नफरत कर रहे हैं। इसलिए सबसे अच्छा तरीका यही है कि चाहे कैसी भी परिस्थिति हो, अपने को हमेशा सम्पूर्ण का हिस्सा मानना चाहिए। वह सम्पूर्ण, जिसमें सबकुछ है, जिससे अलग कुछ नहीं है। ध्यान करने की जरूरत भी नहीं, मानना ही काफी है। ध्यान तो अपने काम पर लगाना है। अगर ध्यान सम्पूर्ण पर लग गया, तो काम कैसे होगा। किसी भी परिस्थिति को ठुकराना नहीं, अंधेरा या प्रकाश कुछ भी, क्योंकि वह सम्पूर्ण का हिस्सा होने से उससे अलग नहीं है। एवरीथिंग इज पार्ट ऑफ ए व्होल। ऐसी मान्यता बनी रहने से कुंडलिनी भी मन में बनी रहेगी, और चारों ओर घूमते हुए पूरे शरीर को स्वस्थ रखेगी। यद्यपि इस विश्वास को सीधे चौबीसों घंटे बनाए रखना न तो व्यावहारिक और न ही आसान लगता है, इसलिए इसे अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त करने के लिए एक व्यावहारिक अद्वैत दर्शन और कुंडलिनी योग को अपनाया जाना चाहिए। ऐसी

मान्यता बनाए रखने में अद्वैत की लोकप्रिय व व्यावहारिक पुस्तक"शरीरविज्ञान दर्शन~ एक आधुनिक कुंडलिनी तंत्र" ने मेरी बहुत मदद की।

कुंडलिनी भी एक भूत है, एक पवित्र भूत

जब मन ही भूत है, तब कुंडलिनी भी भूत ही सिद्ध हुई, क्योंकि कुंडलिनी भी एक उच्च कोटि का मन ही है। आम भूत का भी भौतिक अस्तित्व नहीं होता, और कुंडलिनी का भी नहीं। आम भूत भी केवल मन की ही उपज होते हैं, और कुंडलिनी भी। पर यह आम भूत से अलग है। जहाँ आम भूत परमात्मा से दूर ले जाते हैं, वहीँ पर कुंडलिनी-भूत परमात्मा की ओर ले जाता है। क्या इसाई धर्म में वर्णित पवित्र भूत या हॉली घोस्ट कुण्डलिनी ही है? इसका निर्णय मैं आपके ऊपर छोड़ता हूँ।

कुंडलिनी योग रामायण वर्णित प्रभु राम की अयोध्या गृह-भूमि द्वारा रूपात्मक व अलंकारपूर्ण कथा के रूप में प्रदर्शित

वैश्विक आतंकवाद और विस्तारवाद के विरुद्ध सबसे अधिक कड़ा रुख अपनाने वाले जांबाज भारतीय सेनानायक विपिन रावत, उनकी पत्नी और कुछ अन्य बड़े सैन्य अधिकारियों की एक दुखद विमान हादसे में असामयिक वीरगति के उपरांत उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि और उनकी आत्मा की शांति के लिए हार्दिक कामना।

मित्रो, मैं पिछले सप्ताह कोई कुंडलिनी लेख नहीं लिख पाया। वजह थी, व्यस्तपूर्ण जीवनचर्या। किसी आवश्यक कार्य से हाईवेज पर सैंकड़ों किलोमीटर की बाइक राइडिंग करनी पड़ी। यद्यपि बाइक लेटेस्ट, कम्फर्टेबल और स्पोर्ट्स टाइप थी, साथ में पर्यावरण-अनुकूल भी। अच्छा अनुभव मिला। बहुत कुछ नया सीखने को मिला। सफर के भी बहुत मजे लिए, और स्थायी घर के महत्त्व का पता भी चला। जब तक आदमी पर कोई काम करने की बाध्यता नहीं पड़ती, तब तक वह कठिन काम करने से परहेज करता रहता है। जब 'डू ओर डाई' वाली स्थिति आती है, तब वह करता भी है, और सीखता भी है। इस सप्ताह मैं कुंडलिनी योग और रामायण के बीच के संबंध पर चर्चा करूँगा।

गहराई से देखने पर रामायण कुंडलिनी योग के व्यावहारिक व प्रेरक वर्णन की तरह प्रतीत होती है

भगवान राम यहाँ जीवात्मा का प्रतीक है। परमात्मा और जीवात्मा में तत्त्वतः कोई भेद नहीं है। वह नवरात्रि के नौ दिनों में शक्ति साधना करता है। उससे उसकी कुंडलिनी सहस्रार में पहुंच जाती है। उससे वह प्रतिदिन शुद्ध होता रहता है। दसवें दिन वह अहंकार रूपी रावण राक्षस को अपनी योगाग्नि से जलाकर नष्ट कर देता है। दीवाली के दिन उसकी कुंडलिनी जागृत हो जाती है। इसको राम का वापिस अपने घर अयोध्या लौटना दिखाया गया है। अयोध्या आत्मा का वह परमधाम है, जिसे कोई नहीं जीत सकता, मतलब जिसके ऊपर कोई न हो। अयोध्या का शाब्दिक अर्थ भी यही होता है। राम दशरथ का पुत्र है। दशरथ मतलब वह रथ जिसे दस घोड़े खींचते हैं। इन्द्रियों को शास्त्रों में घोड़े कहा गया है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पांच कर्मेन्द्रियाँ, कुल दस इन्द्रियाँ इस शरीर को चलाती हैं। इसलिए दशरथ शरीर को ही कहा गया है। इसीसे आत्मा बद्ध जैसा होकर जीवात्मा या राम बन जाता है। वैसे तो राम परमात्मा है, पर उससे बद्ध जीवात्मा या साधारण राम को यही दशरथ-शरीर पैदा करता है, इसीलिए इसे जीवात्मा राम का पिता कहा गया है। वह जो 12 वर्ष तक वनवास करता है, वह कुंडलिनी योग साधना ही है। कुंडलिनी योग साधना से आदमी सबके बीच रहता हुआ भी सबसे दूर और सबसे अलग सा बना रहता है। इसे ही वनवास कहा गया है। वैसे भी, तंत्र शास्त्रों के अनुसार कुंडलिनी योग में परिपक्वता या पूर्णता प्राप्त करने में औसतन 12 साल लग जाते हैं। दशरथ की पत्नी जो केकयी है, वह शरीर में पैदा होने वाली परमार्थ बुद्धि है। वह बाहर से देखने पर तो मूर्ख और दुष्ट लगती है, पर असलियत में वह परम हित करने वाली होती है। वह काक या कौवे की तरह कांय कांय जैसे कठोर शब्द करने वाली लगती है, इसीलिए उसका नाम केकयी है। उसने कभी दशरथ रूपी शरीर को राक्षसों के साथ युद्ध में बचाया था, मतलब उसने सख्ती और प्रेम से दशरथ को राक्षसों के जैसी बुरी आदतों से रोक कर परमार्थ- भ्रष्ट होने से बचाया था। इसीलिए दशरथ को उस पर गहरा विश्वास था। परमार्थ की बुद्धि को बनाए रखने के लिए परमार्थ के मार्ग पर चलना पड़ता है। केकयी के कोपभवन में

जाकर आत्महत्या की धमकी देने का यही अर्थ है कि अगर कम से कम उसकी तीन तथाकथित आध्यात्मिक बातें नहीं मानी गईं तो शरीर ऐशोआराम में डूब कर मनमर्जी का दुराचरण करेगा, जिससे वह नष्ट हो जाएगी। जो सन्मार्ग पर चलते हैं, उनकी वाणी में सरस्वती का वास होता है। उनके बोल झूठे नहीं होते। इसे ही यह कहा गया है, रघुकुल रीत सदा चली आई, प्राण जाए पर वचन न जाई। केकयी का मांगा जीवात्मा राम के लिए पहला वर है, राम को राज्य न देना। इसका मतलब है कि राम को भोगविलास व व्यर्थ की जिम्मेदारियों से दूर रखना। दूसरा वर है कि राम को 12 वर्ष का वनवास देना। वनवास कुंडलिनी योग साधना का ही पर्याय है। तीसरा वर है कि उसके पुत्र भरत को अयोध्या का राजा बनाना। भरत मतलब भ्राता में रत, भाई राम की भक्ति में लीन। भरत शरीर का निर्लिप्त मन है। वह राज्य तो करता है, पर बुझे हुए मन से। वह भोगविलास में आसक्त नहीं होता। वह राम के जूतों को अपने सिंघासन पर रखे रखता है, खुद उसपर कभी नहीं बैठता। यह राजा राम का महान कर्मयोग ही है। वह सबकुछ करते हुए भी कुछ नहीं करता और कुंडलिनी योग साधना में ही तल्लीन रहता है। उसकी पत्नी सीता अर्थात उसकी शक्ति योगी राम के साथ रहती है, राजा राम के साथ नहीं। यही सीता का राम के साथ वन को जाना है। इसी तरह हनुमान और लक्ष्मण भी योगी राम के साथ रहते हैं, राजा राम या भरत के साथ नहीं। हनुमान यहां जंगली या अंधी शक्ति का प्रतीक है, जो राम के दिग्दर्शन में रहते हुए विभिन्न यौगिक क्रियाओं के माध्यम से कुंडलिनी योग में सहायक बनती है। लक्ष्मण मन के लाखों विचारों का प्रतीक है। लक्ष-मन मतलब लाखों विचार। ये भी अपनी संवेदनात्मक ऊर्जा कुंडलिनी को देते हैं। दरअसल रूपात्मक कथाओं में मन के विभिन्न हिस्सों को विभिन्न व्यक्तियों के रूप में दर्शाने की कला का बहुत महत्त्व होता है। वैसे भी, सारा संसार मन में ही तो बसता है। यदि कोई पूछे कि कुंडलिनी योगी राम किसका ध्यान करते हुए कुंडलिनी योग साधना करते थे, तो जवाब स्पष्ट है कि राम भगवान शिव का ध्यान करते थे। इसका प्रमाण रामेश्वरम तीर्थ है, जहाँ राम ने स्वयं शिवलिंग की स्थापना की है। यह अति प्रसिद्ध तीर्थ भारतवर्ष की चारधाम यात्रा के अंतर्गत आता है।

राम की दूसरी माता कौशल्या का नाम कुशल शब्द से पड़ा है। वह शरीर में वह बुद्धि है जो शरीर का कुशलक्षेम चाहती है। वह बाहर से तो अच्छी लगती है, क्योंकि वह शरीर को सभी सुख सुविधाएं देना चाहती है, पर वह परमार्थ बुद्धि केकयी को व अपना असली कल्याण चाहने वाले जीवात्मा राम को अच्छी नहीं लगती। केकयी राम के शरीर या दशरथ को भी अच्छी नहीं लगती क्योंकि शरीर को परमार्थ से क्या लेना देना, उसे तो बस ऐशोआराम चाहिए। पर जब वह मजबूत होती है, तब वह युक्ति से शरीर को भी वश में कर लेती है। यही केकयी के द्वारा दशरथ को वश में करना है।

कुंडलिनी स्थायी घर से जुड़ी होती है

दशरथ रूपी शरीर को हम उसके स्थायी घर का राजा भी कह सकते हैं। यही अयोध्या का राजा दशरथ है। आदमी के अपने स्थायी घर को भी हम अयोध्या नगरी कह सकते हैं, क्योंकि हम इससे लड़ नहीं सकते। हम इसे नुकसान नहीं पहुंचा सकते। कोई भी प्राणी अपने स्थायी घर से युद्ध नहीं कर सकता। इसीलिए इसका नाम अयोध्या है। इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि एक आदमी से उसके स्थायी घर में कोई नहीं लड़ सकता। तभी तो कहते हैं कि अपने घर में तो कुत्ता भी शेर होता है। कोई आदमी कितना ही बड़ा लड़ाका क्यों न हो, पर अपने स्थायी घर में हमेशा शांति चाहता है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। कोई प्राणी नहीं चाहता कि उसे हर समय अपराध बोध सताता रहे, क्योंकि उसका स्थायी घर उसके मन से हमेशा जुड़ा होता है। क्योंकि आदमी का मन हमेशा उसके स्थायी घर से जुड़ा होता है, इसलिए कुंडलिनी भी स्थायी घर से जुड़ी होती है, क्योंकि कुंडलिनी मन का ही हिस्सा है, या यूं कहो कि मन का सर्वोच्च प्रतिनिधि है। इसीलिए हरेक आदमी अपने स्थायी घर में सदैव अपना सम्मान बना कर रखना चाहता है। मुसीबत के समय स्थायी घर ही याद आता है। आपने देखा होगा कि कैसे कोरोना लौकडाऊन को तोड़ते हुए लोग अपने-अपने स्थायी घरों को भागते थे। धर्म, अर्थ, काम

और मोक्ष, ये चार पुरुषार्थ बताए गए हैं। इनका आधार यह शरीर और उस शरीर का आधार उसका स्थायी घर ही है। कहा भी गया है कि शरीरमाद्यम खलु धर्मसाधनम। इसलिए बेशक जीवात्मा राम अपने कुंडलिनी जागरण के लिए इसे थोड़ा नजरअंदाज भी कर ले, पर कुंडलिनी जागरण के बाद उसे इसी शरीर में, शरीर के आधाररूप स्थायी घर और उसके माध्यम से भौतिकता में प्रविष्ट होना पड़ता है। बेशक वह कुंडलिनी जागरण के लिए अपना घर छोड़कर वन को चला जाए, पर अंततः उसे घर वापिस आना ही पड़ता है। देखा भी होगा आपने, आदमी घर से बाहर जहाँ मर्जी चला जाए, पर वह वास्तविक और स्थायी विकास अपने स्थायी घर में ही कर पाता है। नई जगह को घर बनाने में एक आदमी की कई पीढ़ियां लग जाती हैं। तभी तो एक प्रसिद्ध लघु कविता बनी है, "एक चिड़िया के बच्चे चार, घर से निकले पंख पसार; पूरव से वो पश्चिम भागे, उत्तर से वो दक्षिण भागे; घूम-घाम जग देखा सारा, अपना घर है सबसे प्यारा। घर की महिमा भी अपरम्पार है, और अयोध्या नगरी की भी। इसीलिए रिश्तों में घर और वर की बहुत ज्यादा अहमियत होती है। सबको पता है कि असली घर तो परमात्मा ही है, पर वहाँ के लिए रास्ता निवास-घर से होकर ही जाता है, ऐसा लगता है। सम्भवतः इसीलिए आदमी को मरणोपरांत भी उसके स्थायी घर पहुंचाया जाता है। अपने स्थायी घर गजनी को समृद्ध करने के लिए ही तो जेहादी आक्रांता महमूद गजनवी ने भारत को बेतहाशा लूटा था। बाहर जो कुछ भी विकास आदमी करता है, वह अपने स्थायी घर के लिए ही तो करता है। गजनवी को स्थायी घर के महत्त्व का पता था, नहीं तो क्या वह भारत में ही अपने रहने के लिए स्थायी घर न बना लेता? इसी तरह उपनिवेशवाद के दौरान अधिकांश अंग्रेजों ने भी भारत सहित अन्य उपनिवेशित देशों में अपने लिए स्थायी घर नहीं बनाए। विश्व के ज्यादातर आंदोलनों, संघर्षों व युद्धों का एकमात्र मूल कारण होमलैंड या स्थायी घर ही प्रतीत होता है। इसका मतलब है कि आदमी कुंडलिनी के लिए ही ताउम्र संघर्ष करता रहता है, क्योंकि स्थायी घर भी उसमें विद्यमान कुंडलिनी की वजह से ही प्रिय लगता है। पेटभर खाना तो आदमी कहीं भी पा सकता है। पर घर घर ही होता है। अपनापन अपनापन ही होता है। कुंडलिनी से ही अपनापन है। इसका अर्थ है कि कुंडलिनी साधना करते हुए आदमी कहीं भी रहे, उसे अपने स्थायी घर जैसा ही आनन्द मिलता है, यहाँ तक कि उससे कहीं ज्यादा, यदि कुंडलिनी योग साधना निष्ठा व मेहनत से की जाए। इससे यह अर्थ भी निकलता है कि कुंडलिनी योग होम सिकनेस को कुछ हद तक दूर करके विश्व के अधिकांश संघर्षों और युद्धों पर विराम लगा सकता है, और दुनिया में असली व स्थायी शांति का माहौल बना सकता है, जिसकी आज सख्त जरूरत है। एक आम आदमी के द्वारा कुंडलिनी जागरण के बाद अपने स्थायी घर में जीतोड़ मेहनत करना ही राजा राम के द्वारा अयोध्या में बेहतरीन ढंग से राजकाज संभालना कहा गया है। यह अलग बात है कि कुंडलिनी जागरण के बाद व्यवहार में लाई गई भौतिकता आत्मज्ञान के साथ प्रयुक्त की जाती है, इसलिए ज्यादा हानिकारक नहीं होती। इसी दुनियादारी से कुंडलिनी जागरण स्थिरता और नित्यता को प्राप्त होता हुआ मुक्तिकारक आत्मज्ञान की ओर ले जाता है। मेरे खयाल से खाली कुंडलिनी जागरण की झलक से कुछ नहीं होता, यदि उसे सही दिशा में आगे नहीं बढ़ाया जाता। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि रामायण जैसी घटनाएं कभी हुई ही नहीं थीं, या रामायण काल्पनिक है। रामायण वास्तविक भी हो सकती है, रूपात्मक भी हो सकती है, और एकसाथ दोनों रूपों में भी हो सकती है। यह श्रद्धा और विश्वास पर निर्भर करता है। रामायण हमें हर प्रकार से शिक्षा ही देती है। मानो तो सारा संसार ही काल्पनिक है, न मानो तो कुछ भी काल्पनिक नहीं है, किसीके साथ कोई भेदभाव नहीं।

हँस चुगे जब दाना-दुनका, कवूआ मोती खाता है~ समकालीन सामाजिक परिस्थितियों पर आधारित एक आलोचनात्मक, कटाक्षपूर्ण व व्यंग्यात्मक कविता-गीत

ज्ञानीजन कहते दुनिया में

ऐसा कलियुग आता है।

हँस चुगे जब दाना-दुनका

कवूआ मोती खाता है।

ज्ञानी-ध्यानी ओझल रहते

काल-सरित के संग न बहते।

शक्ति-हीनता के दोषों को

काल के ऊपर मढ़ते रहते।

मस्तक को अपने बलबूते

बाहुबली झुकाता है।

हँस चुगे जब दाना-दुनका

कवूआ मोती खाता है।

ज्ञानीजन----

खूब तरक्की है जो करता

नजरों में भी है वो खटकता।

होय पलायित बच जाता या

दूर सफर का टिकट है कटता।

अच्छा काम करे जो कोई

वो दुनिया से जाता है।

हँस चुगे जब दाना-दुनका

कवूआ मोती खाता है।

ज्ञानीजन----

अपनी डफली राग भी अपना

हर इक गाना गाता है।

कोई भूखा सोए कोई

धाम में अन्न बहाता है।

दूध उबाले जो भी कोई

वही मलाई खाता है।

हँस चुगे जब दाना-दुनका

कवूआ मोती खाता है।

ज्ञानीजन----

संघे शक्ति कली-युगे यह

नारा सबको भाता है।

बोल-बोल कर सौ-दफा हर

सच्ची बात छुपाता है।

भीड़ झुंड बन चले जो कोई

वही शिकार को पाता है।

हँस चुगे जब दाना-दुनका

कवूआ मोती खाता है।

ज्ञानीजन----

जितने ढाबे उतने बाबे

हर-इक बाबा बनता है।

लाठी जिसकी भैंस भी उसकी

मूरख बनती जनता है।

शून्य परीक्षा हर इक अपनी

पीठ को थप-थपाता है।

हँस चुगे जब दाना-दुनका

कवूआ मोती खाता है।

ज्ञानीजन----

करतब-बोध का ठेका देता

कोई भी तब पेन न लेता।

मेल-जोल से बात दूर की

अपना भी न रहता चेता।

हर इक अपना पल्ला झाड़े

लदे पे माल चढ़ाता है।

हँस चुगे जब दाना-दुनका

कवूआ मोती खाता है।

ज्ञानीजन----

शिष्टाचार किताबी होता

नौटँकी खिताबी होता।

भीतर वाला सोया होता

सर्व-धरम में खोया होता।

घर के भीतर सेंध लगाकर

घरवाले को भगाता है।

हँस चुगे जब दाना-दुनका

कवूआ मोती खाता है।

ज्ञानीजन----

मेहनत करे किसान बिपारी

खूब मुनाफा पाता है।

बैठ-बिठाय सिंहासन पर वो

पैसा खूब कमाता है।

देकर करज किसानों को वह

अपना नाच नचाता है।

हँस चुगे जब दाना-दुनका

कवूआ मोती खाता है।

ज्ञानीजन----

जात-धरम को ऊपर रख कर

हक अपना जतलाता है।

शिक्षा-दीक्षा नीचे रख कर

शोषित वह कहलाता है।

निर्धन निर्धनता को पाए

पैसे वाला छाता है।

हँस चुगे जब दाना-दुनका

कवूआ मोती खाता है।

ज्ञानीजन----

साभार~@bhishmsharma95

गाने के लिए उपयुक्त वैकल्पिक रचना (मामूली परिवर्तन के साथ)~हँस चुगे है दाना-दुनका, कवूआ मोती खाता है

ज्ञानीजन कहते जगत में

ऐसा कलियुग आता है।

हँस चुगे है दाना-दुनका

कवूआ मोती खाता है।

ज्ञानी-ध्यानी ओझल रहते

काल-सरित तट रहते हैं।

शक्ति-हीनता के दोषों को

काल के ऊपर मढ़ते हैं।

मस्तक को अपने बलबूते-2

बाहु-बली झुकाता है।

हँस चुगे है दाना-दुनका

कवूआ मोती खाता है।

ज्ञानीजन----

खूब तरक्की करता है जो

आँखों में वो खटकता है।

होय पलायित बच जाता जां

दूर-टिकट तब कटता है।

अच्छा काम करे जो कोई-2

वो दुनिया से जाता है।

हँस चुगे है दाना-दुनका

कवूआ मोती खाता है।

ज्ञानीजन----

अपनी डफली राग भी अपना

हर इक गाना गाता है।

कोई भूखा सोए कोई

धाम में अन्न बहाता है।

दूध उबाले है जो कोई-2

वो ही मलाई खाता है।

हँस चुगे है दाना-दुनका

कवूआ मोती खाता है।

ज्ञानीजन----

संघे शकती कली-युगे यह

नारा सबको भाता है।

बोल-बोल के सौ-दफा हर

सच्ची बात छुपाता है।

भीड़-झुंड चलता जो कोई-2

वो ही शिकारी पाता है।

हँस चुगे है दाना-दुनका

कवूआ मोती खाता है।

ज्ञानीजन----

जितने ढाबे उतने बाबे

हर-इक बाबा बनता है।

लाठी जिसकी भैंस भी उसकी

मूरख बनती जनता है।

शून्य परीक्षा हर इक अपनी-2

पीठ को थप-थपाता है।

हँस चुगे है दाना-दुनका

कवूआ मोती खाता है।

ज्ञानीजन----

करतब का ठेका देता है

पेन न कोई लेता है।

मेल-जोल से बात दूर की

अपना भी न चेता है।

हर इक अपना पल्ला झाड़े-2

लदे पे माल चढ़ाता है।

हँस चुगे है दाना-दुनका

कवूआ मोती खाता है।

ज्ञानीजन----

शिष्टाचार किताबी होता

नौटँकी व खिताबी है।

भीतर वाला सोया होता

सर्व-धरम में खोया है।

घर के भीतर सेंध लगाकर-2

घरवाले को भगाता है।

हँस चुगे है दाना-दुनका

कवूआ मोती खाता है।

ज्ञानीजन----

मेहनत करे किसान बिपारी

पैसा खूब कमाता है।

बैठ-बिठाय सिंहासन पर वो

खूब मुनाफा पाता है।

देकर करज किसानों को वो-2

अपना नाच नचाता है।

हँस चुगे है दाना-दुनका

कवूआ मोती खाता है।

ज्ञानीजन----

जात-धरम को ऊपर रख कर

हक अपना जतलाता है।

शिक्षा-दीक्षा नीचे रख कर

शोषित वह कहलाता है।

निरधन निरधनता को पाए-2

पैसे वाला छाता है।

हँस चुगे है दाना-दुनका

कवूआ मोती खाता है।

ज्ञानीजन----

ए जी रे---

ए जी रे---

धुन प्रकार~रामचंद्र कह गए सिया से, ऐसा कलियुग आएगा---

साभार~@bhishmsharma95

कुंडलिनी शक्ति ही माता सीता है, और उसका बहिर्गमन ही दशानन रावण के द्वारा सीताहरण है

मित्रो, मैं पिछले ब्लॉग लेख में बता रहा था कि किस तरह रामायण कुंडलिनी योग के रूपकात्मक वर्णन की तरह प्रतीत होती है। इस लेख में हम इसको थोड़ा विस्तृत परिपेक्ष्य में देखेंगे।

शरीर में कुंडलिनी शक्ति ही माता सीता है, और उसका बहिर्गमन ही दशानन रावण के द्वारा सीताहरण है

राक्षस रावण के दस सिर दस दोषों के प्रतीक हैं, पाँच ज्ञानेन्द्रियों के दोष, और पांच कर्मेंद्रियों के दोष। उन दोषों ने कुंडलिनी शक्ति को बहिर्मुख किया हुआ था। इससे कुंडलिनी शक्ति शरीर से बाहर निकलकर संसार में भटकी हुई थी। भौतिक संसार में भटकते हुए वह उन दोषों के हित में काम कर रही थी, जिससे वे दोष और ज्यादा ताकतवर हुए जा रहे थे। विभिन्न सांसारिक इच्छाओं को पैदा करके वह काम दोष को बलवान बना रही थी। लड़ाई-झगड़े करा कर वह क्रोध दोष को बल दे रही थी। ज्यादा से ज्यादा पाने की इच्छा पैदा करके वह लालच को बढ़ा रही थी। सुंदर वस्तुओं के पीछे शरीर को भगा कर वह मोह दोष को बढ़ा रही थी। नशा वगैरह करवाकर वह मद को बढ़ा रही थी, और दूसरे की संपत्ति पर बुरी नजर डलवाकर मत्सर दोष को बढ़ा रही थी। इसी तरह से वह कर्मेन्द्रियोके पांच दोषों को भी बढ़ा रही थी। वह शक्ति ही माता सीता है। दस दोषों के द्वारा उस कुंडलिनी शक्ति को अपनी ताकत बढ़ाने के लिए इस्तेमाल करने को ही दशानन रावण के द्वारा माता सीता को चुराने के रूप में लिखा गया है।

सहस्रार चक्र में आत्मा और कुंडलिनी का मिलन ही राम और सीता के मिलन के रूप में दर्शाया गया है

कुंडलिनी शक्ति के द्वारा बाहरी भौतिक जगत में भी अनासक्ति के साथ विविध क्रियाकलाप करना ही माता सीता का रावण से दूर और उसके प्रति अनासक्त बने रहना है। तीव्र कुंडलिनी योग के माध्यम से कुंडलिनी शक्ति का शरीर में अंदर की तरफ लौटना और सहस्रार में प्रविष्ट होकर जीवात्मा से उसका मिलना ही माता सीता से भगवान राम का पुनर्मिलन है। सहस्रार में कुंडलिनी और जीवात्मा के मिलन से दसों इन्द्रियों के दोषों का नष्ट होना ही भगवान राम के द्वारा सीता की सहायता से दशानन रावण का वध करना है। भारतवर्ष शरीर है, लंका शरीर के बाहर का भौतिक जगत, और उनके बीच में समुद्र दोनों के बीच का विभाजनकारी क्षेत्र है। बाहर की दुनिया कभी भीतर प्रवेश नहीं कर सकती। हम दुनिया को महसूस नहीं करते हैं, लेकिन हम केवल अपने दिमाग के अंदर बाहरी दुनिया की अनुमानित छवि महसूस करते हैं। इसलिए दोनों क्षेत्रों के बीच महान महासागर को उनकी पूर्ण पृथकता दिखाने के लिए चित्रित किया गया है। राम का समुद्र में एक पुल के माध्यम से लंका पहुंचना प्रतीकात्मक है, क्योंकि हम किसी क्षेत्र तक पहुंचे बिना वहाँ से किसी चीज को वापस नहीं ला सकते हैं। उन्होंने और उनकी सेना ने नावों का नहीं, बल्कि एक पुल का इस्तेमाल किया। इसका मतलब है कि हमारा

मस्तिष्क वास्तव में बाहरी दुनिया तक नहीं पहुंचता है, लेकिन मस्तिष्क में प्रवेश करने वाली रोशनी और ध्वनियों के रूप में पुल के माध्यम से जानकारी प्राप्त करता है।

सभी पुराण कुंडलिनी योग का मिथकीय व रूपात्मक वर्णन करते हैं

पुराने समय में अशिक्षा और पिछड़ेपन का बोलबाला होता था। कुंडलिनी योग अति सूक्ष्म व आध्यात्मिक विज्ञान से जुड़ा हुआ विषय था। उस समय स्थूल विज्ञान भी आम लोगों की समझ से परे होता था, कुंडलिनी योग जैसा सूक्ष्म व पारलौकिक विज्ञान उन्हें कैसे समझ आ सकता था। इसलिए कुंडलिनी योग का ज्ञान केवल सम्पन्न वर्ग के कुछ गिनेचुने लोगों को ही होता था। वे चाहते थे कि आम लोग भी उसे प्राप्त करते, क्योंकि आध्यात्मिक मुक्ति पर मानवमात्र का अधिकार है। पर वे उन्हें सीधे तौर पर कुंडलिनी योग को समझाने में सफल नहीं हुए। इसलिए उन्होंने कुंडलिनी योग को रूपात्मक व मिथकीय कथाओं के रूप में ढाला, ताकि लोग उन्हें रुचि लेकर पढ़ते, इससे धीरे-धीरे ही सही, कुंडलिनी योग की तरफ उनका झुकाव पैदा होता गया। उन कथाओं के संग्रह पुराण बन गए। उन पुराणों को पढ़ने से अनजाने में ही लोगों के अंदर कुंडलिनी का विकास होने लगा। इससे उन्हें आनन्द आने लगा, जिससे उन्हें पुराणों की लत लग गई। इतने प्राचीन ग्रँथों के प्रति तब से लेकर आज के आधुनिक युग तक जो लोगों का आकर्षण है, यह इसी कुंडलिनी-आनन्द के कारण प्रतीत होता है। पुराण पढ़ने व सुनने वाले लोगों के बीच में जिसका दिमाग तेज होता था, वह एकदम से कुंडलिनी योग को पकड़ कर अपनी कुंडलिनी को जागृत भी कर लेता था। इस तरह से पुराण प्राचीन काल से लेकर मानवता की अप्रतिम सेवा करते आ रहे हैं।

अध्यात्म में रूपकता का महत्त्व

रूपकों से आध्यात्मिक विषयों को भौतिकता, सरलता, रोचकता, सामाजिकता और वैज्ञानिकता मिलती है। इसके बिना अध्यात्म बहुत नीरस होता। कई लोग अनेक प्रकार के कुतर्कों से रूपकता का विरोध करते हैं। इसे रूढ़िवादिता, कपोल कल्पनाशीलता आदि माना जाता है। बेशक आजके विज्ञानवादी युग में ऐसा लगता हो, पर प्राचीन काल में रूपकों ने मानवमात्र को बहुत लाभ पहुंचाया है। यदि शिव के स्थान पर निराकार ब्रह्म कहा जाए तो कितना उबाऊ लगेगा। मस्तिष्क और सहस्रार शब्द में वो सरसता कहाँ है, जो उनकी जगह पर हिमालय पर्वत और कैलाश पर्वत लिखने से प्राप्त होती है। पर मैं यह बता दूं कि शिवपुराण में जो पर्वतों का उल्लेख है वह प्रतीकात्मक या रूपात्मक ही लगता है। ऐसा नहीं है कि केवल पर्वतों में ही कुंडलिनी जागरण होता हो। हाँ, पर्वत उसमें थोड़ी अधिक मदद जरूर करते हैं। वहां शान्ति होती है। पर वहाँ ऑक्सीजन की व अन्य सुविधाओं की कमी भी होती है। इससे अधिकांश प्राण ऐसे भौतिक कष्टों से निजात दिलाने में ही खर्च हो जाते हैं। इसलिए मैदान व पहाड़ का मिश्रण सबसे अच्छा है। मैदानों की सुविधाओं में खूब सारा प्राण इकठ्ठा कर लो, और उसे कुंडलिनी को देने के लिए थोड़े समय के लिए पर्वत पर चले जाओ। पुराने जमाने मे लोग ऐसा ही करते थे। इसी तरह कुंडलिनी शब्द भी उतना रोचक नहीं लगता, जितना उसकी जगह पर माता पार्वती या सीता लगता है। फिर भी आजकल के तथाकथित आधुनिक व बुद्धिप्रधान समाज की ग्राह्यता के लिए आध्यात्मिक रूपकता को रहस्योद्घाटित करते हुए यथार्थ भी लिखना पड़ता है।

कुंडलिनी जागरण दीपावली और राम की योगसाधना रामायण महाकाव्य के मिथकीय रूपक में निरूपित

कुंडलिनी देवी सीता और जीवात्मा भगवान राम है

सीता कुंडलिनी ही है जो बाहर से आंखों की रौशनी के माध्यम से वस्तु के चित्र के रूप में प्रविष्ट होती है। वास्तव में शरीर की कुंडलिनी शक्ति नेत्रद्वार से बाहर गई होती है। शास्त्रों में कहा भी है कि आदमी का पूरा व्यक्तित्व उसके मस्तिष्क में रहता है, जो बाह्य इन्द्रियों के रास्ते से बाहर निकलकर बाहरी दुनिया में भटकता रहता है। बाहर हर जगह भौतिक दोषों अर्थात रावण का साम्राज्य है। वह शक्ति उसके कब्जे में आ जाती है, और उसके चंगुल से नहीं छूट पाती। मस्तिष्क में बसा हुआ जीवात्मा अर्थात राम उस बाहरी दुनिया में भटकती हुई सीता शक्ति को लाचारी से देखता है। यही जटायु के भाई सम्पाति के द्वारा उसे अपनी तेज नजर से समुद्र पार देखना और उसका हालचाल राम को बताना है। फिर राम योगसाधना में लग जाता है, और किसी मंदिर वगैरह में बनी देवता की मूर्ति को या वहाँ पर रहने वाले गुरु की खूब संगति करता है, औऱ तन-मन-धन से उनको प्रसन्न करता है। इससे धीरे-धीरे उसके मन में अपने गुरु के चित्र की छाप गहरी होती जाती है, और एक समय ऐसा आता है जब वह मानसिक चित्र स्थायी हो जाता है। यही लँका के राजा रावण से सीता को छुड़ाकर लाना, और उसे समुद्र पर बने पुल को पार कराते हुए अयोध्या पहुंचाना है। प्रकाश की किरण ही वह पुल है, क्योंकि उसीके माध्यम से बाहर का भौतिक चित्र मन के अंदर प्रविष्ट हुआ। मन ही अयोध्या है, जिसके अंदर राम रूपी जीवात्मा रहता है। मन से कोई भी युद्ध नहीं कर सकता, क्योंकि वह भौतिकता के परे है। हर कोई किसीके शरीर से तो युद्ध कर सकता है, पर मन से नहीं। इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि मन को समझा-बुझा कर ही सीधे रास्ते पर लगाना चाहिए, जोरजबरदस्ती या डाँट-डपट से नहीं। टेलीपैथी आदि से भी दूसरे के मन का बहुत कम पता चलता है। वह भी एक अंदाज़ा ही होता है। किसी दूसरे के मन के बारे में पूरी तरह से कभी नहीं जाना सकता। पहले तो राम रूपी जीवात्मा लंबे समय तक बाहर की दुनिया में अर्थात रावण की लँका में भटकते हुए अपने हिस्से को अर्थात सीता माता को दूर से ही देखता रहा। मतलब उसने उस पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया। अगर वह बाहर गया भी, तो अधूरे मन से गया। अर्थात उसने शक्ति को वापिस लाने के लिए पर्याप्त प्रयास नहीं किए। फिर जब राम उसके वियोग से बहुत परेशान हो गया, तब वह दुनियदारी में जीजान से कूद गया। यही राक्षसों के साथ उसके युद्ध के रूप में दिखाया गया है। दरअसल असली और जीवंत जीवन तो युद्धस्तर के जैसा संघर्षमयी और बाह्यमुखी जीवन ही होता है। मतलब कि वह मन रूपी अयोध्या से बाहर निकलकर आँखों की रौशनी के पुल से होता हुआ लँका में प्रविष्ट हो गया। दुनिया में वह पूरे जीजान से व पूरे ध्यान के साथ मेहनत करने लगा। यही तो कर्मयोग है, जो सभी आध्यात्मिक साधनाओं के मूल व प्रारंभ में स्थित है। मतलब कि वह लँका में सीता को ढूंढने लगा। फिर किसी सत्संगति से उसमें दैवीय गुण बढ़ने लगे। मतलब कि अष्टाङ्ग योग के यम-नियमों का अभ्यास उससे खुद ही होने लगा। यह सत्संग राम और राक्षस संत विभीषण की मित्रता के रूप में है। इससे जीवात्मा को कोई वस्तु बहुत पसंद आई, और वह लगातार उसी एक वस्तु के संपर्क में बना रहने लगा। मतलब कि राम की नजर अपनी परमप्रिय सीता पर पड़ी, और वह उसीके प्रेम में मग्न रहने लगा। मतलब कि इस रूपक कथा में साथ में तंत्र का यह सिद्धांत भी प्रतिपादित किया गया है कि एक स्त्री अर्थात पत्नी ही योग में सबसे ज्यादा सहायक होती है। पुराणों का मुख्य उद्देश्य तो आध्यात्मिक और पारलौकिक है। लौकिक उद्देश्य तो गौण या निम्न है। पर अधिकांश लोग उल्टा समझ लेते है। उदाहरण के लिए, वे इस आध्यात्मिक मिथक से यही लौकिक

आचार वाली शिक्षा लेते हैं कि रावण की तरह पराई स्त्री पर बुरी नजर नहीं डालनी चाहिए। हालांकि यह शिक्षा भी ठीक है, पर वे इसमें छिपे हुए कुंडलिनी योग के मुख्य और मूल उद्देश्य को या तो समझ ही नहीं पाते या फिर नजरअंदाज करते हैं। फिर जीवात्मा के शरीर की पोज़िशन और सांस लेने की प्रक्रिया स्वयं ही इस तरह से एडजस्ट होने लगी, जिससे उसका ज्यादा से ज्यादा ध्यान उसकी प्रिय वस्तु पर बना रहे। इससे योगी राम का विकास अष्टाङ्ग योग के आसन और प्राणायाम अंग तक हो गया। इसका मतलब है कि राम सीता को दूर से व छिप-छिप कर देखने के लिए कभी बहुत समय तक खड़ा रहता, कभी डेढ़ा-मेढ़ा बैठता, कभी उसे लंबे समय तक सांस रोककर रखनी पड़ती थी, कभी बहुत धीरे से साँसें लेनी पड़ती थी। ऐसा इसलिए था ताकि कहीं दुनिया में उलझे लोगों अर्थात लँका के राक्षसों को उसका पता न चलता, और वे उसके ध्यान को भंग न करते। वास्तव में जो भौतिक वस्तु या स्त्री होती है, उसे पता ही नहीं चलता कि कोई व्यक्ति उसका ध्यान कर रहा है। यह बड़ी चालाकी से होता है। यदि उसे पता चल जाए, तो वह शर्मा कर संकोच करेगी और अपने विविध रूप-रंग व भावनाएं ढंग से प्रदर्शित नहीं कर पाएगी। इससे ध्यान परिपक्व नहीं हो पाएगा। अहंकार पैदा होने से भी ध्यान में क्षीणता आएगी। ऐसा ही गुरु के मामले में भी होता है। इसी तरह मन्दिर में जड़वत खड़ी पत्थर की मूर्ति को भी क्या पता कि कोई उसका ध्यान कर रहा है। क्योंकि सीता के चित्र ने ही राम के मन की अधिकांश जगह घेर ली थी, इसलिए उसके मन में फालतू इच्छाओं और गैरजरूरी वस्तुओं को संग्रह करने की इच्छा ही नहीं रही। इससे अष्टाङ्ग योग का पांचवां अंग, अपरिग्रह खुद ही चरितार्थ हो गया। अपरिग्रह का अर्थ है, वस्तुओं का संग्रह या उनकी इच्छा न करना। फिर इस तरह से योग के इन प्रारंभिक पांच अँगों के लंबे अभ्यास से जीवात्मा के मन में उस वस्तु या स्त्री का चित्र स्थिर हो जाता है। यही योग के धारणा और ध्यान नामक एडवांस्ड व उत्तम अंग हैं। इसका मतलब है कि राम ने लँका के रावण से सीता को छुड़ा लिया, और उसे वायुमण्डल रूपी समुद्र पर बने उसी प्रकाश की किरण रूपी पुल के माध्यम से आँख रूपी समुद्रतट पर पहुंचाया और फिर अंदर मनरूपी अयोध्या की ओर ले गया या **जैसा कि रामायण में लिखा गया है कि लँका से उनकी वापसी पुष्पक विमान से हुई**। यही समाधि या कुंडलिनी जागरण का प्रारंभ है। इससे उसकी इन्द्रियों के दस दोष नष्ट हो गए। इसे ही दशहरा त्यौहार के दिन दशानन रावण को जलाए जाने के रूप में मनाया जाता है। फिर जीवात्मा ने कुंडलिनी की जागृति के लिए उसे अंतिम व मुक्तिगामी छलांग या एस्केप विलोसिटी प्रदान करने के लिए बीस दिनों तक तांत्रिक योगाभ्यास किया। उस दौरान वह घर पहुंचने के लिए सुरम्य और मनोहर यात्राएं करता रहा। वैसे भी अपने स्थायी घर के ध्यान और स्मरण से कुंडलिनी को और अधिक बल मिलता है, क्योंकि कुंडलिनी स्थायी घर से भी जुड़ी होती है, जैसा मैंने एक पिछले लेख में बताया है। मनोरम यात्राओं से भी कुंडलिनी को अतिरिक्त बल मिलता है, इसीलिए तो तीर्थयात्राएं बनी हैं। उस चौतरफा प्रयास से उसकी कुंडलिनी बीस दिनों के थोड़े समय में ही जागृत हो गई। यही राम का अयोध्या अर्थात कुंडलिनी के मूलस्थान पहुंचना है। यही कुंडलिनी जागरण है। कुंडलिनी जागरण से जो मन के अंदर चारों ओर सात्त्विकता का प्रकाश छा जाता है, उसे ही प्रकाशपर्व दीपावली के रूप में दर्शाया गया है। क्योंकि कुंडलिनी जागरण का प्रभाव समाज में, विशेषकर गृहस्थान में चारों तरफ फैलकर आनन्द का प्रकाश फैलाता है, इसलिए यही अयोध्या के लोगों के द्वारा दीपावली के प्रकाशमय त्यौहार को मनाना है।

अच्छा लगता नूतन साल~एक अतिलघु कविता

अच्छा लगता नूतन साल

जैसा भी हो चाहे हाल।

परिवर्तन की कैसी चाल

काल का कैसा मायाजाल।

कुंडलिनी तांत्रिक योग को यौन-संभोग प्रवर्धन व वीर्य रूपांतरण की सहायता से दिखाता हिंदु शिवपुराण~संभोग से समाधि

ॐ कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगिन्द्रहारम् सदावसंतं हृदयारविन्दे भवंभवानीसहितं नमामि

मित्रो, शिवपुराण के अनुसार भगवान शिव के साथ देवी पार्वती का विवाह हुआ। फिर वे पार्वती के साथ कामक्रीड़ा करते हुए विहार करते रहे। उनको रमण करते हुए सैंकड़ों वर्ष बीत गए, पर वे उससे उपरत नहीं हुए। इससे सभी देवता उदास होकर ब्रह्मा के पास चले गए। ब्रह्मा उन सबको साथ लेकर भगवान नारायण के पास चले गए। नारायण ने उन्हें समझाया कि किसी पुरुष और स्त्री के जोड़े को आपसी रमण करने से नहीं रोकना चाहिए। यदि कोई ऐसा करता है, तो उसे अपनी पत्नी और संतानों से वियोग का दुःख झेलना पड़ता है। उन्होंने ऐसे बहुत से लोगों का उदाहरण दिया जिन्होंने ऐसा किया था और जिसका दण्ड भी उन्हें मिला था। फिर उन्होंने कहा कि भगवान शिव एक हजार साल तक पार्वती के साथ संभोग करेंगे। उसके बाद वे उससे उपरत हो जाएंगे। इसलिए तब तक देवताओं को उनसे न मिलने की सलाह दी। परन्तु एक हजार साल बाद भी शिव और पार्वती गुफा से बाहर नहीं निकले। उन दोनों की रतिक्रीड़ा से भू कम्पित होने लगी, और जिस कच्छप और शेषनाग पर धरती टिकी हुई है, उनकी थकावट के कारण वायुमंडल की वायु भी स्तम्भित जैसी होने लग गई। तब सभी देवता व्याकुल होकर उस गुफा के द्वार के पास पहुंच गए। उस समय शिव-पार्वती संभोग में क्रीड़ारत थे। देवताओं ने दुखभरी आवाज में रुदन करते हुए शिव की स्तुति की, और राक्षस तारकासुर द्वारा अपने ऊपर किए गए अत्याचार से उन्हें अवगत कराया। भगवान शिव उनका रुदन सुनकर पार्वती को छोड़कर करुणावश उनसे मिलने द्वार तक आ गए। शिव ने उन्हें समझाया कि होनी को कोई नहीं टाल सकता, यहाँ तक कि वे खुद भी नहीं। फिर उन्होंने कहा कि जो होना था, वह हो गया, अब आगे की स्थिति स्पष्ट करते हैं। शिव ने कहा कि जो उनके वीर्य को ग्रहण कर सके, वही राक्षस तारकासुर से सुरक्षा दिला सकता है। सभी देवताओं ने इसके लिए अग्नि देवता को आगे किया। फिर शिव ने आश्वस्त होकर अपना वीर्य धरा पर गिरा दिया। अग्नि देवता ने कबूतर बनकर अपनी चोंच से उस वीर्य का पान कर लिया। तभी पार्वती अंदर से रुष्ट होकर बाहर आई, और देवताओं के ऊपर क्रोध करते हुए उन पर आरोप लगाने लगी कि उन्होंने उसके संभोग के आंनद में विघ्न पैदा करके उसे बन्ध्या बना दिया। ऐसा कहते हुए उसने उनको श्राप दे दिया कि वे भी वन्ध्या की तरह निःसंतान रहेंगे। फिर अग्नि देवता को फटकारते हुए कहा कि उसने वीर्यपान जैसा नीच कर्म किया है, इसलिए वह कहीं शान्ति प्राप्त नहीं करेगा, और दाहकता से जलता रहेगा। वीर्य के असह्य तेज से परेशान होकर वह महादेव की शरण में चला गया, और उनसे अपनी व्यथाकथा सुनाई। महादेव शिव ने उसकी जलन कम करने के लिए एक उपाय बताया। उन्होंने कहा कि यदि माघ या जनवरी के महीने में प्रातः जल्दी स्नान करने वाली सात स्त्रियां इस वीर्य को अपनी योनि में ग्रहण करें, तो उसे उस वीर्य की जलन से छुटकारा मिल जाएगा। फिर देवी पार्वती भगवान शिव को फिर से गुफा के भीतर ले गई, और उनके साथ संभोग सुख प्राप्त करते हुए गणेश नामक पुत्र को उत्पन्न किया। तभी गुफा द्वार पर स्थित देवताओं के समक्ष आठ ऋषिपत्नियाँ पहुंच गईं। उन्हें माघ महीने के ठंडे जल के स्नान से ठंड लगी थी, इसलिए उनमें से सात स्त्रियां उस अग्नि के समीप जाने लगीं। एक अन्य ऋषिपत्नी अरुंधति को सब पता था, इसलिए उसने उन्हें रोका भी, पर वे नहीं रुकीं। अग्नि के पहुंचते ही अग्नि की सूक्ष्म चिंगारियों से होता हुआ वह वीर्य

उनके अंदर प्रविष्ट हो गया, और वे गर्भवती हो गईं। जब उनके पति ऋषियों को इस बात का पता चला, तो उन्हें व्यभिचारिणी कहते हुए उनका परित्याग कर दिया। अब वे अपने कृत्य पर पछताते हुए दुनिया में इधर-उधर भटकने लगीं। उनसे वीर्य की जलन नहीं सही जा रही थी। वे हिमालय पर्वत पे चली गईं और उस वीर्य को हिमालय को देकर जलन और दबाव के भार से मुक्त हो गईं। जब हिमालय से वह वीर्यतेज नहीँ सहा गया, तो उसने वह गंगा नदी को दे दिया। गंगा भी उस वीर्य के तेज से परेशान हो गई, और उसने उसे अपने किनारे पर उगे सरकंडों में उड़ेल दिया। वहाँ पर उससे एक सरकंडे के ऊपर एक बालक ने जन्म लिया। उसके जन्म लेते ही चारों ओर खुशियां छा गईं। अनजाने में ही शिव और पार्वती परम प्रसन्नता, ताजगी व किसी बड़े बोझ के खत्म होने का अनुभव करने लगे। अत्यधिक प्रेम उमड़ने के कारण पार्वती के स्तनों से खुद ही दूध निकलने लगा। उनके निवास पर चारों ओर उत्सव के जैसा माहौल छा गया। देवता खुशियां मनाने लगे, और तारकासुर जैसे राक्षसों का अंत निकट मानने लगे। वह बालक कार्तिकेय के नाम से विख्यात हुआ, जिसने बड़े होकर तारकासुर का वध किया।

उपरोक्त रूपक का मनोवैज्ञानिक व कुण्डलिनीयोग परक विश्लेषण

शिव एक जीव की आत्मा है। जीवात्मा और परमात्मा में तत्त्वतः कोई अंतर नहीं है। पार्वती उसकी पत्नि है। जीव हरेक मनुष्य जन्म में अपनी पत्नी के साथ भरपूर सहवास करता है, पर जीवन-मरण से मुक्ति का उपाय नहीं करता। देवताओं ने जगत और जीव के शरीर का निर्माण इसलिए किया है, ताकि उसमें रहने वाली जीवात्मा मुक्त हो सके। उससे देवताओं को भी फायदा होता है, क्योंकि वे फिर जीव की सीमित देह के बंधन को त्याग कर पूर्ववत अपनी असीमित ब्रह्मांडीय देह में विहार करने लगते हैं। कुछ जन्मों तक तो वे लोकपालक विष्णु की आज्ञा से उसे संभोग सुख में डूबे रहने देते हैं। पर जब उसके दसियों जन्म ऐसे ही बीत जाते हैं, तब विष्णु भी देवताओं के साथ मिलकर उसे मनाने चल पड़ते हैं। आध्यात्मिक मुक्ति के सम्बंध में मनुष्य को प्रकृति ने स्वतंत्र इच्छा प्रदान की है, इसलिए उस पर जोरजबरदस्ती तो नहीं चल सकती। इसका मतलब है कि देवताओं को प्रेम से उसकी प्रार्थना और स्तुति करनी पड़ती है। देवता उससे कहते हैं कि राक्षस तारकासुर उन्हें परेशान करता है, और आपका पुत्र ही उसका वध कर सकता है। तारकासुर अज्ञान का प्रतीक है, क्योंकि वह आदमी को अंधा कर देता है। जीव का पुत्र कुंडलिनी को कहा गया है। दरअसल जीव लिंग रूप में है, और उसकी पत्नी योनि रूप में है, जो गुहारूप ही है। देवपूजा आदि विभिन्न आध्यात्मिक साधनाओं से व सत्संग से उसके मन में कुंडलिनी का विकास होता है। उसके साथ संभोग की शक्ति भी मिश्रित हो जाती है। उसी प्रचण्ड कुंडलिनी के प्रभाव से उसके शरीर में कम्पन पैदा होने लगता है, और साँसे भी उखड़ने लगती हैं। इसीको रूपक कथा में धरती के कम्पन और वायु के स्तम्भन के रूप में दर्शाया गया है। जीव का केंद्रीय तंत्रिका तंत्र रीढ़ की हड्डी और मस्तिष्क में फैला हुआ है, जिसकी आकृति एक फन उठाए हुए नाग से मिलती है। कुंडलिनी चित्र उसी केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में पलता और बढ़ता है। स्वाभाविक है कि प्रचंड कुंडलिनी के वेग से वह थक जाएगा। साँसों की गति व शरीर के कम्पन को भी वही केंद्रीय तंत्रिका तंत्र नियंत्रित करता है। उसकी थकावट से ही साँसे अनियमित, लम्बी या उखड़ी हुई सी हो जाती हैं। इसीको योगासन और प्राणायाम भी कह सकते हैं। इसीको रूपक में यह कह कर बताया गया है कि शेषनाग की थकान से वायुमंडल की वायु स्तम्भित होने लगी। वही कुंडलिनी उसे संभोग के समय स्वाधिष्ठान चक्र और मूलाधार चक्र के आसपास महसूस होती है। इसीको समस्त देवताओं का गुहाद्वार पर इकट्ठे होने के रूप में दर्शाया गया है। क्योंकि कुंडलिनी ही पूरे शरीर का अर्थात सभी देवताओं का सार है। फिर शिवलिंग रूपी शिव गुफा से बाहर आते हैं। जीव को परमात्मा शिव की प्रेरणा से आभास हो जाता है कि जब जननांग क्षेत्र में वीर्य तत्त्व से कुंडलिनी चित्र इतना अधिक घनीभूत

हो जाता है, तब उसे मस्तिष्क को चढ़ाकर समाधि या कुंडलिनी जागरण को अवश्य प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए वह अपने ही शरीर के अंतर्गत स्थित देवताओं से कहता है कि जो उसके वीर्य के तेज को धारण कर पाएगा, वह तारकासुर के वध में सहायक होगा। फिर जीव अपनी पुट्ठे की, पेट की व मूत्रनालिका की मांसपेशियों को जोर से ऊपर की ओर सिकोड़ता हुआ वीर्य को ऊपर की ओर खींचता है। इस शक्तिशाली कर्म से शरीर में गर्मी चढ़ जाती है। इसे ही अग्नि देवता द्वारा वीर्यपान कहा गया है। वीर्य का चुसाव जननेन्द्रिय से शुरु होता है, जिसकी आकृति एक चोंच वाले पक्षी की तरह है। इसीको अग्नि द्वारा कबूतर बन कर अपनी चोंच से वीर्यपान करना बताया गया है। कई तांत्रिक हठयोगी तो इस क्रिया में इतनी महारत हासिल कर लेते हैं कि वे वीर्य को बाहर गिराकर भी वापिस ऊपर खींच लेते हैं। इस तकनीक को तंत्र में वज्रोली क्रिया कहा जाता है। इससे क्योंकि योनि में वीर्य नहीं गिरता, इसलिए स्वाभाविक है कि गर्भ नहीं बनेगा। यही पार्वती के द्वारा देवताओं को श्राप देना है। क्योंकि शरीर देवताओं से ही बना है, इसलिए स्वाभाविक है कि जीव के निःसन्तान होने से देवता भी निःसन्तान अर्थात बन्ध्या हो जाएंगे। वीर्य को धारण करने से जननांग में एक दबाव सा या जलन सी पैदा हो जाती है। यही पार्वती द्वारा अग्निदेव को दिया गया श्राप है। परमात्मा शिव रूपी गुरु की आज्ञा से जीव अपनी जननेन्द्रिय के वीर्य के तेज को अपने शरीर के सातों चक्रों के ऊपर प्रतिस्थापित कर देता है। क्योंकि आठवां चक्र शरीर के बाहर और मस्तिष्क से थोड़ा ऊपर होता है, इसलिए वह उसे वीर्यतेज नहीं दे पाता। नहाते समय चक्रों पर एक आनन्दमयी संवेदना और सिकुड़न पैदा होती है। पानी जितना ठंडा होता है, यह अनुभव इतना ही ज्यादा होता है। इसीलिए शास्त्रों में सभी के लिए, विशेषकर योगियों के लिए वर्षभर प्रातः जल्दी उठकर ठंडे पानी से नहाने की हिदायत दी गई है। अपनी सिकुड़न की शक्ति से चक्र उस वीर्यतेज को जननांग से अपनी ओर खींच लेते हैं। यही ऋषिपत्नियों का ठंड के मारे अग्नि के निकट जाकर आग तपना, और अग्नि की सूक्ष्म चिंगारियों के माध्यम से उनके अंदर वीर्यतेज का प्रविष्ट होना है। क्योंकि माघ का महीना सबसे ठंडा होता है, इसलिए स्वाभाविक है कि यह प्रक्रिया तब सर्वाधिक होती है। इसीको रूपक में उन आठ स्त्रियों, सात स्त्रियों व माघ माह में उनके ठंडे पानी से स्नान के रूप में दिखाया गया है। क्योंकि कुंडलिनीयुक्त हठयोग से भी चक्रों पर ठंडे पानी के जैसा प्रभाव पड़ता है, इसलिए यह रूपक अंश कुंडलिनी योग के हठयोग भाग (विशेषकर आसनों) का भी प्रतीक है। मन को ऋषि के रूप में दिखाया गया है। अलग-अलग चक्रों में मन के अलग-अलग विचार दबे होते हैं। इसलिए चक्रों को ही ऋषिपत्नियाँ कहा गया है। चक्र एक छल्ले के सुराख के जैसी आकृति है, इसलिए इसे योनिरूप में दर्शाया गया है। चक्र में छिपा मन का विचार स्त्रीरूप है। उसमें स्थापित वीर्य का तेज पुरुषरूप है। दोनों का मिलन होने से गर्भ बनता है। इसीको ऋषिपत्नियों का गर्भवती होना बताया गया है। चक्र पर वीर्य का तेज भी ज्यादा शक्तिशाली नहीं होता, और कुंडलिनी विचार भी मस्तिष्क के कुंडलिनी विचार की तरह मजबूत नहीं होता। इसलिए वह गर्भ कामयाब नहीं हो पाता। गर्भ और वीर्य के तेज से चक्रों को जलन महसूस होने लगी। वीर्य के तेज से चक्र पर इधर-उधर के फालतू विचारों का शोर थम गया, और उनकी जगह एकमात्र कुंडलिनी विचार ने ले ली। मतलब मन ने चक्र का साथ छोड़ दिया, क्योंकि विचारों का समूह ही मन है। यही ऋषियोँ के द्वारा अपनी पत्नियों को व्यभिचार का आरोप लगाकर छोड़ना है। सबसे अधिक जलन और दबाव स्वाधिष्ठान चक्र को महसूस होता है। चक्रों ने गर्भ सहित उस वीर्यतेज को रीढ़ की हड्डी को दे दिया। मतलब कि जीव ने स्वाधिष्ठान चक्र की जलन के साथ रीढ़ की हड्डी को उसके ध्यान के साथ अनुभव किया। रीढ़ की हड्डी मूलाधार चक्र से मस्तिष्क तक जाती है। पर उसकी अनुभूति पिछले स्वाधिष्ठान चक्र से पिछले आज्ञा चक्र तक ज्यादा होती है। यही ऋषिपत्नियों के द्वारा अपने अंदर प्रविष्ट वीर्य और गर्भ के तेज को हिमालय को देना है। नीचे का, पुट्ठे वाला क्षेत्र पर्वत का निचला आधार है, और मस्तिष्क उस पर्वत का ऊपरी आधार या शिखर है, जबकि रीढ़ की हड्डी उन दोनों मूलभूत आधारों को जोड़ने वाली एक पतली, लम्बी और ऊंची पहाड़ी है। हड्डी में यह सामर्थ्य नहीँ है कि वह अपने अंदर स्थित वीर्यतेज को प्रवाहित कर सके, क्योंकि वह स्थूल व कठोर होती है। इससे वीर्य का तेज उसके विभिन्न व विशेष बिंदुओं पर एकस्थान पर ही दबाव डालने लगा। ये सभी बिंदु फ्रंट चैनल के चक्रों की सीध में ठीक पीछे रीढ़ की हड्डी में होते हैं।

इनमें से दो मुख्य बिंदु हैं, पीछे का स्वाधिष्ठान चक्र और पीछे का आज्ञा चक्र। वीर्यतेज के ज्यादा होने पर अनाहत चक्र के क्षेत्र में भी बनता है। और ज्यादा होने पर नाभि चक्र के क्षेत्र में भी बन जाता है, इस तरह से। जब तांत्रिक शक्ति से सम्पन्न, नियमित, व निरंतर योगाभ्यास से वीर्य का तेज बहुत अधिक बढ़ जाता है, तब वह रीढ़ की हड्डी से सुषुम्ना नाड़ी में चला जाता है। इसीको इस तरह से लिखा गया है कि जब हिमालय के लिए वीर्यतेज असहनीय हो गया तो उसने उसे गंगा नदी में उड़ेल दिया। गंगा नदी यहाँ सुषुम्ना नाड़ी को कहा गया है। सुषुम्ना से होता हुआ वह प्रकाशमान तेज एक विद्युत रेखा के रूप में सहस्रार में प्रविष्ट हो जाता है। वहाँ उस तेज की शक्ति से कुंडलिनी जागृत हो जाती है। इसको रूपक के तौर पर ऐसा लिखा गया है कि गंगा के प्रवाह में बहता हुआ वह वीर्य गंगा के लिए असह्य हो गया। इसलिए गंगा ने उसे किनारे पर उगी हुई सरकंडे की घास में उड़ेल दिया। वहाँ उससे एक सरकंडे के ऊपर एक बालक का जन्म हुआ। सरकंडे की घास वाला किनारा यहाँ मस्तिष्क के लिए कहा गया है। मस्तिष्क को ढकने वाली खोपड़ी पर सरकंडे की तरह पैने और चुभने वाले बाल होते हैं। दोनों को ही पशु नहीं खाते। सरकंडे की घास में जड़ से निकलने वाली कुछ ऐसी शाखाएं भी होती हैं, जिन पर फूल लगते हैं। वे बांस की तरह लकड़ीनुमा और गाँठेदार होती हैं। उनसे लकड़ी का छोटामोटा और सजावटी फर्नीचर भी बनाया जाता है। उन पर पत्तों की घनी छाल लगी होती है, जिसको निकालकर और कूट कर एक रेशा निकाला जाता है। उससे मूँज की रस्सी बनाई जाती है। इसीलिए मूँज एक आध्यात्मिकता और सात्विकता का प्रतीक भी है। दरअसल सरकंडा एक बहुपयोगी पौधा है, जो नदी या तालाब के किनारों पर उगता है। सरकंडे की उस पुष्पगुच्छ वाली शाखा में इसी तरह बीच-बीच में गाँठे होती हैं, जिस तरह रीढ़ की हड्डी में चक्र। सम्भवतः इसीलिए उसपर बालक का जन्म बताया गया है। कुंडलिनी चित्र का जागरण ही बालक का जन्म है। पर यह भौतिक बालक नहीं, मानसिक बालक होता है। अगर जागरण न भी हो, तो भी कुंडलिनी चित्र का मन में दृढ़ समाधि के तौर पर स्थायी और स्पष्ट रूप से बने रहना भी कुंडलिनी-बालक का जन्म ही कहा जाएगा। वीर्य इसे बाहर निकलकर पैदा नहीं करता, बल्कि अंदर या उल्टी दिशा में जाकर पैदा करता है। ब्रह्मा भी एक मानसिक चित्र ही है, इसीलिए उसे अयोनिज कहा जाता है। मतलब वह जो योनि से पैदा न हुआ हो। कोई शंका कर सकता है कि केवल एक बार के यौनयोग से कैसे कुंडलिनी जागरण या दृढ़ समाधि की प्राप्ति हो सकती है। पर यह हो भी सकता है। प्रसिद्ध व महान तंत्र दार्शनिक ओशो कहते थे कि यदि एक बार भी ठीक ढंग से संभोग के साथ समाधि का अनुभव हो जाए, तो भी आध्यात्मिक सफलता मिल जाती है। यह अलग बात है कि वे ऐसे तांत्रिक रहस्यों को खुले तौर पर, प्रत्यक्ष तौर पर और मौखिक भाषणों के रूप में आम जनमानस के बीच ले गए, जिससे गलतफहमी से उनके बहुत से दुश्मन और आलोचक भी बन गए। यह भी आशंका जताई जाती है कि सम्भवतः उनकी मृत्यु के पीछे किसी साजिश का हाथ हो। इसलिए तंत्र को गुप्त कला या गुह्य विद्या कहा जाता है। यद्यपि इसे आज की खुली दुनिया में छिपाना ठीक नहीं है, फिर भी कुछ गोपनीयता की आवश्यकता है, और अपात्र, अनिच्छुक, अविश्वसनीय, विश्वासहीन और असमर्पित व्यक्ति के सामने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रकट नहीं किया जाना चाहिए। लेखक की प्रत्यक्ष व्यक्तिगत पहचान दिखाए बिना और किसी संभावित लक्ष्य को तय किए बिना, और स्वार्थ व पक्षपात के बिना, सभी के लिए ऑनलाइन ब्लॉग में इसे प्रदर्शित करना आज के मुक्तसमाज में गोपनीयता का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता है। सम्भवतः इसी गोपनीयता को बनाए रखने के लिए ही पुराणों के लेखक ने कभी भी अपना नाम और पता सार्वजनिक नहीं किया। हर जगह लेखक को दर्शाने के लिए 'व्यास' शब्द लिखा गया है, जो सभी आध्यात्मिक कथावाचकों के लिए दिया गया एक आम सामान्य शब्द है। कुंडलिनी जागरण से शरीर का आधा बायाँ भाग और आधा दायाँ भाग, दोनों बराबर मात्रा में पुष्ट और प्रसन्न हो गए। कुंडलिनी चित्र यहाँ बाएँ भाग या स्त्री या पार्वती की खुशी का प्रतीक है, और भटकती हुई आत्मा की शांति यहाँ दाएँ भाग या पुरुष या शिव की खुशी का प्रतीक है। मतलब कि एकदूसरे से बिछुड़े हुए शिव और पार्वती अपने पुत्र के रूप में एक दूसरे में एक हो गए। जीव कभी पूर्ण और एक था। पर माया की शक्ति से वह दो टुकड़ों में बंट कर अपूर्ण हो गया। तभी से वे दोनों टुकड़े एक होने का प्रयास कर रहे हैं। जीव के द्वारा फिर से पूर्ण होने के लिए की गई आपाधापी से ही जीव

और जगत का विकास होता है। तांत्रिक जोड़े के पुरुष और स्त्री भाग या पार्टनर, दोनों भी वीर्यतेज के बोझ, दबाव, व दाह से मुक्त होकर सुप्रसन्न हो गए। पूरे मन में हर्षोल्लास व आनन्द छा गया। शरीर का रोम-रोम खिल गया। इसी को कथा में ऐसे दर्शाया गया है कि उस बालक के जन्म लेने पर शिव व पार्वती, और सभी देवता दोनों बहुत प्रसन्न हुए, और चारों ओर हर्षोल्लास छा गया। कुंडलिनी जागरण के बाद कुंडलिनी चित्र मन में अधिक से अधिक स्पष्ट और स्थायी होता गया। फिर वह स्थायी समाधि के रूप में मन में लगातार बना रहने लगा। उस स्थायी समाधि से जगत के प्रति आसक्ति क्षीण होती गई, और अद्वैत भावना बढ़ती रही। फिर जीवात्मा को अपनी जीवनमुक्ति का आभास हुआ। यही उसके अज्ञान का अंत था। इसको मिथक कथा में इस तरह दिखाया गया है कि वह बालक बड़ा होकर कार्तिकेय नाम से विख्यात हुआ, जिसने राक्षस तारकासुर का वध किया। साथ में, इस कथा के बारे में यह भी लिखा गया है कि जो कोई इस कथा को श्रद्धापूर्वक पढ़ेगा या सुनेगा, वह जगत के सारे सुख प्राप्त करते हुए आध्यात्मिक मुक्ति प्राप्त करेगा। इसका मतलब है कि यह मिथकीय व रूपकात्मक कथा तांत्रिक कुंडलिनी योग का ही वर्णन कर रही है। यदि यह साधारण सहवास, पुत्रजन्म या राक्षसवधकी कथा होती, तो आध्यात्मिक मुक्ति की बात तो दूर की, साधारण लौकिक सुखों की प्राप्ति में भी संदेह होता।

कुंडलिनी साहित्य के रूप में संस्कृत साहित्य एक आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, अत्याधुनिक, और सदाबहार साहित्य है

संस्कृत साहित्य कुंडलिनी आधारित साहित्य होने के कारण ही एक अनुपम साहित्य है

दोस्तो, मैं संस्कृत साहित्य का जन्मजात शौकीन हूँ। संस्कृत साहित्य बहुत मनोरम, सजीव, जीवंत व चेतना से भरा हुआ है। एक सज्जन संस्कृत विद्वान ने बहुत वर्षों पहले 'संस्कृत साहित्य परिचायिका' नाम से एक सुंदर, संक्षिप्त व ज्ञान से भरपूर पुस्तक लिखी थी। उस समय ऑनलाइन पुस्तकों का युग नहीं आया था। इससे वह आजतक गुमनामी में पड़ी रही। मेरी इच्छा उसको ऑनलाइन करने की हुई। कम्प्यूटर पर टाइपिंग में समस्या आई, क्योंकि अधिकांश शब्द संस्कृत के थे, और टाइप करने में कठिन थे। भला हो एंड्रॉयड में गूगल के इंटेलिजेंट कीबोर्ड का। उससे अधिकांश टाइपिंग खुद ही होने लगी। मैं तो शुरु के कुछ ही वर्ण टाइप करता हूँ, बाकी वह खुद प्रेडिक्ट कर लेता है। आधे से ज्यादा टाइप हो गई। अधिकांश पब्लिशिंग प्लेटफोरमों पर तो मैंने इसे ऑनलाइन भी कर दिया है। शेष स्थानों पर भी मैं इसे जल्दी ही ऑनलाइन करूँगा। निःशुल्क पीडीएफ बुक के रूप में यह इस वेबसाइट के शॉप पेज पर दिए गए निःशुल्क पुस्तकों के लिंक पर भी उपलब्ध है। यह सभी साहित्यप्रेमियों के पढ़ने लायक है। आजकल किसी भी विषय का आधारभूत परिचय ही काफी है। बोलने का तात्पर्य है कि विषय की हिंट ही काफी है। उसके बारे में बाकि विस्तार तो गूगल पर व अन्य साधनों से मिल जाता है। केवल साहित्य से जुड़े हुए प्रारम्भिक संस्कार को बनाने की आवश्यकता होती है, जिसे यह पुस्तक बखूबी बना देती है। संस्कृत साहित्य का भरपूर आनंद लेने के लिए इस पुस्तक का कोई सानी नहीं है। यह छोटी जरूर है, पर गागर में सागर की तरह है। इसी पुस्तक से निर्देशित होकर मैं कालीदासकृत कुमारसम्भव काव्य की खोज गूगल पर करने लगा। मुझे पता चला कि इसमें शिव-पार्वती के प्रेम, उससे भगवान कार्तिकेय के जन्मादि की कथा का वर्णन है। कुमार मतलब लड़का या बच्चा, सम्भव मतलब उत्पत्ति। कहते हैं कि शिव और पार्वती के संभोग का वर्णन करने के पाप के कारण कवि कालीदास को कुष्ठरोग हो गया था। इसलिए वहां पर उन्होंने उसे अधूरा छोड़ दिया। बाद में उसे पूरा किया गया। कुछ लोग कहते हैं कि आम जनमानस ने शिव-पार्वती के प्रति भक्तिभावना के कारण उनके संभोग-वर्णन को स्वीकार नहीं किया। इसलिए उन्हें उसे रोकना पड़ा। पहली संभावना यद्यपि विरली पर तथ्यात्मक भी लगती है, क्योंकि वह आम संभोग नहीं है। उसका लौकिक तरीके से वर्णन नहीं किया जा सकता। वह एक तंत्रसाधना के रूप में है, और रूपकात्मक है, जैसा कि पिछली पोस्ट में दिखाया गया है। लौकिक हास्यविनोद व मनोरंजन का उसमें कोई स्थान नहीं है। इस संभावना के पीछे मनोविज्ञान तथ्य भी है। क्योंकि देवताओं के साथ बहुत से लोगों की मान्यताएं और आस्थाएँ जुड़ी होती हैं, इसलिए उनके अपमान से उनकी अभिव्यक्त बददुआ या नाराजगी की दुर्भावना तो लग ही सकती है, पर अनभिव्यक्त अर्थात अवचेतनात्मक रूप में भी लग सकती है। इस तरह से अवलोकन करने पर पता चलता है कि सारा संस्कृत साहित्य हिंदु वेदों और पुराणों की कथाओं और आख्यानों के आधार पर ही बना है। अधिकाँश साहित्यप्रेमी और लेखक वेदों या पुराणों से किसी मनपसंद विषय को उठा लेते हैं, और उसे विस्तार देते हुए एक नए साहित्य की रचना कर लेते हैं। क्योंकि वेदों और पुराणों के सभी विषय कुण्डलिनी पर आधारित होने के कारण वैज्ञानिक हैं, इसलिए संस्कृत साहित्य भी कुण्डलिनीपरक और वैज्ञानिक ही सिद्ध होता है।

विभिन्न धर्मों की मिथकीय आध्यात्मिक कथाओं के रहस्योद्घाटन को सार्वजनिक करना आज के आधुनिक, वैज्ञानिक, व भौतिकवादी युग की मूलभूत मांग प्रतीत होती है

मुझे यह भी लगता है कि आध्यात्मिक रहस्यों को उजागर करने से समाज को बहुत लाभ भी प्राप्त हो सकता है। मैं यह तो नहीं कहता कि हर जगह रहस्य को उजागर किया जाए, क्योंकि ऐसा करने से रहस्यात्मक कथाओं का आनन्द समाप्त ही हो जाएगा। पर कम से कम एक स्थान पर तो उन रहस्यों को उजागर करने वाली रचना उपलब्ध होनी चाहिए। कहते हैं कि आध्यात्मिक सिद्धांतों व तकनीकों को इसलिए रहस्यमयी बनाया गया था, ताकि आदमी आध्यात्मिक परिपक्वता से पहले उनको आजमाकर पथभ्रष्ट न होता। पर कई बार ऐसा भी होता है कि अगर आध्यात्मिक परिपक्वता से पहले ही आदमी को रहस्य की सच्चाई पता चल जाए, तब भी वह उससे तभी लाभ उठा पाएगा जब उसमें परिपक्वता आएगी। रहस्य को समझ कर उसे यह लाभ अवश्य मिलेगा कि वह उससे प्रेरित होकर जल्दी से जल्दी आध्यात्मिक प्रगति प्राप्त करने की कोशिश करके आध्यात्मिक परिपक्वता को हासिल करेगा, ताकि उस रहस्य से लाभ उठा सके। साथ में, तब तक वह योग साधना के रहस्यों व सिद्धांतों से भलीभांति परिचित हुआ रहेगा। उसे जरूरत पड़ने पर वे नए और अटपटे नहीं लगेंगे। कहते भी हैं कि अगर कोई आदमी अपने पास लम्बे समय तक चाय की दुकान का सामान संभाल कर रखे तो वह एकदिन चाय की दुकान जरूर खोलेगा, और कामयाब उद्योगपति बनेगा। पहले की अपेक्षा आज के युग में आध्यात्मिक रहस्योद्घाटन को सार्वजनिक करना इसलिए भी जरूरी लगता है क्योंकि आजकल ईमानदार, व निपुण आध्यात्मिक गुरु विरले ही मिलते हैं, और जो होते हैं वे भी अधिकांशतः आम जनमानस की पहुंच से दूर होते हैं। पहले ऐसा नहीं होता था। उस समय अध्यात्म का बोलबाला होता था। आजकल तो भौतिकता का बोलबाला ज्यादा है। अगर आजकल कोई आध्यात्मिक रूप से परिपक्व हो जाए, और उसे उसकी जरूरत के अनुसार सही मार्गदर्शन न मिले, तो उसे तो बड़ी आध्यात्मिक हानि उठानी पड़ सकती है। एक अन्य लाभ यह भी मिलेगा कि जब सभी धर्मों का रहस्योद्घाटन हो जाएगा, तब सबको कुंडलिनी तत्त्व अर्थात अद्वैत तत्त्व ही अध्यात्म के मूल तत्त्व के रूप में नजर आएगा। इससे सभी धर्मों के बीच में आपसी कटुता समाप्त हो जाएगी और असल रूप में **सर्वधर्मसमभाव** स्थापित हो पाएगा। इससे दुनिया के अधिकांश झगड़े समाप्त हो जाएंगे।

इड़ा नाड़ी को ही ऋषिपत्नी अरुन्धती कहा गया है

अब पिछली पोस्ट में वर्णित रूपकात्मक कथा को आगे बढ़ाते हैं। उसमें जिस अरुंधति नामक ऋषिपत्नी का वर्णन है, वह दरअसल इड़ा नाड़ी है। इड़ा नाड़ी अर्धनारीश्वर के स्त्री भाग का प्रतिनिधित्व करती है। कई बार हठयोग का अभ्यास करते समय प्राण इड़ा नाड़ी में ज्यादा प्रवाहित होने लगता है। इसका मतलब है कि वह प्राण को सुषुम्ना में जाने से रोकती है। सुषुम्ना से होता हुआ ही प्राण चक्रों पर अच्छी तरह स्थापित होता है। प्राण के साथ वीर्यतेज भी होता है। इसको यह कह कर बताया गया है कि अरुंधति ने ऋषिपत्नियों को अग्नि देव के निकट जाने से रोका। पर योगी ने आज्ञाचक्र के ध्यान से प्राण के साथ वीर्यतेज को सुषुम्ना से प्रवाहित करते हुए चक्रों पर उड़ेल दिया। इसको ऐसे दिखाया गया है कि ऋषिपत्नियों ने अरुंधती की बात नहीं मानी, पर भगवान शिव के इशारे को समझा। आज्ञाचक्र शिव का प्रतीक भी है, क्योंकि वहीँ पर उनका तीसरा नेत्र है।

कुंडलिनी जागरण और कुंडलिनी योग के बीच में केवल अनुभव की मात्रा को लेकर ही भिन्नता है, अनुभव की प्रकृति को लेकर नहीं

कई जगह सहस्रार को आठवां चक्र माना जाता है। सहस्रार तक वीर्यतेज पहुंचाना अन्य चक्रों से मुश्किल होता है। जबरदस्ती ऐसा करने से सिरदर्द होने लग सकता है। इसलिए नीचे के सात चक्रों पर ही वीर्य को स्थापित किया जाता है। इसीको रूपक में ऐसा कहा गया है कि आठ में से सात ऋषिपत्नियाँ ही अग्निदेव के पास जाकर आग सेंकने लगीं। आई तो आठवी भी, पर उसने आग की तपिश नहीं ली। मतलब कि थोड़ा सा वीर्यतेज तो सहस्रार तक भी जाता है, पर वह नगण्यतुल्य ही होता है। सहस्रार तक वीर्यतेज तो मुख्यतः सुषुम्ना के ज्यादा क्रियाशील होने से उससे होकर ही जाता है। इसीको रूपक में यह कहा गया है कि गंगानदी ने शिव के वीर्य को सरकंडे की घास में उड़ेल दिया। यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि प्राण या वीर्यतेज या ऊर्जा या शक्ति के साथ कुंडलिनी चित्र तो रहता ही है। ये सभी नाम आपस में पर्यायवाची की तरह हैं, अर्थात सभी शक्तिपर्याय हैं। वीर्यतेज से सर्वप्रथम व सबसे ज्यादा जलन आगे के स्वाधिष्ठान चक्र पर महसूस होती है। यह उसी जननांग से जुड़ा है, जिसे पिछले लेख में कबूतर कहा गया है। उसके साथ जब चक्रों पर बारी-बारी से कुंडलिनी का भी ध्यान किया जाता है, तब वह तेज चक्रों पर आने लगता है। फिर वह चक्रों से रीढ़ की हड्डी में जाता हुआ महसूस होता है। सम्भवतः यह आगे के चक्र से पीछे के चक्र को रिस जाता है। इसीलिए आगे-पीछे के दोनों चक्र आपस में एक पतले एनर्जी चैनल से जुड़े हुए बताए जाते हैं। इसीको मिथक कथा में यह कह कर बताया गया है कि ऋषिपत्नियों ने वह वीर्य तेज हिमालय को दिया, क्योंकि पीछे वाले चक्र रीढ़ की हड्डी में ही होते हैं। पुराण बहुत बारीकी से लिखे गए होते हैं। उनके हरेक शब्द का बहुत बड़ा और गहरा अर्थ होता है। इस तेज-स्थानांतरण का आभास पीठ के मध्य भाग में नीचे से ऊपर तक चलने वाली सिकुड़न के साथ आनन्द की व नीचे के बोझ के कम होने की अनुभूति से होता है। फिर थोड़ी देर बाद उस सिकुड़न की सहायता से वह तेज सुषुम्ना में प्रविष्ट होता हुआ महसूस होता है। यह अनुभूति बहुत हल्की होती है, और खारिश की या किसी संवेदना की या यौन उन्माद या ऑर्गेज्म की एक आनन्दमयी लाइन प्रतीत होती है। यह ऐसा लगता है कि पीठ के मेरुदंड की सीध में एक मांसपेशी की सिकुड़न की रेखा एकसाथ नीचे से ऊपर तक बनती है और ऑर्गेज्म या यौन-उन्माद के आनन्द के साथ कुछ देर तक लगातार बनी रहती है। ऐसा लगता है कि वह नाड़ी सहस्रार में कुछ उड़ेल रही है। इसके साथ ही कुंडलिनी चित्र सहस्रार में महसूस होता है। अभ्यास के साथ तो हर प्रकार की अनुभूति बढ़ती रहती है। इसीको रूपक में ऐसे कहा गया है कि अग्निदेव ने वह तेज सात ऋषिपत्नियों को दिया, ऋषिपत्नियों ने हिमालय को दिया, हिमालय ने गंगानदी को, और गंगानदी ने सरकंडे की घास को दिया। इसका सीधा सा मतलब है कि कुंडलिनी क्रमवार ही सहस्रार तक चढ़ती है, सीधी नहीं। योग में अक्सर ऐसा ही बोला जाता है। हालाँकि तांत्रिक योग से सीधी भी सहस्रार में जा सकती है। किसीकी कुंडलिनी मूलाधार में बताई जाती है, किसी की स्वाधिष्ठान चक्र तक ऊपर चढ़ी हुई, किसीकी मणिपुर चक्र तक, किसीकी अनाहत चक्र तक, किसीकी विशुद्धि तक, किसी की आज्ञाचक्र तक और किसीकी सहस्रार तक चढ़ी हुई बताई जाती है। हालांकि इन सातों चक्रों में तो कुण्डलिनी प्रतिदिन के योगाभ्यास में चढ़ती और उतरती रहती है, पर कुंडलिनी को लम्बे समय तक एक चक्र पर स्थित रखने के लिए काफी अभ्यास की जरूरत होती है। आपकी कुंडलिनी प्रतिदिन सहस्रार में भी जाएगी, पर यह योगाभ्यास के दौरान सहस्रार पर ध्यान लगाने के समय जितने समय तक ही सहस्रार में रहेगी। जब कुण्डलिनी लगातार, पूरे दिनभर, कई दिनों तक और बिना किसी योगाभ्यास के भी सहस्रार में रहने लगेगी, तभी वह सहस्रार तक चढ़ी हुई मानी जाएगी। इसे ही प्राणोत्थान भी कहते हैं। इसमें आदमी दैवीय गुणों से भरा होता है। पशुओं को आदमी की इस अवस्था का भान हो जाता है। मैं जब इस अवस्था के करीब होता हूँ, तो पशु मुझे विचित्र प्रकार से सूंघने और अन्य प्रतिक्रियाएं दिखाने लगते हैं। इसमें ही कुंडलिनी जागरण की सबसे अधिक

संभावना होती है। इसके लिए सेक्सुअल योग से बड़ी मदद मिलती है। ये जरूरी नहीं कि ये सभी अनुभव तभी हों, जब कुंडलिनी जागरण हो। हरेक कुंडलिनी योगी को ये अनुभव हमेशा होते रहते हैं। कई इन्हें समझ नहीं पाते, कई ठीक ढंग से महसूस नहीं कर पाते, और कई दूसरे छोटे-मोटे अनुभवों से इन्हें अलग नहीं कर पाते। सम्भवतः ऐसा तब होता है, जब कुंडलिनी योग का अभ्यास हमेशा या लंबे समय तक नित्य प्रतिदिन नहीं किया जाता। अभ्यास छोड़ने पर कुण्डलिनी से जुड़ीं अनुभूतियां शुरु के सामान्य स्तर पर पहुंच जाती हैं। मैं एक उदाहरण देता हूँ। नहाते समय चाहे शरीर के किसी भी हिस्से में पानी के स्पर्श की अनुभूति ध्यान के साथ की जाए, वह अनुभूति एक सिकुड़न के साथ पीठ से होते हुए सहस्रार तक जाती हुई महसूस होती है। इससे जाहिर होता है कि मेरुदण्ड में ही सुषुम्ना नाड़ी है, क्योंकि वही शरीर की सभी संवेदनाओं को मस्तिष्क तक पहुंचाती है। कुंडलिनी जागरण और कुंडलिनी योग के बीच में केवल अनुभव की मात्रा को लेकर ही भिन्नता है, अनुभव की प्रकृति को लेकर नहीं। कुंडलिनी जागरण में कुंडलिनी अनुभव उच्चतम स्तर तक पहुंच जाता है, व इससे सम्बंधित अन्य अनुभव भी शीर्षतम स्तर तक पहुंच सकते हैं। कुंडलिनी जागरण के बाद आदमी फिर से एक साधारण कुंडलिनी योगी बन जाता है, ज्यादा कुछ नहीं।

मेडिटेशन एट टिप अर्थात शिखर पर ध्यान

यह एक वज्रोली क्रिया का छोटा रूप ही है। इसमें वीर्य को बाहर नहीं गिराया जाता पर पेनिस टिप या वज्रशिखा पर उसे ले जाकर वापिस ऊपर चढ़ाया जाता है। यह ऐसा ही है कि वीर्य स्खलन के बिना ही उसकी चरम अनुभूति के करीब तक संवेदना को बढ़ाया जाता है, और फिर संभोग को रोक दिया जाता है। यह ऐसा ही है कि यदि उस अंतिम सीमाबिन्दु के बाद थोड़ा सा संभोग भी किया जाए, तो वीर्य का वेग अनियंत्रित होने से वीर्यस्खलन हो जाता है। यह तकनीक ही आजकल के तांत्रिकों विशेषकर बुद्धिस्ट तांत्रिकों में लोकप्रिय है। यह बहुत प्रभावशाली भी है। यह तकनीक पिछले लेख में वर्णित अग्निदेव के कबूतर बनने की शिवपुराण कथा से ही आई है। यह ज्यादा सुरक्षित भी है, क्योंकि इसमें पूर्ण वज्रोली की तरह ज्यादा दक्षता की जरूरत नहीं, और न ही संक्रमण आदि का भय ही रहता है। दरअसल शिवपुराण में रूपकों के रूप में लिखित रहस्यात्मक कथाएं ही तंत्र का मूल आधार हैं।

शरीर व उसके अंगों का देवता के रूप में सम्मान करना चाहिए

तंत्र शास्त्रों में आता है कि योनि में सभी देवताओं का निवास है। इसीलिए कामाख्या मंदिर में योनि की पूजा की जाती है। इससे सभी देवताओं की पूजा स्वयं ही हो जाती है। दरअसल ऐसा मूलाधार की प्रचण्ड ऊर्जा के कारण ही होता है। वास्तव में यही मूलाधार को ऊर्जा देती है। उससे वहाँ कुंडलिनी चित्र का अनुभव होता है। क्योंकि मन में सभी देवताओं का समावेश है, और कुंडलिनी मन का सारभूत तत्त्व या प्रतिनिधि है, इसीलिए ऐसा कहा जाता है। इसलिए पिछले लेख में वर्णित रूपक के कुछ यौन अंशों को अन्यथा नहीं लेना चाहिए। शरीरविज्ञान दर्शन के अनुसार शरीर के सभी अंग भगवदस्वरूप हैं। पुराणों के अनुसार भी शरीर के सभी अंग देवस्वरूप हैं। शरीर में सभी 33 करोड़ देवताओं का वास है। इसका मतलब तो यह हुआ कि शरीर का हरेक सेल या कोशिका देवस्वरूप ही है। इससे यह अर्थ भी निकलता है कि शरीर की सेवा और देखभाल करना सभी देवताओं की पूजा करने के समान ही है। पुस्तक 'शरीरविज्ञान दर्शन' में यह सभी कुछ तथ्यों के साथ सिद्ध किया गया है। यह शरीर सभी पुराणों का और शरीरविज्ञान दर्शन का सार है। पुराण पुराने समय में लिखे गए थे, पर शरीरविज्ञान दर्शन आधुनिक है। इसलिए शरीर के किसी भी अंग का अपमान नहीं करना चाहिए। शारीरिक अंगों का अपमान करने से देवताओं का अपमान होता है। ऐसा करने पर देवता तारकासुर रूपी अज्ञान को नष्ट करने में मदद नहीं करते, जिससे आदमी की मुक्ति में अकारण विलंब हो जाता है। कई लोग धर्म के नाम पर इसलिए नाराज हो जाते हैं कि किसी देवता की तुलना शरीर के अंग से क्यों कर दी। इसका

मतलब तो भगवदस्वरूप शरीर और उसके अंगों को तुच्छ व हीन समझना हुआ। एक तरफ वे देवता को खुश कर रहे होते हैं, पर दूसरी तरफ भगवान को नाराज कर रहे होते हैं।

कुंडलिनी पुरुष के रूप में भगवान कार्तिकेय का लीला विलास

मित्रो, मुझे भगवान कार्तिकेय की कथा काफी रोचक लग रही है। इसमें बहुत से कुंडलिनी रहस्य भी छिपे हुए लगते हैं। इसलिए हम इसे पूरा खंगालेंगे। शिवपुराण के अनुसार ही, फिर सरकंडे पर जन्मे उस बालक को ऋषि विश्वामित्र ने देखा। बालक ने उन्हें अपना वेदोक्त संस्कार कराने के लिए कहा। जब विश्वामित्र ने कहा कि वे क्षत्रिय हैं, ब्राह्मण नहीं, तब कार्तिकेय ने उनसे कहा कि वे उसके वरदान से ब्राह्मण हो गए। फिर उन्होंने उसका संस्कार किया। तभी वहाँ छः कृत्तिकाएँ आईं। जब वे उस बालक को लेकर लड़ने लगीं, तो वह छः मुंह बनाकर छहों का एकसाथ स्तनपान करने लगा। अग्निदेव ने भी उसे अपना पुत्र कहकर उसे शक्तियां दीं। उन शक्तियों को लेकर वह करौंच पर्वत पर चढ़ा और उसके शिखर को तोड़ दिया। तब इंद्र ने नाराज होकर उस पर वज्र से कई प्रहार किए, जिनसे शाख, वैशाख और नैगम तीन पुरुष पैदा हुए और वे चारों इंद्र को मारने के लिए दौड़ पड़े। कृत्तिकाओं ने अपना दूध पिलाकर कार्तिकेय को पाला पोसा, और जगत की सभी सुख सुविधाएं उसे दीं। उसे उन्होंने दुनिया की नजरों से छिपाकर रखा कि कहीं उस प्यारे नन्हें बालक को कोई उनसे छीन न लेता। पार्वती ने शंकित होकर शिव से पूछा कि उनका अमोघ वीर्य कहाँ गया। उसे किसने चुराया। वह निष्फल नहीं हो सकता। भगवान शिव जब पार्वती के साथ व अन्य देवताओं के साथ अपनी सभा में बैठे थे, तो उन्होंने सभी देवताओं से इस बारे पूछा। उन्होंने कहा कि जिसने भी उनके अमोघ वीर्य को चुराया है, वह दण्ड का भागी होगा, क्योंकि जो राजा दण्डनीय को दण्ड नहीं देता, वह लोकनिंदित होता है। सभी देवताओं ने बारी-बारी से सफाई दी, और वीर्यचोर को भिन्न-भिन्न श्राप दिए। तभी अग्निदेव ने कहा कि उन्होंने वह वीर्य शिव की आज्ञा से सप्तऋषियों की पत्नियों को दिया। उन्होंने कहा कि उन्होंने वह हिमालय को दे दिया। हिमालय ने बताया कि वह उसे सहन नहीं कर पाया और उसे गंगा को दे दिया। गंगा ने कहा कि उस असह्य वीर्य को उसने सरकंडे की घास में उड़ेल दिया। वायुदेव बोले कि उसी समय वह वीर्य एक बालक बन गया। सूर्य बोले कि रोते हुए उस बालक को देख न सकने के कारण वह अस्ताचल को चला गया। चन्द्रमा बोला कि कृत्तिकाएँ उसे अपने घर ले गईं। जल बोला कि उस बालक को कृत्तिकाओं ने स्तनपान कराके बड़ा किया है। संध्या बोली कि कृत्तिकाओं ने प्रेम से उसका पालन पोषण करके कार्तिक नाम रखा है। रात्रि बोली कि वे कृत्तिकाएँ उसे अपनी आँखों से कभी दूर नहीं होने देतीं। दिन बोला कि वे कृत्तिकाएँ उसे श्रेष्ठ आभूषण पहनाती हैं, और स्वादिष्ट भोजन कराती हैं। इससे शिवपार्वती, दोनों बड़े खुश हुए, और समस्त जनता भी। तब शिव के गण दिव्य विमान लेकर कृतिकाओं के पास गए। जब कृतिकाओं ने उसे देने से मना किया तो गणों ने उन्हें शिवपार्वती का भय दिखाया। कृत्तिकाएँ डर गईं तो कार्तिकेय ने उन्हें सांत्वना देते हुए कहा कि उसके होते हुए उन्हें डरने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने रोते हुए कार्तिकेय को हृदय से लगाकर उसीसे पूछा कि वह कैसे उन अपनी दूध पिलाने वाली माताओं से अलग हो पाएगा, जो एकपल के लिए भी उसे अपनी नजरों से ओझल नहीं होने देतीं। कार्तिकेय ने कहा कि वह उनसे मिलने आया करेगा। दिव्य विमान पर आरूढ़ होकर कार्तिकेय शिवपार्वती के पास कैलाश पर आ गया। हर्षोल्लास का पर्व मनाया गया। शिवपार्वती ने उसे गले से लगा लिया। कार्तिकेय के दिव्य तेज से प्रभावित होकर बहुत से लोग उसके भक्त बन कर उसकी स्तुति करने लगे। वे उसे शिव की प्राप्ति कराने वाला और जन्ममरण से मुक्ति देने वाला कहते। वे उसे अपना सबसे प्रिय इष्टदेव कहते। एक आदमी का यज्ञ के लिए बंधा बकरा कहीं भाग गया था। सबने उसे ब्रह्मांड में हर जगह ढूंढा, पर वह नहीं मिला। फिर वह आदमी भगवान कार्तिकेय के पास आकर उनसे प्रार्थना करने लगा कि वे ही उस बकरे को ला सकते हैं, नहीं तो उसका अजमेध यज्ञ नष्ट हो जाएगा। कार्तिकेय ने वीरबाहु नामक गण को पैदा करके उसे वह काम सौंपा। वह उसे ब्रह्मांड के किसी कोने से बांध कर ले आया और कार्तिकेय के समक्ष उस आदमी को सौंप दिया। कार्तिकेय ने

उसपर पानी छिड़कते हुए उससे कहा कि वह बकरा बलिवध के योग्य नहीं, और उसे उस आदमी को दे दिया। वह कार्तिकेय को धन्यवाद देकर चला गया।

उपर्युक्त कुंडलिनी रूपक का रहस्योद्घाटन

विश्वामित्र ने कुंडलिनी का अनुभव किया था। वे क्षत्रिय थे पर कुंडलिनी के अनुभव से उनमें ब्रह्मतेज आ गया था। उसी कुंडलिनी पुरुष अर्थात कार्तिकेय के अनुभव से ही वे ब्रह्मऋषि बने। कुंडलिनी से ब्रह्मऋषित्व है, जाति या धर्म से ही नहीं। कार्तिकेय का संस्कार करने का मतलब है कि उन्होंने कुंडलिनी पुरुष को अपनी योगसाधना से प्रतिष्ठित किया। छः कृत्तिकाएँ छः चक्र हैं। कुंडलिनी पुरुष अर्थात कुंडलिनी चित्र कभी किसी एक चक्र पर तो कभी किसी अन्य चक्र पर जाता हुआ सभी चक्रों पर भ्रमण करता है। इसीको उनका आपस में लड़ना कहा गया है। फिर योगी ने तीव्र योगसाधना से उसे सभी चक्रों पर इतनी तेजी से घुमाया कि वह सारे चक्रों पर एकसाथ स्थित दिखाई दिया। यह ऐसे ही है कि यदि कोई जलती मशाल को तेजी से चारों ओर घुमाए, तो वह पूरे घेरे में एकसाथ जलती हुई दिखती है। इसीको कार्तिकेय का छः मुख बनाना और एकसाथ छहों कृत्तिकाओं का दूध पीना कहा गया है। चक्रों पर कुंडलिनी पुरुष के ध्यान से उसे बल मिलता है। इसे ही कार्तिकेय का दूध पीना कहा गया है। रोमांस से सम्बंधित विषयों को 'हॉट' भी कहा जाता है। इसलिए उन विषयों पर अग्निदेव का आधिपत्य रहता है। क्योंकि कुंडलिनी पुरुष की उत्पत्ति इन्हीं विषयों से हुई, इसीलिए वह अग्निदेव का पुत्र हुआ। उत्पत्ति होने के बाद भी कुंडलिनी पुरुष को तांत्रिक योग से बल मिलता रहा, जिसमें प्रणय प्रेम की मुख्य भूमिका होती है। इसीको अग्निदेव के द्वारा कार्तिकेय को बल देना कहा गया है। फिर कुंडलिनी उससे शक्ति लेकर आज्ञाचक्र के ऊपर आ गई। मूलाधार और आज्ञाचक्र आपस में सीधे जुड़े हुए दिखाए जाते हैं। इसको कार्तिकेय का क्रौंच पर्वत पर चढ़ना बताया गया है। क्रौं से मिलता जुलता सबसे नजदीकी शब्द क्रांति है। क्रांतिकारी चक्र आज्ञा चक्र को भी कह सकते हैं। आज्ञाचक्र एक बुद्धिप्रधान चक्र है। क्रांति बुद्धि से ही होती है, मूढ़ता से नहीं। क्रौंच पर्वत के शिखर को तोड़ता है, मतलब तेज, जजमेंटल और द्वैतपूर्ण बुद्धि को नष्ट करता है। अहंकार से भरा जीवात्मा कुंडलिनी को सहस्रार में जाने से रोकना चाहता है। उसी अहंकार को इंद्र कहा गया है। उसके द्वारा कुंडलिनी को रोकना ही उसके द्वारा कार्तिकेय पर वज्र प्रहार है। कुंडलिनी आज्ञाचक्र पर तीन नाड़ियों से आती है। ये नाड़ियां हैं, इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। इससे कुंडलिनी आज्ञा चक्र से नीचे आती रहती है, और तीनों नाड़ियो से फिर से ऊपर जाती रहती है। इससे वह बहुत शक्तिशाली हो जाती है। यही वज्र प्रहार से कार्तिकेय से तीन टुकड़ों का अलग होना है। शाख इड़ा है, वैशाख पिंगला है, नैगम सुषुम्ना है। शाखा से जुड़ा नाम इसलिए दिया गया है, क्योंकि ये दोनों नाड़ियां टहनियों की तरह हैं। मूल वृक्ष सुषुम्ना है, इसलिए उसे नैगम नाम दिया गया है। सभी निगमों अर्थात धर्मशास्त्रों का निचोड़ सुषुम्ना ही है, इसीलिए नैगम नाम दिया गया। कुंडलिनी पुरुष अर्थात कार्तिकेय के साथ ये तीनों पुरुष इंद्र को मारने दौड़ पड़े, मतलब कुंडलिनी सहस्रार की ओर अग्रसर थी, जिससे इंद्र रूपी अहंकार का नाश होना था। सभी लोग कार्तिक की ऐसे स्तुति कर रहे हैं, जैसे कुंडलिनी पुरुषरूप देवता की स्तुति की जाती है। कुंडलिनी तांत्रिक क्रियाओं से भी शक्ति प्राप्त कर सकती है। ऐसा तब ज्यादा होता है जब कुंडलिनी की तीव्र अभिव्यक्ति के साथसाथ शारिरिक श्रम भी खूब किया जाता है। इसका अर्थ है कि कुंडलिनी ही तांत्रिक यज्ञों को सफल बनाती है। कार्तिकेय के द्वारा पैदा किए गए वीरबाहु नामक गण के द्वारा बलि के बकरे को ढूंढ कर यज्ञ को पूर्ण करना इसी सिद्धांत को दर्शाता है। वीरबाहु का मतलब है, ऐसा व्यक्ति, जो अपनी भुजाओं की शक्ति के कारण ही वीर है। यह श्रमशीलता का परिचायक है। अधिकांशतः कुंडलिनी शक्ति के प्रतीकों से ही संतुष्ट हो जाती है, शक्ति के लिए हिंसा की जरूरत ही नहीं पड़ती। इससे यह तातपर्य भी निकलता है कि कम से कम हिंसा और अधिक से अधिक आध्यात्मिक लाभ। तंत्र के नाम पर नाजायज हिंसा का विरोध करने के लिए ही यह दिखाया गया है कि कार्तिकेय ने बकरे पर जल का छिड़काव करके उसे छोड़ देने के लिए कहा। यह हिंसा का प्रतीकात्मक स्वरूप ही है। शेष अगले हफ्ते।

ढाई आखर प्रेम का पढ़ ले जो कोई वो ही ज्ञानी

बोल नहीं सकता कुछ भी मैं

घुटन ये कब तुमने जानी।

चला है पदचिन्हों पर मेरे

मौनी हो या फिर ध्यानी।

मरने की खातिर जीता मैं

जीने को मरते हो तुम।

खोने का डर तुमको होगा

फक्कड़ का क्या होगा गुम।

हर पल एकनजर से रहता

लाभ हो चाहे या हानि।

बोल नहीं सकता ----

मेरे कंधों पर ही तुमने

किस्मत अपनी चमकाई।

मेरे ही दमखम पर तुमने

धनदौलत इतनी पाई।

निर्विरोध हर चीज स्वीकारी

फूटी-कौड़ी जो पाई।

खाया सब मिल-बाँट के अक्सर

बन इक-दूजे संग भाई।

कर्म-गुलामी की पूरी, ले

कुछ तिनके दाना-पानी।

बोल नहीं---

तेज दिमाग नहीं तो क्या गम

तेज शरीर जो पाया है।

सूंघे जो परलोक तलक वो

कितनी अद्‌भुत काया है।

मेरा इसमें कुछ नहीं यह

सब ईश्वर की माया है।

हर-इक जाएगा दुनिया से

जो दुनिया में आया है।

लगती तो यह छोटी सी पर

बात बड़ी और सैयानी।

बोल नहीं---

हूँ मैं पूर्वज तुम सबका पर

मेरा कहा कहाँ माना।

क़ुदरत छेड़ के क्या होता है

तुमने ये क्यों न जाना।

याद करोगे तुम मुझको जब

याद में आएगी नानी।

बोल--

मरा हमेशा खामोशी संग

तुम संग भीड़ बहुत भारी।

तोड़ा हर बंधन झटक कर

रिश्ता हो या फिर यारी।

मुक्ति के पीछे भागे तुम

यथा-स्थिति मुझे प्यारी।

वफा की रोटी खाई हरदम

तुमको भाए गद्दारी।

कर-कर इतना पाप है क्योंकर

जरा नहीं तुमको ग्लानि।

बोल नहीं---

लावारिस बन बीच सड़क पर

तन मेरा ठिठुरता है।

खुदगर्जी इन्सान की यारो

कैसी मन-निष्ठुरता है।

कपट भरे विवहार में देखो

न इसका कोई सानी।

बोल नहीं---

रोटी और मकान बहुत है

कपड़े की ख्वाइश नहीं।

शर्म बसी है खून में अपने

अंगों की नुमाइश नहीं।

बेहूदे पहनावे में तुम

बनते हो बड़े मानी।

बोल नहीं----

नशे का कारोबार करूँ न

खेल-मिलावट न खेलूँ।

सारे पुट्ठे काम करो तुम

मार-कूट पर मैं झेलूँ।

क्या जवाब दोगे तुम ऊपर

रे पापी रे अभिमानी।

बोल नहीं----

पूरा अपना जोर लगाता

जितना मेरे अंदर हो।

मेरा जलवा चहुँ-दिशा में

नभ हो या समंदर हो।

बरबादी तक ले जाने की

क्यों तुमने खुद को ठानी।

बोल नहीं सकता--

खून से सींचा रे तुझको फिर

भूल गया कैसे मुझको।

रब मन्दर मेरे अंदर फिर

भी न माने क्यों मुझको।

लीला मेरी तुझे लगे इक

हरकत उल्टी बचकानी।

बोल नहीं---

कुदरत ने हम दोनों को जब

अच्छा पाठ पढ़ाया था।

भाई बड़ा बना करके तब

आगे तुझे बढ़ाया था।

राह मेरी तू क्या सुलझाए

खुद की जिससे अनजानी।

बोल नहीं--

लक्ष्य नहीं बेशक तेरा पर

मुंहबोला वह है मेरा।

मकड़जाल बुन बैठा तू जो

उसने ही तुझको घेरा।

याद दिलाऊँ लक्ष्य तुम्हारा

बिन मस्तक अरु बिन बानी।

बोल नहीं---

प्यार की भाषा ही समझूँ मैं

प्यार की भाषा समझाऊँ।

प्यार ही जन्नत प्यार ही ईश्वर

प्यार पे बलिहारी जाऊँ।

ढाई आखर प्रेम का पढ़ ले

जो कोई वो ही ज्ञानी।

बोल नहीं--

@bhishmsharma95

कुंडलिनी ही साँसें हैं, साँसें ही कुंडलिनी हैं

मित्रों, पिछले ब्लॉग लेखों में जो लिखा गया है कि ठंडे मौसम में ठंडे जल से नहाने वाली ऋषिपत्नियों अर्थात छः चक्रों ने वीर्यशक्ति को ग्रहण किया, यह मुझे ईसाइयों के बैप्टिसम संस्कार की तरह ही लगता है। बैप्टिसम में भी नंगे शरीर पर ठंडा पानी गिराया जाता है। इससे चक्र खुल जाते हैं, और शक्ति का संचार सुधर जाता है। साथ में, नंगा शरीर होने से मन में एक बालक के जैसा अनासक्ति भाव और अद्वैत छा जाता है। इससे भी शक्ति के संचरण और कुंडलिनी की अभिव्यक्ति में मदद मिलती है। मुझे तो प्रतिदिन नहाते हुए अपने बैप्टिसम के जैसा अनुभव होता है। इससे सिद्ध होता है कि योग और बैप्टिसम के पीछे एक ही सिद्धांत काम करता है। साथ में, छः ऋषिपत्नियों अर्थात छः चक्रों के द्वारा कबूतर बने अग्निदेव से वीर्यतेज ग्रहण करने के बारे में लिखा गया है, वे स्वाधिष्ठान चक्र को छोड़कर शेष छः चक्र भी हो सकते हैं। वह इसलिए क्योंकि खुद स्वाधिष्ठान चक्र तो उस कबूतर बने अग्निदेव का हिस्सा है। सहस्रार में कुंडलिनी से अद्वैत भाव पैदा होता है। चन्द्रमा अद्वैत का प्रतीक है, क्योंकि इसमें प्रकाश और अंधकार दोनों समान रूप में विद्यमान होते हैं। इसीलिए सूर्य को अस्त होते हुए और चन्द्रमा को उदय होते दिखाया गया है। उसी अद्वैत अवस्था के दौरान कुंडलिनी आज्ञा चक्र और फिर हृदय चक्र को उतर जाती है। हृदय चक्र को ही कई योगी असली चक्र मानते हैं। उनका अनुभव है कि आत्मज्ञान व मुक्ति की ओर रास्ता हृदय से जाता है, मस्तिष्क से नहीं। मुझे भी ऐसा कई बार लगता है। प्रेम से जो मुक्ति कही गई है, वह हृदय से ही तो है, क्योंकि प्रेम हृदय में ही बसता है। किसी भी भावनात्मक मनःस्थिति में कुंडलिनी हृदय में विराजमान होती है। विपरीत परिस्थितियों में वह भावनात्मक सदमे और उसके परिणामस्वरूप हृदयाघात से भी बचाती है। इसीलिए तो पशुओं से प्रेम करने को कहा जाता है। पशु का नियंत्रक हृदय है, मस्तिष्क नहीं। ऐसा इसलिए भी है क्योंकि वे बोल नहीं सकते। इसलिए उनकी मानसिक विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम भावनाप्रधान हृदय ही है। आप भी किसी दिन मौनव्रत धारण करके देख लें। पूरे दिनभर आपकी कुंडलिनी हृदय में रहेगी। मौनव्रत की अपार महिमा है। गाय में हृदय का प्रभाव सभी पशुओं से श्रेष्ठ है, इसीलिए हिंदु धर्म में गाय को बड़ा महत्त्व दिया जाता है। इसीलिए आजकल कॉमिउनिकेशन के नाम से गाय के साथ रहने का चलन बढ़ा है। इससे बढ़ा हुआ रक्तचाप सामान्य हो जाता है, और तनाव से राहत मिलती है। दरअसल ऐसा कुंडलिनी शक्ति के द्वारा अनाहत चक्र पर डेरा लगा लेने से होता है। इसलिए कुंडलिनी योग हमेशा करते रहना चाहिए। बुरे वक्त में कुंडलिनी ही सभी शारीरिक व मानसिक हानियों से बचाती है। कुंडलिनी जागरण की झलक के एकदम बाद बहुत से लोगों को नीचे उतरती हुई कुंडलिनी का ऐसा ही अनुभव होता है। इस तरह कुंडलिनी सभी चक्रों में फैल जाती है। इसीको इस तरह से लिखा गया है कि चन्द्रमा ने शिव को बताया कि कृत्तिकाएँ कार्तिकेय को अपने साथ ले गईं। जो शाख अर्थात इड़ा नाड़ी और वैशाख अर्थात पिंगला नाड़ी से कार्तिकेय अर्थात कुंडलिनी पुरुष का शक्तिमान होना कहा गया है, वह मेरे अपने अनुभव के अनुसार भी है। मुझे तो सुषुम्ना की तरह ही इड़ा और पिंगला से भी अपनी कुंडलिनी सुदृढ़ होती हुई महसूस होती है, बशर्ते कि दोनों नाड़ियाँ साथसाथ या एकदूसरे के निकट रहें। जब ये दोनों संतुलित नहीं होती, तब इनसे कुंडलिनी सहस्रार को नहीं जाती, और अन्य चक्रों पर भी कम ही रहती है, हालांकि शरीर के अंदर या बाहर कहीं भी महसूस होती है। इसलिए वह माइक्रोकोस्मिक ऑर्बिट लूप में कम ही घूम पाती है। हालाँकि उसकी शक्ति तो बढ़ती ही है, पर वह सुस्त व अव्यवस्थित सी रहती है, जिससे आदमी भी वैसा ही रहता है। सम्भवतः इसीलिए कहा जाता है कि कुंडलिनी योग साधना की तकनीक सही होनी चाहिए, बिना तकनीक के हर कहीं ध्यान नहीं लगाना चाहिए। कुंडलिनी माइक्रोकोस्मिक ऑर्बिट लूप में घूमती रहनी चाहिए। आध्यात्मिक समाज में यह बात भी फैली हुई है कि कुंडलिनी इड़ा और पिंगला में नहीं जानी चाहिए। सम्भवतः यह बात अनुभवी व एक्सपर्ट कुंडलिनी योगी के लिए कही गई है। दरअसल आम दुनियादारी में इनके बिना कुण्डलिनी का सुषुम्ना में सीधे प्रवेश करना बहुत कठिन है। इसका मतलब है कुण्डलिनी का ध्यान कहीं पर भी लग

जाए, लगा लेना चाहिए। इड़ा और पिंगला में भटकने के बाद वह देरसवेर सुषुम्ना में चली ही जाती है। इसीलिए लौकिक मंदिरों व आध्यात्मिक क्रियाकलापों में कहीं भी ध्यान की पद्धति नहीं दर्शाई होती है। बस मूर्तियों आदि के माध्यम से ध्यान को ही महत्त्व दिया गया होता है। क्रौंच पर्वत की उपमा हमने आज्ञाचक्र को दी। उत्तराखंड में वास्तविक क्रौंच पर्वत भी है। वहाँ भगवान कार्तिकेय का मंदिर है। कहते हैं कि वहाँ से हिमालय के लगभग 80% शिखर साफ नजर आते हैं। वहाँ घना जंगल है, और चारों ओर प्राकृतिक सौंदर्य बिखरा हुआ है। दरअसल पिंड और ब्रह्मांड में कोई अंतर नहीं है। जो भौतिक रचनाएं इस शरीर में हैं, बाहर भी वे ही हैं अन्य कुछ नहीं। यह अलग बात है कि शरीर में उनका आकार छोटा है, जबकि विस्तृत जगत में बड़ा है। हालांकि आकार सापेक्ष होता है, एब्सोल्यूट या असली नहीँ। यह सिद्धांत पुस्तक 'शरीरविज्ञान दर्शन' में विज्ञान की कसौटी पर परख कर साबित किया गया है। मुझे लगता है कि पहले पुराणों की रचना हुई, फिर उनमें दर्शाए गए रूपकात्मक और मिथकीय स्थानों को बाहर के स्थूल जगत में दिखाया गया। इसका एक उद्देश्य धार्मिकता व अध्यात्मिकता को बढ़ावा देना हो सकता है, तो दूसरा उद्देश्य व्यावसायिक व धार्मिक पर्यटन को बढ़ावा देना भी हो सकता है। ऐसे नामों के अनगिनत उदाहरण हैं। पुराणों में गंगा सुषुम्ना नाड़ी को कहा गया है, पर लोक में इसे उत्तराखंड से निकलने वाली एक नदी के रूप में दिखाया जाता है। जैसे सुषुम्ना शरीर के बीचोंबीच सफर करती है, उसी तरह गंगा नदी भी भारतीय भूभाग के बीचोंबीच बहती है। जैसे सुषुम्ना पूरे शरीर को मस्तिष्क से जोड़ती है, वैसे ही गंगा नदी पूरे भारतीय भूभाग को हिमालय से जोड़ती है।हिमालय को इसीलिए देश का मस्तक कहा जाता है। कैलाश रूपी सहस्रार भी मस्तक में ही होता है। गंगा में स्नान से मुक्ति प्राप्त होने का अर्थ यही है कि सुषुम्ना नाड़ी में बह रही कुंडलिनी ऊर्जा जब सहस्रार में बसे जीवात्मा को प्राप्त होती है, तो उसके पाप धुल जाने से वह पवित्र हो जाता है, जिससे मुक्ति मिल जाती है। पर आम लोगों ने उसे साधारण भौतिक नदी समझ लिया। उसमें स्नान करने के लिए लोगों की लाइन लग गई। वैसे तो आध्यात्मिक प्रतीकों से कुछ अप्रत्यक्ष लाभ तो मिलता ही है, पर उससे सुषुम्ना नाड़ी में नहाने से मिले लाभ की तरह प्रत्यक्ष लाभ नहीं मिल सकता।

देवताओं के द्वारा शिव के समक्ष कार्तिकेय से संबंधित गवाही देना जीवात्मा के द्वारा शरीर की गतिविधियों को अनुभव करना है

ध्यान से अपने शरीर का अवलोकन करना ही शिव के द्वारा देवताओं की सभा बुलाना है। ऐसी सभा का वर्णन मैंने अनायास ही अपनी पुस्तक शरीरविज्ञान दर्शन में की है। मुझे लगता है कि सम्भवतः मैं पिछले जन्म में शिवपुराण का गहन जानकार होता था। इस जन्म में तो मैंने कभी शिव पुराण पढ़ा नहीं था, फिर कैसे मेरे से उससे हूबहू मिलती जुलती हालाँकि आधुनिक विज्ञानवादी पुस्तक शरीरविज्ञान दर्शन की रचना हो गई। या फिर भटकती हुई मानवसभ्यता पर दया करते हुए शिव की ही आज्ञा या प्रेरणा हो कि उनके द्वारा प्रदत्त लुप्तप्राय विद्या को पुनर्जीवित किया जाए। यह भी हो सकता है कि मेरे परिवार का संस्कार मेरे ऊपर बचपन से ही पड़ा हो, क्योंकि मुझे याद आता है कि मेरे दादाजी शिवपुराण को बहुत पसंद करते थे, और उसे विशेष रूप से पढ़ा करते थे। फिर जीवात्मा को कार्तिकेय जन्म की घटना की असलियत का पता चलना ही देवताओं द्वारा शिव को वस्तुस्थिति से अवगत कराना है। उस वीर्यतेज को कुंडलिनी पुरुष के रूप में जीवात्मा के अनुभव में न लाना ही उसकी चोरी है। क्योंकि वह शरीर के अंदर ही रहता है, इसलिए उसकी चोरी का शक देवताओं के ऊपर ही जाता है, जो पूरे शरीर का नियमन करते हुए शरीर में ही स्थित हैं। वीर्य की दाहकता ही वीर्यचोर को दिया गया श्राप है। रक्तसंचार के वेग से ही अँगों को प्राण मिलता है। उसी प्राण से उन अंगों के सम्बंधित चक्र क्रियाशील हो जाते हैं, जिससे वहाँ कुंडलिनी भी चमकने लगती है। उदाहरण के लिए यौनोत्तेजना के समय वज्रप्रसारण उसमें रक्त के भर जाने से होता है। मैं यहाँ बता दूं कि जो कुंडलिनी-नाग का ऊपर

की ओर रेंगना बताया गया है, वह वज्र प्रसारण के बाद के वज्र संकुचन से होता है। इसके साथ सहस्रार से लेकर मूलाधार तक फैली नाग की आकृति की सुषुम्ना नाड़ी का ध्यान किया जाता है। वज्र उस नाग की पूंछ है, पैल्विक घेरा नाग का चौड़ है, पीठ के केंद्र से होकर वह ऊपर खड़ा है, मस्तिष्क में उसके अनगिनत फन फैले हैं, और उस नाग का अंत आज्ञा चक्र पर केंद्रीय फन के रूप में होता है। वज्र प्रसारण के बाद इस ध्यान से उत्पन्न वज्र संकुचन से ऐसा लगता है कि नाग ऊपर की तरफ रेंगते हुए सहस्रार में पहुंच गया और उसके साथ कुंडलिनी पुरुष भी सहस्रार में चमकने लगता है। यदि नाग की पूँछ का ऐसा ध्यान करो कि वह आगे से ऊपर चढ़कर आज्ञा चक्र को छू रही है, मतलब नाग की पूँछ उसके सिर को छूकर एक गोल छल्ला जैसा बना रही है, तब यह रेंगने की अनुभूति ज्यादा होती है। फिर वह आज्ञा चक्र से होते हुए आगे से नीचे उतरता है। इस तरह एक लूप सा बन जाता है, जिस पर गशिंग व ऑर्गैस्मिक ब्लिस फील के साथ एनर्जी लगातार घूमने लगती है। यह प्रक्रिया कुछ क्षणों तक ही रहती है। फिर मांसपेशियों की निरंतर व स्पासमोडिक किस्म की सिकुड़न से शरीर थक जाता है। यह सिकुड़न जैसा घटनाक्रम ज्यादातर लगभग एक ही लम्बी व अटूट सांस में होता है। सम्भवतः इसीलिए सांस को ज्यादा देर तक रोकने के लिए योगी को प्राणायाम का अभ्यास कराया जाता है। फिर कई घण्टों के उपयुक्त क्रियाकलापों से या आराम से ही इसे दुबारा से सही ढंग से करने की शक्ति हासिल होती है। वज्र में रक्त भर जाने से स्वाधिष्ठान चक्र और मूलाधार चक्र पर कुंडलिनी की अभिव्यक्ति बढ़ जाती है। उसी रक्त को रूपक में दुग्ध कहा गया है, क्योंकि दुग्ध रक्त से ही बना है। दुग्ध अन्य कुछ नहीं बल्कि एक प्रकार से छना हुआ रक्त ही है। दुग्ध इसलिए भी कहा गया है क्योंकि तांत्रिक कुंडलिनी मूलाधार से हृदय चक्र तक ही सबसे ज्यादा जाती है। वह वक्षस्थल पर होता है, जहाँ पर दुग्ध के स्रोत स्तन भी होते हैं। मिस्र की अँखिन्ग तकनीक में भी कुंडलिनी यौनांग से पीछे के हृदय चक्र तक जाती है। उसे फिर अँखिन्ग लूप से पीछे से ऊपर ले जाकर सिर के ऊपर से घुमा कर वापिस आगे से नीचे ले जाकर आगे के हृदय चक्र तक उतारा जाता है। सम्भवतः इसी तकनीक से कृतिका डर गई हो। अँखिन्ग लूप में कुंडलिनी का बारबार घूमना ही कार्तिकेय का कृत्तिका को आश्वासन देना और उससे बारबार मिलने आना है। जैसे ही लंबी-गहरी-धीमी और ध्यान लगाई गई साँसों की सहायता से होने वाली संकुचन -प्रसारण जैसी तांत्रिक क्रिया से शक्ति को मूलाधार से ऊपर पीठ से होते हुए मस्तिष्क की ओर चढ़ाया जाता है, वैसे ही वज्र संकुचित हो जाता है, और उसके साथ कुंडलिनी भी ऊपर चली जाती है। फिर जिस चक्र पर वह प्राण शक्ति जाती है, रक्त या दुग्ध भी वहीं चला जाता है, जिसका पीछा करते हुए कुण्डलिनी पुरुष भी। हालांकि उन चक्रों पर हमें वज्र प्रसारण की तरह कोई तरलजनित प्रसारण अनुभव नहीं होता, क्योंकि वे क्षेत्र शरीर में गहरे और दृढ़तापूर्वक स्थित होते हैं। कई बार उल्टा भी होता है। किसी चक्र पर यदि कुंडलिनी पुरुष का ध्यान किया जाए, तो शक्ति खुद ही वहाँ के लिए दौड़ पड़ती है। इसीलिए कार्तिकेय को षण्मुखी कहा गया है क्योंकि यह छहों चक्रों पर प्राणों से अर्थात दुग्ध से पोषण प्राप्त करता है। रक्त क्योंकि जल देवता के आधिपत्य में आता है, इसीलिए कहा गया है कि जलदेवता ने बताया कि कृत्तिकाएँ उस नवजात बालक को स्तनपान कराती हैं। पौराणिक युग के पुराण रचनाकार गजब के अध्यात्म वैज्ञानिक होते थे। जो शिवगण कृत्तिकाओं से कार्तिकेय को लेने जाते हैं, वे तांत्रिक क्रियाएं ही हैं, जो चक्रों से कुण्डलिनी को सहस्रार की तरफ खींचती हैं। वे क्रियाएँ साधारण हठयोग वाली संकुचन-प्रसारण वाली या वीभत्स प्रकार की पँचमकारी भी हो सकती हैं, इसीलिए कृत्तिकाओं का उनसे डरना दिखाया गया है। स्वाभाविक है कि कुंडलिनी के साथ ही वहाँ से रक्तसंचार भी जाने लग पड़ता है, इसलिए वे मुरझा कर पीली सी पड़ने लगती हैं अर्थात डरने लगती हैं। कुंडलिनी योग से कुंडलिनी का बार-बार चक्रों की ओर लौटना ही कार्तिकेय का अपनी माता को पुनः वापिस लौटने का आश्वासन देना है। इससे वे नए रक्तसंचार से प्रफुल्लित होने लगती हैं, अर्थात उनका भय खत्म हो जाता है। कई लोग बोलते हैं कि उनकी कुंडलिनी किसी चक्र पर फंसी हुई है, और चलाने पर भी नहीं चलती। दरअसल जब कुंडलिनी है ही नहीं, तो चलेगी कैसी। कई बार कमजोर कुंडलिनी भी एक जगह अटक जाती है, कमजोर आदमी की तरह। ताकतवर कुंडलिनी को कोई चलने से नहीं रोक सकता। तांत्रिक पँचमकारों से कुण्डलिनी को अतिरिक्त शक्ति मिलती है।

कुंडलिनी को अभिव्यक्त करने का सबसे आसान तरीका बताता हूँ। लम्बी-गहरी-धीमी साँसें लो और उस पर ध्यान देकर रखो। इधर-उधर के विचारों को भी अपने आप आते-जाते रहने दो। न उनका स्वागत करो, और न ही अनादर। एकदम से कुंडलिनी पुरुष किसी चक्र पर अनुभव होने लगेगा। फिर उसे अपनी इच्छानुसार चलाने लग जाओ। कुंडलिनी पुरुष को अभिव्यक्त कराने वाला दूसरा पर हल्के वाला तरीका बताता हूँ। अपने शरीर के किसी निर्वस्त्र स्थान जैसे कि हाथों पर शरीरविज्ञान दर्शन के ध्यान के साथ नजर डालो। कुंडलिनी अभिव्यक्त हो जाएगी। कुंडलिनी पुरुष और कुंडलिनी शक्ति साथसाथ रहते हैं। मानसिक ध्यान चित्र या कुंडलिनी चित्र ही कुंडलिनी पुरुष है। यही शिव भी है। यह शक्ति के साथ ही रहता है। शक्ति की बाढ़ से शिव पूर्ण रूप में अर्थात अपने असली रूप में अभिव्यक्त होता है। यही कुंडलिनी जागरण है। दरअसल अँगदर्शन वाले उपरोक्त तरीके से भी यौगिक साँसें चलने लगती है। उसीसे कुण्डलिनी चित्र अभिव्यक्त होता है। सारा कमाल साँसों का ही है। साँस ही योग है, योग ही साँस है। किसी विचार के प्रति आसक्ति के समय हमारी सांसें थम जैसी जाती हैं। जब हम फिर से स्वाभाविक साँसों को चलाना शुरु करते हैं, तो आसक्ति गायब होकर अनासक्ति में तब्दील हो जाती है। इससे परेशान करने वाला विचार भी आराम से शांत हो जाता है। इससे काम, क्रोध आदि सभी मानसिक दोष भी शांत हो जाते हैं, क्योंकि ये विकृत व आसक्तिपूर्ण विचारों की ही उपज होते हैं। अगर साँसों पर ध्यान दिया जाए, तो कुंडलिनी की शक्ति से अनासक्ति और ज्यादा बढ़ जाती है।

यब-युम तकनीक यौन तंत्र का महत्त्वपूर्ण आधारस्तंभ है

यब-युम की तकनीक भी इसी कार्तिकेय-कथा में रहस्यात्मक रूपक की तरह दर्शाई गई है। क्योंकि कथा में आता है कि कबूतर के रूप में बना गुप्तांग वीर्य को ग्रहण करके ऋषिपत्नियों के रूप में बने चक्रों को प्रदान करते हैं। उन में उससे गर्भ बन जाता है, जो कुंडलिनी पुरुष के रूप में विकसित होने लगता है। यब-युम में भी तो यही किया जाता है। यब-युम की युग्मावस्था में यह वीर्यतेज का स्थानांतरण बहुत तेजी से होता है। इसमें पुरुष-स्त्री का जोड़ा अपने सभी युग्मित चक्रों पर एकसाथ ध्यान लगाता है। उससे दो मूलाधरों की ऊर्जा एकसाथ बारी-बारी से सभी चक्रों पर पड़ती है। उससे वहाँ तेजी से कुंडलिनी पुरुष प्रकट हो जाता है, जो वीर्यतेज से और तेजी से बढ़ने लगता है। यह तन्त्र की बहुत कारगर तकनीक है। इस तकनीक के बाद ऐसा लगता है कि मूलाधार व स्वाधिष्ठान चक्रों और सम्बंधित अँगों का दबाव एकदम से कम हो गया। दरअसल वहां से वीर्यतेज चक्रों पर पहुंच कर वहाँ कुंडलिनी पुरुष बन जाता है। यही ऋषिपत्नियों के द्वारा गर्भ धारण करना है। ऐसे लम्बे अभ्यास के बाद सुषुम्ना नाड़ी पूरी खुल जाती है। फिर चक्रों पर स्थित वह तेज एकदम से सुषुम्ना से ऊपर चढ़कर सहस्रार में भर जाता है। यह कुंडलिनी जागरण या प्राणोत्थान है। यही ऋषिपत्नियों के द्वारा गर्भसहित वीर्यतेज को गंगा नदी को प्रदान करना है। गंगा के द्वारा किनारे में उगी सरकंडे की घास को प्रदान करना है, और उस पर एक शिशु का जन्म है। यह रूपक पिछले कुछ लेखों में विस्तार से वर्णित किया गया है। यहाँ ध्यान देने योग्य मुख्य बिंदु है कि शिवलिंग भी यब-युम का ही प्रतीक है। इसी वजह से शिवलिंगम की अराधना से भी यब-युम के जैसा लाभ प्राप्त होता है। और तो और, हठयोग के आसनों को भी इसी वीर्य ऊर्जा को पूरे शरीर में वितरित करने के लिए बनाया गया है, ऐसा लगता है। ऐसे प्रत्यक्ष अनुभव से ही पाश्चात्य देशों में यह धारणा बनी हुई है कि योगासन संभोग शक्ति को बढ़ाते हैं।

शिवपुराण में साफ लिखा है कि शिव के वीर्य से उत्पन्न कार्त्तिकेय अर्थात कुंडलिनी पुरुष ही तारकासुर अर्थात आध्यात्मिक अज्ञान को मारकर उससे मुक्ति दिला सकता है, अन्य कुछ नहीं। इससे यह क्यों न मान लिया जाए कि यौनयोग ही आत्मजागृति के लिए आधारभूत व मुख्य तकनीक है, अन्य बाकि तो सहयोगी क्रियाकलाप हैं। अगर गिने चुने लोगों को जागृति होती है, तो अनजाने में इसी यौन ऊर्जा के मस्तिष्क में प्रविष्ट होने से होती है। यह इतनी धीरे होता है कि उनको इसका पता ही नहीं चलता। इसलिए वे जागृति का श्रेय अपने रंगबिरंगे क्रियाकलापों और चित्रविचित्र मान्यताओं को देते हैं। ऐसा

इसलिए होता है क्योंकि उनकी जागृति के समय वे उन-उन प्रकार के क्रियाकलापों या मान्यताओं से जुड़े होते हैं। इससे आपसी विवाद भी पैदा होता है। अन्धों की तरह कोई हाथी की पूंछ पकड़कर उसे असली हाथी बताता है, तो कोई हाथी की सूंड को। असली हाथी का किसीको पता नहीं होता। ऐसा भी हो सकता है कि अपनी विशिष्ट मान्यताओं या क्रियाओं से मूलाधार की यौन शक्ति हासिल हो, पर आदमी शर्म के कारण उसके यौनता से जुड़े अंश को जगजाहिर न करता हो। हम अन्य तकनीकों का विरोध नहीं करते। पर हैरानी इसको लेकर है कि मुख्य तकनीक व सिद्धांत को सहायक या गौण बना दिया गया है, और सहायक तकनीकों को मुख्य। जब दूध का दूध और पानी का पानी हो जाएगा तब स्वाभाविक है कि बहुत से लोगों को स्पष्ट व वैज्ञानिक रूप से जागृति होगी, संयोगवश गिनेचुने लोगों को ही नहीं। अक्सर लोग बाहरी अलंकारों और रूपकों में डूबे होते हैं, असल चीज का पता ही नहीं होता। मुझे तो वे समझ भी नहीं आते, और उनका रहस्य समझे बिना वे किसी दिव्य ग्रह की कथाएं लगती हैं। मैं फेसबुक पर देखता रहता हूँ। डाकिनी, काली आदि देवियों के कितने ही नाम इस मूल सिद्धांत से जोड़े गए हैं। सभी पन्थों और संप्रदायों ने अपनेअपने हिसाब से नाम दिए हैं। मूल चीज एक ही है। ऐसी बात भी नहीं है कि जागृति के मूल वैज्ञानिक सिद्धांत का पता न हो लोगों को। योग शास्त्रों में साफ लिखा है कि कुंडलिनी मूलाधार में ही रहती है, अन्यत्र कहीं नहीं। तो फिर इधर-उधर क्यों भागा जाए। मूलाधार में ही शक्ति को क्यों न ढूंढा जाए। दरअसल इसको व्यावहारिक रूप में नहीं, बल्कि अलंकार या रूपक की तरह माना गया। रूपक बनाने से यह नुकसान हुआ कि लोगों को पता ही नहीं चला कि क्या रूपक है और क्या असली। जिन्होंने इसे कुछ समझा, वे संभोग के सिवाय अन्य सभी टोटकों की सहायता लेने लगे मूलाधार की शक्ति को जागृत करने के लिए। सम्भवतः ऐसा सामाजिक संकोच व लज्जा के कारण हुआ। महिलाएं तो इस बारे में ज्यादा ही अनभिज्ञ और संकोची बनती हैं, जबकि पुराने जमाने में महिलाएं ही सफल तन्त्रगुरु हुआ करती थीं। एक तरफ तो मान रहे हैं कि कुंडलिनी मूलाधार में ही रहती है, और कहीं नहीं, और दूसरी तरफ उस संभोग को नकार रहे हैं, जो मूलाधार की शक्ति को जगाने के लिए सबसे प्रत्यक्ष और शक्तिशाली क्रिया है। विचित्र सा विरोधाभास रहा यह। सम्भवतः शक्ति की कमी भी इसमें कारण रही। समाज के जरूरत से ज्यादा ही आदर्शवादी और अहिंसक बनने से शरीर में शक्ति की कमी हो गई। शक्ति की कमी होने पर संभोग में रुचि कम हो जाती है। अंडे का सेवन एक उचित विकल्प हो सकता है। अंडा तो शाकाहारी भोजन ही माना जा सकता है, क्योंकि उसमें जीवहिंसा नहीं होती। वह तो दूध की तरह ही पशु का बाइप्रोडक्ट भर ही है। उसमें सभी पोषक तत्त्व संतुलित मात्रा में होते हैं। अंडा यौन उत्तेजना को भी बढ़ाता है, इसलिए तन्त्र के हिसाब से इसका सेवन सही होना चाहिए। आजकल के विकसित व वैज्ञानिक युग में तो यौनता के प्रति संकोच कम होना चाहिए था। विज्ञान की बदौलत आजकल अनचाहे गर्भ का भय भी नहीं है। बेशक तांत्रिक संभोग के साथ कंडोम का प्रयोग नहीं किया जा सकता, क्योंकि तांत्रिक क्रियाओं से वज्र लगातार संकुचित व प्रसारित होता रहता है, जिससे वह अंदर फंस सकता है। एड्स आदि यौन रोगों के संचरण का खतरा बढ़ सकता है इसके बिना। पर ऐसी नौबत ही नहीं आती क्योंकि यौनतन्त्र एक ही जीवनसाथी अर्थात पत्नी के साथ ही सिद्ध होता है। तन्त्र में वैसे भी दूसरों की बेटियों व पत्नियों को यौनतन्त्र साथी बनाना वर्जित है। कामभाव जागृत करने के लिए सभ्य तरीके से अप्रत्यक्ष सम्पर्क या हंसीमजाक तो चलता रहता है। फिर भी बहुत से गर्भनिरोधक उपाय हैं। हॉर्मोन की गोलियां हैं। हालांकि इनको लम्बे समय तक लगातार रोज लेना पड़ता है, जिससे दुष्प्रभाव भी हो सकते हैं। यदि तांत्रिक अभ्यास के समय असुरक्षित चक्र-काल में गल्ती से योनि में स्खलन हो भी जाए, तो गर्भ रोकने के लिए अन्य हॉर्मोनल दवाइयां हैं, जैसे कि विकल्प-72, जिसे स्खलन के बाद के 72 घण्टे के अंदर लेने पर गर्भ नहीं ठहरता। यदि किसी कारणवश उसे न लिया जा सके, या बहुत विरले मामले में वह फेल हो जाए, तो एबॉर्शन पिल नाम से अन्य हॉर्मोनल दवाइयां मिलती हैं, जिन्हें माहवारी मिस होने के बाद जितना जल्दी लिया जाए, उतना अच्छा परिणाम मिलता है। ऐसे यूजर फ्रेंडली मिनीकिट उपलब्ध हैं, जिनसे माहवारी मिस होने के दिन से अगले 2-3 दिन में ही गर्भ ठहरने का पता चल जाता है। वैसे तो इन सबकी जरूरत ही नहीं पड़ती यदि यौनतन्त्र के प्रारम्भिक अभ्यास के समय सुरक्षित काल में ही संभोग किया जाए। यह

समय माहवारी के पहले दिन समेत माहवारी चक्र के प्रथम सात दिन और अंतिम 7 दिन हैं। इन दिनों में स्खलन होने पर भी गर्भ नहीं बनता, क्योंकि इन दिनों में शुक्राणुओं को अण्डाणु उपलब्ध नहीं होता। यह समय सीमा उनके लिए है, जिनमें चक्र काल 28 दिनों का है, और हरबार इतना ही और अपरिवर्तित रहता है। यदि काल इससे कम-ज्यादा हो, तो उसी हिसाब से सुरक्षित काल कम-ज्यादा हो जाता है। यदि यह काल बराबर नहीं तब भी धोखा लग सकता है। हालाँकि कोई भी गर्भनिरोधक तरीका 100 प्रतिशत नहीं है, पर सभी तरीके मिलाकर तो लगभग 100 प्रतिशत सुरक्षा दे ही देते हैं। कई बार प्रीइजेक्युलेट में भी थोड़े से शुक्राणु होते हैं। पर वे अक्सर गर्भ के लिए नाकाफी होते हैं। वैसे हल्के तरीके ही काफी हैं। कॉपर टी, नलबंदी, नसबंदी जैसे जटिल तरीकों की तो जरूरत ही नहीं पड़ती अधिकांशतः। मैं एक पुरानी ब्लॉग पोस्ट में पढ़ रहा था जिसमें एक तंत्राभ्यासी कह रहे थे कि आजकल जनसंख्या व बेरोजगारी अधिक है, इसलिए यौन तन्त्र से समस्या आ सकती है। इसलिए यौन तन्त्र का अभ्यास करें तो सावधानी से करें, और यह मान कर चलें कि यदि अनचाहा गर्भ ठहर जाए तो उसे खुशी-खुशी स्वीकार करने में ही भलाई है। पर आज के वर्तमान दौर में ये सब बातें पुरानी हो गई हैं। गर्भ भी उसी प्रकार की प्रचण्ड यौन ऊर्जा से बनता है, जिससे जागृति मिलती है। जिस सुस्त व आलसी संभोग से गर्भ नहीं बन सकता, उससे जागृति भी नहीं मिल सकती। इसीलिए तो देवी पार्वती को हैरानी हुई कि भगवान शिव के शक्तिशाली संभोग से उपजे शक्तिशाली वीर्य से गर्भ तो अवश्य बनना था, वह वीर्य असफल नहीं हो सकता था। पर वह गर्भ गया कहाँ। बाद में पता चला कि वह गर्भ सहस्रार में जागृति के रूप में प्रकट हुआ। इससे स्वाभाविक है कि पुराने जमाने में संभोग तन्त्र से लोगों को परहेज होना ही था, क्योंकि इससे गर्भ ठहरने की पूरी संभावना होती है, और भौतिक विज्ञान की कमी से उस समय भौतिक गर्भनिरोधक तकनीकों और ज्ञान का अभाव तो था ही। ऐसी जानकारियों वाली बातें लिखने और पढ़ने में ही अच्छी लगती हैं, इन्हें बोलने और सुनने में संकोच और लज्जा जैसी महसूस होती है। इसी वजह से तो आजकल के चैटिंग के युग में देखने में आता है कि कई बार एक देवी सदृश और पतिव्रता नारी भी, जिससे ऐसी बातें बोलने और सुनने की कल्पना भी नहीं की जा सकती, वह भी अपने मोबाइल फोन पर इतनी अश्लील चैटिंग कर लेती है कि लेखन के जादू पर उसको भी यकीन होने लगता है जो लेखन का धुर विरोधी रहा हो।

कुंडलिनी के प्रति अरुचि को भी एक मानसिक रोग माना जा सकता है

दोस्तों, मैं पिछले ब्लॉग लेख में कुछ व्यावहारिक जानकारियां साझा कर रहा था। हालाँकि सभी जानकारियां व्यक्तिगत होती हैं। किसीके कुछ जानकारियां काम आती हैं, किसीके दूसरी। पता तो हर किस्म की मानवीय जानकारी का होना चाहिए, क्या पता किस समय कौनसी जानकारी काम आ जाए। व्यक्ति का व्यक्तित्व बदलता रहता है। कभी मैं तन्त्र पर जरा भी यकीन नहीं कर पाता था। हालाँकि उसकी मोटे तौर की जानकारी मुझे थी। वो जानकारी मेरे काम तब आई जब मेरा व्यक्तित्व व कर्म बदला, जिससे मुझे तन्त्र पर विश्वास होने लगा। खैर, तन्त्र का दुरुपयोग भी बहुत हुआ है। जिस तन्त्र की शक्ति से कुंडलिनी जागरण मिल सकता था, उसे भौतिक दुनियादारी को बढ़ावा देने के लिए प्रयोग में लाया गया। परिणाम सबके सामने है। आज का अंध भौतिकवाद और जेहादी किस्म की कट्टर धार्मिकता उसी का परिणाम है। किसी धर्म विशेष के बारे में कहने भर से ही मौत का फतवा जारी हो जाए, और कोई भी आदमी या संस्था डर के मारे कुछ न कह पाए, ये आज के विज्ञान के युग में कितना बड़ा विरोधाभास है। नाम को तो हिंदुस्तान है, पर हिंदुओं की सफाई का अभियान जोरों पर है। एक सुनियोजित अंतरराष्ट्रीय साजिश चल रही है। इसी हिन्दुविरोधी श्रृंखला में अब हिंदूवादी व राष्ट्रवादी सुदर्शन चैनल के प्रमुख सुरेश चव्हाणके जी की हत्या की जेहादी साजिश का खुलासा हुआ है। जबरन धर्मांतरण का सिलसिला जारी है। फिर उन्हें राईस बैग कन्वर्ट भी कहा जाता है। धर्म इसलिए बनाए गए थे ताकि मानवता को बढ़ावा मिले। ऐसा भी क्या धर्म, जो मानवता से न चले। मानवता ही सबसे बड़ा धर्म है। जो अन्य धर्म और देश इसपर चुप्पी जैसी साध कर इसका अपरोक्ष समर्थन किए हुए हैं, उन्हें यह नहीं पता कि कल को उनका नम्बर भी लग सकता है। डबल स्टैंडर्ड की भी कोई सीमा नहीं आजकल। यदि बैप्टिसम वैज्ञानिक है, तो गंगास्नान भी वैज्ञानिक है। यदि गंगास्नान अंधविश्वास है, तो बैप्टिसम भी अंधविश्वास है। दोगलापन क्यों। जो ट्रूडो सिंघु बॉर्डर पर चले किसान आंदोलन को लोकतांत्रिक बताते हुए उसका समर्थन कर रहे थे, वे आज ट्रक ड्राइवर्स के आंदोलन को अलोकतांत्रिक बता रहे हैं। गहराई से जांचे-परखे बिना कोई भी सतही बयानबाजी नहीं करनी चाहिए। तन्त्र एक शक्ति है। तन्त्र का दुरुपयोग, मतलब शक्ति का दुरुपयोग। प्रकृति को भी इसने विनाश की ओर धकेल दिया है। देवी काली के लिए जो पशु बलि दी जाती थी, वह कुंडलिनी के लिए ही थी। काली कुंडलिनी को ही कहा गया है। पर कितने लोगों ने इसे समझा और इसका सही लाभ उठाया। हालांकि कुछ अप्रत्यक्ष लाभ तो मिलता ही है, पर उसे फलीभूत होने में बहुत वक्त लग जाता है। पर उस शक्ति से कुंडलिनी जागरण के लिए कितने लोगों ने प्रयास किया होगा, और कितना प्रयास किया होगा। शायद बहुत कम या लाखों में से कुछ सौ लोगों ने। उनमें से सही प्रयास भी कितनों ने किया होगा। शायद दस–बीस लोगों ने। उनमें से कितने लोगों को कुंडलिनी जागरण मिला होगा। शायद एक-दो लोगों को। तो फिर काली आदि कुंडलिनी प्रतीकों को समझने और समझाने में कहाँ गलती हुई। इसी का अनुसंधान कराने के लिए ही शायद काल ने वह प्रथा आज लुप्तता की ओर धकेल दी है। वैसे आजकल की अंधी पशु हिंसा से वह प्रथा कहीं ज्यादा अच्छी थी। वैदिक युग में कभी-कभार होने वाली यज्ञबलि से लोग अपने शरीर की अधिकांश जरूरत पूरी कर लिया करते थे। वैसे पशुहिंसा पर चर्चा मानवीय नहीं लगती, पर जिस विषय पर हम बोलेंगे नहीं, उसे दुरस्त कैसे करेंगे। कीचड़ को साफ करने के लिए कीचड़ में उतरना पड़ता है। पशु भी जीव है, उसे भी दुख-दर्द होता है। हिंदु धर्म के अनुसार गाय के शरीर में सभी देवताओं का निवास है। शरीरविज्ञान दर्शन भी तो यही कहता है कि सभी जीवों के शरीर में संपूर्ण ब्रह्मांड स्थित है। इसलिए उसके अधिकारों का भी ख्याल रखा जाना चाहिए। आजकल बहुत सी पशु अधिकारों से जुड़ी संस्थाएँ हैं, पर मुझे तो ज्यादातर निष्पक्ष और निःस्वार्थ नहीं लगतीं। वे जहाँ एक विशेष धर्म में हो रही बड़े तबके की और अमानवीय धार्मिक हिंसा पर मौन रहती हैं, वहीं पर किसी

अन्य विशेष धर्म की छोटी सी धार्मिक व मानवतावादी हिंसा पर भी हायतौबा मचा देती हैं। आज तो पशुहिंसा पे कोई लगाम ही नहीं है। मानवाधिकार आयोग की तरह पशु अधिकार आयोग भी होना चाहिए। पर आज मानवाधिकार आयोग भी निष्पक्ष और ठीक ढंग से कार्यशील कहाँ है। अगर मानवाधिकार आयोग की चलती, तो आज धर्म के नाम पर हत्याएँ न हो रही होतीं। आज तो पशुहिंसा के साथ आध्यात्मिक व मानवतावादी प्रतीक भी नहीं जुड़ा है। कोई नियम कायदे नहीं हैं। पशु क्रूरता आज चरम के करीब लगती है, और आध्यात्मिक विकास निम्नतम स्तर पर। आज बहुत से लोग पशुजन्य उत्पादों का बिल्कुल प्रयोग नहीं करते। फिर इतनी ज्यादा पशुहत्या कैसे हो रही है। मतलब साफ है। जो पशुजन्य उत्पाद का उपभोग करते हैं, वे अपनी जरूरत से कहीं ज्यादा उपभोग कर रहे हैं। इससे वे स्वस्थ कम और बीमार ज्यादा हो रहे हैं। आजकल पूरी दुनिया में बढ़ रहा मोटापे का रोग इसका अच्छा उदाहरण है। जो इनका उपयोग नहीं करते, उनकी कमी भी वे पूरी कर दे रहे हैं। तो फिर कुछ लोगों के द्वारा इनको छोड़ने से क्या लाभ। जो ज्यादा उपभोग कर रहे हैं, वे भी बीमार हो रहे हैं, और जो बिल्कुल भी उपभोग नहीं कर रहे हैं, वे भी बीमार हो रहे हैं। ज्यादा उपयोग करने वाले यदि व्यायाम या दवाईयों आदि की सहायता से अपने शरीर को बीमार होने से बचा रहे हैं, फिर भी उनका मन तो बीमार हो ही रहा है। जरूरत से ज्यादा तमोगुण और रजोगुण से मन तो बीमार होगा ही। क्या है कि पाश्चात्य संस्कृति में अधिकांशतः शरीर की बीमारी को ही बीमारी माना जाता है। मन की बीमारी को भी अधिकांशतः अवसाद तक ही सीमित रखा जाता है। वास्तव में अध्यात्म में मन न लगना भी एक मन की बीमारी है। जीवविकास कुंडलिनी के लिए हो रहा है। यदि कोई कुंडलिनी से परहेज कर रहा है, तो वह जीवविकास से विपरीत दिशा में जा रहा है। ऐसी मानसिकता यदि मन की बीमारी नहीं है, तो फिर क्या है। असंतुलित जीवन से ऐसा ही हो रहा है आजकल। संतुलन कहीं नहीं है। इससे अच्छा तो तब होता यदि सभी लोग अपनी भौतिक और आध्यात्मिक जरूरत के हिसाब से इनका उपभोग करते, जैसा अधिकांशतः पुराने समय में होता था। इससे पशुओं पर होने वाला अत्याचार काफी कम होता। और साथ में जो पशु व्यवसाय से जुड़े गरीब लोग हैं, उनके सामने भी रोजी-रोटी का सवाल खड़ा नहीं होता। मेरा एक दोस्त था, जो पशु व्यवसाय से जुड़ा सम्पन्न व्यक्ति था। वह कहता था कि पशुहिंसा से जुड़ा कारोबार वही करता है, जो बहुत गरीब हो, और जिसके पास कमाई का और कोई चारा न हो। पशु मांस का उपभोग भी गरीब और मजदूर तबके के लोग करते हैं, क्योंकि उन्हें सस्ते में इसमें सभी पोषक तत्व आसानी से मिल जाते हैं। उनके पास इतना पैसा नहीं होता है कि वे उच्च पोषकता वाले महंगे शाकाहारी उत्पादों को खरीद सकें। आम मध्यमवर्गीय आदमी ऐसे पाप वाला काम नहीं करना चाहता। उच्चवर्गीय आदमी अगर अपने शौक की पूर्ति के लिए करे, तो वह अलग बात है। पर आज तो लालच इस हद तक बढ़ गया है कि आदमी करोड़पति बनने के लिए पशुहिंसा से जुड़े कारोबार करना चाहता है। पशु कल्याण के नाम पर आदमी को तो भूखों मरने नहीं छोड़ा जा सकता न। मतलब साफ है कि कोई अभियान तभी सफल होता है यदि पूरा समाज उसमें सहयोग करे। मात्र कुछ लोगों से समाज की व्यवस्था में एकदम से पूर्ण परिवर्तन नहीं आता। हालांकि आ भी जाता है, पर उसमें समय काफी लग सकता है। यदि सभी लोग एकसाथ परिवर्तित हो जाएं, तो समाज भी एकदम से परिवर्तित हो जाएगा। लोगों का समूह ही समाज है। मैं किसी भी जीवनपद्धति के पक्ष या विपक्ष में नहीं बोल रहा। कोई भी व्यक्ति अपनी स्थिति-परिस्थिति के अनुसार अपनी जीवनचर्या चुनने के लिए स्वतंत्र है। किसी को कुछ सूट कर सकता है, तो किसी को कुछ। मैं तो सिर्फ अध्यात्मिक व वैज्ञानिक रूप से वस्तुस्थिति को बयां करके उसे चर्चा में लाने की कोशिश कर रहा हूँ। हम नाजायज जीवहिंसा की कतई वकालत नहीं करते, इसलिए कुछ नियम कायदे तो होने ही चाहिए। यदि कोई कहे कि ये सब तो भौतिकवाद से सम्बंधित बातें हैं, इनसे अध्यात्म कैसे मिलेगा। दरअसल असली अध्यात्म कुंडलिनी जागरण के बाद शुरु होता है। और कुंडलिनी जागरण मानवीय भौतिकवाद के चरम को छूने के बाद मिलता है। असली अद्वैत मानवीय द्वैत के चरम से शुरु होता है। असली अध्यात्म मानवीय विज्ञान के चरम से शुरु होता है। कई लोग अध्यात्म के वैज्ञानिक विश्लेषण का विरोध यह मानकर करते हैं कि कुण्डलिनी की प्राप्ति तर्कशील या लॉजिकल दिमाग से नहीं होती। वे अध्यात्म से बेखबर से बने रहते हैं। वे अध्यात्म के लिए

कोई प्रयास नहीं करते। वे एक अनासक्त की तरह दिखावा करते हुए हरेक काम के बारे में लापरवाह व अहंकारपूर्ण व्यवहार से भरे हुए बने रहते हैं, और पूर्णता का ढोंग सा करते रहते हैं। ऐसे लोग आसक्त और अज्ञानी से भी निचले पायदान पर स्थित होते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि असली आसक्त या अज्ञानी आदमी तो कभी न कभी अनासक्ति व ज्ञान व जागृति के लिए प्रयास जरूर करेगा, पर अनासक्ति या ज्ञान का ढोंग करने वाला आदमी उसके लिए कभी प्रयास नहीं करेगा, क्योंकि वह इस धोखे में रहेगा कि वह पहले से ही अनासक्त और ज्ञानी है। असली अनासक्ति में तो आदमी को अनासक्ति के बारे में पता ही नहीं चलता, न ही वह अनासक्ति के नाम पर दुनियादारी से दूर भागता है। कई लोग इसलिए बेपरवाह बने रहते हैं, क्योंकि उन्हें कई लोग बिना प्रयास के ही या उनके बचपन में ही आध्यात्मिक या जागृत दिखते हैं। पर वे इस बात को नहीं समझते कि उनके पिछले जन्म का प्रयास उनके इस जन्म में काम कर रहा है। बिना प्रयास के कुछ नहीं मिलता, सांस भी नहीं। सच्चाई यह है कि दिमाग की वास्तविक तर्कहीन या इलॉजिकल अवस्था वैज्ञानिक तर्कों और अन्वेषणों का चरम छू लेने के बाद ही होती है। जब आदमी अध्यात्म का वैज्ञानिक कसौटी पर पूरा अन्वेषण कर लेता है, तब वह थकहार कर चुप होकर बैठ जाता है। वहीँ से ईश्वर-शरणागति और विश्वास पर आधारित असली तर्कहीनता शुरु होती है। उससे पहले की या अन्वेषण का प्रयास किए बिना ही जबरदस्ती पैदा की गई तर्कहीनता एक ढोंग ही होती है। यह अलग बात है कि लोग औरों की नकल करके आध्यात्मिक बनने का दिखावा करते हैं। वह भी ठीक है। समथिंग इज बैटर देन नथिंग। पर इसमें अटूट विश्वास की आवश्यकता होती है। नहीं तो क्या पता यह परलोक में काम आएगा भी या नहीं। मेरे द्वारा यहाँ पर किसीको निरुत्साहित नहीं किया जा रहा है। केवल संभावना को खुल कर व्यक्त किया जा रहा है। किसको पता कि परलोक में क्या होता है, पर अपनी सीमित बुद्धि से अंदाजा तो लगाया ही जा सकता है। आप्तवचन पर भी आज के वैज्ञानिक युग में सोचसमझ कर ही यकीन किया जा सकता है, आंख बंद करके नहीं। मैं यह दावा नहीं कर रहा कि मुझे कुण्डलिनी जागरण हुआ है। मुझे गुरुकृपा और शिवकृपा से कुंडलिनी जागरण की झलक दिखी है। क्योंकि हर जगह तो क्षणिक, झलक, कुंडलिनी जैसे सहयोजित शब्द नहीं लिखे जा सकते, विस्तार के भय से, इसलिए जल्दी में जागरण या कुण्डलिनी जागरण ही लिखना पड़ता है। यदि कोई मेरी हरेक ब्लॉग पोस्ट ध्यान से पढ़ेगा, तो उसे ही पता चलेगा कि वह जागरण कैसा है। चीज की क्षणिक झलक देखने का यह मतलब नहीं कि उसने उस चीज को ढंग से देख लिया हो। हाँ, कुंडलिनी जागरण की क्षणिक झलक देखकर मुझे यह यकीन हो गया है कि कुंडलिनी जागरण का अस्तित्व है, और वह आध्यात्मिकता के लिए जरूरी है। और यह भी कि वह कैसे प्राप्त हो सकता है। वैसे ही, जैसे किसी चीज की झलक देख लेने के बाद उस चीज के अस्तित्व के बारे में विश्वास हो जाता है, और उसे पाने का तरीका पता चल जाता है। वस्तुतः तो मैं आम आध्यात्मिक व्यक्ति के जैसा ही एक साधारण कुंडलिनी जिज्ञासु हूँ। आध्यात्मिक चर्चा करना मेरा जन्मजात शौक है। जब विद्वान लोग उपलब्ध होते थे, तब आमनेसामने चर्चा कर लेता था। अब ब्लॉग पर लिखता हूँ। ब्लॉग मुझे सबसे अच्छा तरीका लगा। इसमें कोई बेवजह ट्रोलिंग नहीं कर सकता। किसी का कमेंट यदि अच्छा लगे तो अप्रूव कर दो, वरना डिनाय या डिलीट कर दो। आमनेसामने की चर्चा में धोखा लगता है। कई लोग बाहर से आध्यात्मिक जैसा बनने का ढोंग करते हैं। उन पर विश्वास करके यदि उनसे चर्चा करो, तो वे उस समय बगुला भगत की तरह हाँ में हाँ मिलाते हैं, और बाद में धुआँ देने को तैयार हो जाते हैं, क्योंकि वे दूसरे आदमी की आध्यात्मिकता को उसकी कमजोरी समझकर उसका नाजायज फायदा उठाते हैं। यहां तक कि कई लोग तो आध्यात्मिक चर्चा सुनते समय ही सुनाने वाले का मजाक उड़ाने लग जाते हैं। दोस्त भी अजनबी या दुश्मन जैसे बनने लगते हैं। इसलिए जो अच्छे विचार मन में आते हों, उनको किसीको सुनाने से अच्छा लिखते रहो। कम से कम लोग पागल तो नहीं बोलेंगे। अगर लिखने की बजाय उनको अपने में ही बड़बड़ाने लगोगे, तब तो लोग पक्का पागल कहेंगे। दो-चार लोगों के इलावा मेरे अपने दायरे से कोई भी मेरे ब्लॉग के फॉलोवर नहीं हैं। उनमें भी अधिकतर वे हैं, जिन्होंने कभी मेरी एक-आध पोस्ट को या किताब को पसंद किया, और फिर मैंने उनसे अपना ब्लॉग फॉलो करने के लिए कहा। कइयों को तो फॉलो करने के लिए स्टेप बाय स्टेप निर्देशित किया। वैसे उनमें से

कोई मेरे ब्लॉग को छोड़कर भी नहीं गया। मतलब साफ है, उन्हें इससे लाभ मिल रहा है। वैसे मैं अपने लाभ के लिए ब्लॉग लिखता हूँ, पर यदि किसी और को भी लाभ मिले, तो मुझे दोगुनी खुशी मिलती है। मेरे अधिकाँश मित्रों व परिचितों को मेरे ब्लॉग के बारे में पता है, पर किसीने उसके बारे में जानने की कोशिश नहीं की, फॉलो करना तो दूर की बात है। मेरे अधिकांश फॉलोवर दूरपार के और विदेशों के हैं। उनमें भी ज्यादातर विकसित देशों के हैं। इससे भी इस धारणा की पुष्टि हो जाती है कि वैज्ञानिक या बौद्धिक या सामाजिक विकास के चरम को छू लेने के बाद ही असली अध्यात्म शुरु होता है। एक कहावत भी है कि घर का जोगी जोगड़ा और दूर का जोगी सिद्ध। वैसे भी मुझे सिद्ध कहलाए जाने का जरा भी शौक नहीं है। मंजिल पर पहुंच गया, तो सफर का मजा खत्म। असली मजा तो तब है अगर मंजिल मिलने के बाद भी सफर चलता रहे। इससे सफर और मंजिल का मजा एकसाथ मिलता रहता है। सच्चाई यह है कि पूर्ण सिद्धि कभी नहीं मिलती। आदमी चलता ही रहता है, चलता ही रहता है, कभी रुकता नहीं। बीच-बीच में जागरण रूपी चैन की सांस लेता रहता है। वैसे अभी विकासशील देशों में वेबसाइट और ब्लॉग का प्रचलन कम है। जागृति वाली वैबसाइट बनाने और पढ़ने के लिए तो वैसे भी अतिरिक्त ऊर्जा की जरूरत पड़ती है। जहाँ रोजमर्रा की आम जरूरतों को पूरा करने के लिए ऊर्जा कम पड़ती हो, वहाँ जागृति के लिए अतिरिक्त ऊर्जा कहाँ से लाएंगे। यहाँ ज्यादातर लोगों को व्हाट्सएप और फेसबुक से ही फुर्सत नहीं है। जो ज्ञान एक विषय समर्पित ब्लॉग व वैबसाइट से मिलता है, वह फेसबुक, क्वोरा जैसे माइक्रोब्लॉगिंग प्लेटफार्म से मिल ही नहीं सकता। शुरुवाती लेखक के लिए तो क्वोरा ठीक है, पर बाद में वैबसाइट-ब्लॉग के बिना मन नहीं भरता। मुझे नेट पर अधिकांश वेबसाइट व ब्लॉग भी पसंद नहीं आते। जरूरत के हिसाब से उनसे जानकारी तो ले लेता हूँ, पर उन्हें फॉलो करने का मन नहीं करता। एक तो वे एक अकेले विषय के प्रति समर्पित नहीं होते। दूसरा, विस्तृत वैज्ञानिक चर्चा के साथ भी नहीं होते। तीसरा, या तो उनमें पोस्टों की बाढ़ सी होती है, या फिर लम्बे समय तक कोई पोस्ट ही नहीं छपती। चौथा, उन पोस्टों में भाषा व व्याकरण की अशुद्धियाँ होती है। उनमें व्यावहारिक दृष्टिकोण भी नहीं होता, और वे किसी दूसरे ग्रह की रहस्यात्मक कहानियाँ ज्यादा लगती हैं। उनमें मनोरंजकता और सकारात्मक या सार्थक संपर्कता कम होती है। समय की कमी भी एक वजह होती है। उनमें सभी विषयों की खिचड़ी सी पकाई होती है। इससे कुछ भी समझ नहीं आता। कहा भी है कि एके साधे सब सधे, सब साधे सब जाए। अगर कोई ज्योतिष का सिर-पैर एक करने वाला पूर्ण समर्पित ब्लॉग, डिमिस्टिफाइंगज्योतिषडॉटकॉम आदि नाम से हो, तो मैं उसे क्यों फॉलो नहीं करूंगा। दूसरा, उनमें विज्ञापनों के झुंड चैन नहीं लेने देते। इसीलिए मैंने अपने ब्लॉग में विज्ञापन नहीं रखे हैं। पैसा ही सबकुछ नहीं है। जो कोई किसी प्रोडक्ट के बारे में विज्ञापन देता है, उसे खुद उसके बारे में पता नहीं होता, क्योंकि उसको उसने प्रयोग करके कहाँ परखा होता है, या कौन सा सर्वे किया होता है। फिर जनता को क्यों ठगा जाए। पर्सनल ब्लॉग के नाम भी प्रोफेशनल व विषयात्मक लगने चाहिए, ताकि लोग उनकी तरफ आकर्षित हो सकें। सक्सेनाडॉटकॉम या जॉनडॉटकॉम नाम से अच्छा तो म्यूसिकसक्सेनाडॉटकॉम या राइटिंगजॉनडॉटकॉम है। इससे पता चलेगा कि इन ब्लॉग्स का विषय संगीत या लेखन है। विषयात्मक लेखों के बीच में अन्य विषय, व्यक्तिगत लेख और व्यक्तिगत घटनाक्रम भी लिखे जा सकते हैं। ऐसी वैबसाइट टू इन वन टाइप कही जा सकती हैं। ये प्रोफेशनल भी होती हैं, और पर्सनल भी। ये ज्यादा प्रभावशाली लगती है। अपनी पर्सनल वैबसाइट के लिए 200-250 रुपए का प्रति महीने का खर्चा लोगों को ज्यादा लगता है। पर वे जो 200 रुपए की अतिरिक्त मोबाइल सिम प्रति माह रिचार्ज करते हैं, उसका खर्चा उन्हें ज्यादा नहीं लगता। वैबसाइट से तो दुनिया भर की जानकारी मिलती है, पर अतिरिक्त सिम से तो कुछ नहीं मिलता, सिर्फ जिम्मेदारी का बोझ ही बढ़ता है। नकारात्मक जैसी किस्म के लोगों की भी आजकल कोई कमी नहीं। मैं क्वोरा पर कुण्डलिनी से संबंधित प्रश्न का एक उत्तर पढ़ रहा था, तो उसमें यह कहकर कुंडलिनी पर ही प्रश्नचिन्ह लगाया गया था कि पुराने धर्मशास्त्रों में कुंडलिनी के बारे में ऐसा कहाँ लिखा गया है, जैसे लोग आजकल सोशल मीडिया पर दावे कर रहे हैं। शायद उसका कहने का मतलब था कि शास्त्रों के कहे के अतिरिक्त अनुभव गलत है, और उसे सोशल मीडिया पर बताना भी गलत है। मतलब, अपनी कमजोरियों का ठीकरा शास्त्रों पर

फोड़ना चाहते हैं, और उन्हें अपनी खीज और ईर्ष्या के लिए ढाल की तरह इस्तेमाल करना चाहते हैं। ओपन माइंड नहीँ हैं। शास्त्रों के कंधों पर रखकर बन्दूक चलाना चाहते हैं, अपना कोई योगदान नहीं देना चाहते। यह उस दमनकारी नीति से उपजी सोच है, जैसी विदेशी हमलावरों ने सैंकड़ों सालों तक इस देश में बना कर रखी। यह ऐसी सोच है कि असली कुंडलिनी योगी समाज में दबे हुए से रहे और अपनी आवाज कभी बुलंद न करें। फिर समाज में आध्यात्मिकता कैसे पनपेगी। हैरानी इस बात की कि उस पर ढेर सारे अपवोट और अनुकूल कमेंट मिले हुए थे। मैंने उस पर कुछ कहना ठीक नहीं समझा, क्योंकि जिस मंच ने पहले ही निर्णय ले लिया हो, उस पर चर्चा करके क्यों ट्रोल हुआ जाए।

चलो, फिर से कुण्डलिनी से जुड़ी भगवान कार्तिकेय की कथा पर वापिस चलते हैं। तारकासुर को मारने विभिन्न देवता आए, पर वे उसे मार न सके। फिर शिव का मुख्य गण वीरभद्र आया। उसने अपने अमित पराक्रम से उसे लगभग मरणासन्न कर दिया। पर वह फिर उठ खड़ा हुआ। अंत में सभी देवताओं ने मिलकर कार्तिकेय को उसे मारने भेजा। तब राक्षस तारकासुर ने उस बालक को देखकर हँसते हुए भगवान विष्णु से कहा कि वह बड़ा निर्लज्ज है, इसीलिए उसने बालक को उससे लड़कर मरने के लिए भेजा है। फिर उसने विष्णु को कोसते हुए कहा कि वह प्रारम्भ से ही कपटी और पापी है। उसने रामावतार में धोखे से बाली को मारा था, और मोहिनी अवतार में राक्षसों को ठगा था। इस तरह से तारकासुर ने विष्णु के बहुत से पाप गिनाए, और कहा कि वह उसको मारकर उन सभी पापों की सजा देगा। फिर कार्तिकेय ने तारकासुर पर हमला किया। भयंकर युद्ध हुआ। उससे पवन स्तम्भित जैसी हो गई, और धरती कांपने लगी। सूर्य भी फीका पड़ने लग गया। कार्तिकेय ने अपनी अत्यंत चमकदार शक्ति तारकासुर पर चलाई। इससे तारकासुर मर गया। उसके बहुत से सैनिक मारे गए। कई सैनिकों ने देवसेना की शरणागति स्वीकार करके अपनी जान बचाई। तारकासुर का एक राक्षस बाणासुर युद्ध से जिंदा भाग गया था। वह क्रोंच पर्वत को प्रताड़ित करने लगा। जब उसने उसकी शिकायत कार्तिकेय से करी, तो उसने बाणासुर को भी मार दिया। इसी तरह प्रलम्बासुर राक्षस शेषनाग के पुत्र कुमुद को दुखी करने लगा। कार्तिकेय ने उसका वध भी कर दिया।

तारकासुर वध का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

वीरभद्र को हम शिव का प्रमुख व्यक्तित्व कह सकते हैं, क्योंकि वह शिव का मुख्य गण है। मुख्य सेनापति में राजा के गुण तो आएंगे ही। एक प्रकार से यह तांत्रिक व्यक्तित्व है। ऐसे व्यक्तित्व से तारकासुर यानी अज्ञान काफी कमजोर या मरणासन्न हो जाता है, पर मरता नहीं है। मरता तो वह शिवपुत्र कार्तिकेय से ही है। कार्तिकेय यहाँ अथक व अटूट संभोग योग से उत्पन्न वीर्यतेज को सहस्रार को चढ़ाने से फलीभूत कुंडलिनी जागरण का प्रतीक है। सात्विक विष्णु भी तारकासुर को मारने आया। पर उसे उसके पुराने पाप कचोटते रहे। दुनिया में अक्सर देखा जाता है कि बहुत सात्विक आदमी अपने द्वारा हुआ छोटा सा पाप भी नहीँ भूल पाते। वे तांत्रिक ऊर्जा का उपभोग भी नहीं करते, जो पापों को नष्ट करने के लिए तांत्रिक बल देती है। अपने पुराने पापों की कुंठा ही उनकी कुंडलिनी को जागृत नहीं होने देती। इसीको ऐसा कहकर बताया गया है कि तारकासुर भगवान विष्णु से उसके पुराने पापों की सजा देने की बात कर रहा है। कार्तिकेय को बालक इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह कुण्डलिनी योग से निर्मित मानसिक पुरुष है, जो नया-नया ही पैदा हुआ है, और भौतिक वस्तुओं से कम प्रभावी प्रतीत होता है। सूर्य, चंद्र, वायु आदि देवता बहुत पुराने समय से लेकर हैं। उनका भौतिक अस्तित्व है, जिससे वे कठोर या दृढ़ शरीर वाले हैं। इसीलिए उन्हें तुलनात्मक रूप से वयस्क माना गया है। पर कुण्डलिनी तो शुद्ध मानसिक चित्र है, जिससे वह बच्चे की तरह मुलायम है। क्योंकि कुंडलिनी चित्र मूलाधार की उसी वीर्यशक्ति से पैदा होता है, जिससे सन्तान पैदा होती है। इसीलिए कार्तिकेय को बच्चा कहा गया है। कार्तिकेय ने तारकासुर पर हमला किया, मतलब कुंडलिनी योगी ने शक्तिशाली तांत्रिक योग से प्राणोत्थान को लंबे समय तक बना कर रखा, जिससे चमचमाती कुंडलिनी लम्बे समय तक

लगातार सहस्रार में बनी रही। पवन स्तम्भित हो गई, मतलब शक्तिशाली प्राणोत्थान से योगी की साँसें बहुत धीमी और गहरी अर्थात लगभग न के बराबर हो गईं। योग की ऐसी उच्चावस्था में प्राण ही ऑक्सीजन की ज्यादातर जरूरत पूरी करने लगता है। धरती कांपने लगी, मतलब प्राणोत्थान से पूरे शरीर का प्राण सहस्रार में घनीभूत हो गया, जिससे शरीर में प्राण की कमी हो गई। इससे दुनियादारी के तनावयुक्त विविध कार्यों का शरीर पर जरा सा भी भार पड़ने पर शरीर कमजोरी के कारण कांपने लगता है। सूर्य फीका पड़ने लग गया, मतलब सहस्रार में कुण्डलिनी के काबिज होने से पूरे मन में अद्वैत भाव छा गया। अद्वैत में तो सुख और दुख समान लगने लगते हैं, प्रकाश और अंधकार समान लगने लगता है, मतलब सूर्य और चन्द्र समान लगने लगते हैं। यही सूर्य का फीका पड़ना है। कार्तिकेय ने अपनी चमकदार शक्ति तारकासुर के ऊपर चलाई। कार्तिकेय अर्थात कुंडलिनी की अपने आप की चमक ही उसकी वह चमकदार शक्ति है, जो उसने तारकासुर अर्थात अज्ञान के ऊपर चलाई। मतलब उसकी अपनी जागरण की चमक से ही द्वैतरूपी अज्ञान या तारकासुर नष्ट हुआ। अज्ञान रूपी तारकासुर के सैनिक हैं, विभिन्न मानसिक दोष और उनसे उपजे दूषित आचार-विचार। वे नष्ट हो जाते हैं। जो बचे रहते हैं, वे रूपांतरित होकर पवित्र हो जाते हैं। मतलब कि वे देवसेना की शरण में चले जाते हैं। जैसे कि कामभाव तन्त्रभाव में रूपांतरित होकर पवित्र हो जाता है, और मानव के आध्यात्मिक विकास में मदद करता है। राक्षस बाणासुर से यहाँ तात्पर्य बुरी नजरों के बाणों से है। नयन बाण, यह एक प्रसिद्ध शास्त्रीय उक्ति है। क्योंकि आंखें आज्ञाचक्र से जुड़ी होती हैं, इसलिए बुरी नजरों से वह दुष्प्रभावित होता है। यही बाणासुर राक्षस द्वारा क्रोंच पर्वत को प्रताड़ित करना है। दूषित नजर से बुद्धि दूषित होती है। बुद्धि आज्ञाचक्र में निवास करती है। क्योंकि जब तक जागृति से मन को तसल्ली नहीं मिल जाती, तब तक आदमी की नजरों में किसी न किसी तरह से भौतिक आनंद पाने की लालसा बनी रहती है। इसीसे नजर दूषित होती है। जैसे कि पराई नारी से क्षणिक सम्भोगसुख की लालसा होना, जिससे नारी पर गलत नजर पड़ती है। इससे गलत विचार आते हैं, जिससे बुद्धि की कल्पना शक्ति और निर्णय शक्ति भी पापपूर्ण होने लगती है। मतलब बाणासुर क्रोंच पर्वत को रौंदने लगता है, जिससे उसका अधिष्ठातृ देवता प्रताड़ित महसूस करके दुखी होता है। पिछली पोस्ट में मेरा अनुमान सही था कि आज्ञाचक्र को ही क्रोंच पर्वत कहा गया है। जागृति का ज्ञान होने के बाद बुरी और दूषित नजर का नष्ट होना ही कार्तिकेय के द्वारा बाणासुर का वध है। इसी तरह, शेषनाग मूलाधार से सहस्रार चक्र तक जाने वाली सुषुम्ना नाड़ी को कहा गया है, क्योंकि इसकी आकृति एक कुण्डली लगाए हुए और फन उठाए नाग की तरह है। सहस्रार चक्र को ही उसका पुत्र कुमुद कहा गया है। कुमुद का अर्थ श्वेतकमल होता है। सहस्रार चक्र को भी एक हजार पंखुड़ियों वाले कमल के रूप में दर्शाया जाता है। सुषुम्ना से ही सहस्रार को प्राण अर्थात जीवन मिलता है, इसीलिए दोनों का पिता-पुत्र का सम्बंध दिखाया गया है। प्रलंब माला को कहते हैं। कुंडलिनी भी माला के रूप वाले माइक्रोकोस्मिक ऑर्बिट में घूमती है। यह एक व्यवहारिक अनुभव है कि जब माला पूरी जुड़ी हुई होती है, तभी कुंडलिनी सभी चक्रों में विशेषकर सहस्रार चक्र में अच्छे से प्रवेश कर पाती है। टूटी हुई माला से कुंडलिनी ऊर्जा गति नहीं कर पाती। राक्षस प्रलम्बासुर यही टूटी हुई माला है। वह शेषनाग पुत्र कुमुद को दुखी करने लगा, मतलब टूटा हुआ ऊर्जा परिपथ सहस्रार चक्र तक प्राण ऊर्जा की आपूर्ति को बाधित करने लगा। कार्तिकेय ने प्रलम्बासुर को मारा, मतलब कुंडलिनी जागरण के बाद कुंडलिनी के पीछे के चैनल से ऊपर चढ़ने से और आगे के चैनल से नीचे उतरने से ऊर्जा परिपथ पूर्ण हो गया। साथ में, कुंडलिनी जागरण से उत्साहित आदमी आगे भी नियमित रूप से कुंडलिनी योगाभ्यास करने लगा, जिससे माला रूपी केंद्रीय कुंडलिनी चैनल ज्यादा से ज्यादा खुलता गया। वास्तव में असली माला जाप तो चक्रों की माला में कुंडलिनी का जाप ही है। इसीको गलत समझने के कारण धागे और मनकों की भौतिक माला बनी होगी। या हो सकता है कि कुंडलिनी योग को आम अशिक्षित लोगों की समझ में लाने के लिए ही धागे की माला का प्रचलन शुरु कराया गया होगा। हालांकि इससे भी बहुत से लाभ मिलते हैं। अभ्यास से धागे की बाहरी माला चक्रों की भीतरी माला में रूपांतरित हो जाती है।

कुंडलिनी रूपांतरण के नाजुक दौर से गुजर रहा अंतरराष्ट्रीय समाज, जिसे युग परिवर्तन भी कहते हैं~यूक्रेन-रशिया युद्ध का मनोविज्ञान

सभी मित्रों को शिवरात्रि पर्व की बहुत-बहुत बधाइयाँ

मित्रो, मैं पिछली पोस्ट में धार्मिक आतंकवाद के बारे में बात कर रहा था। हाल ही में एक घटना और सामने आ गई। कर्नाटक में स्कूलों में हिजाब पहनने के नए चलन का शांतिपूर्वक विरोध करने वाले हिंदु बजरंग दल के एक 23 वर्ष के अविवाहित व अच्छे खासे कार्यकर्ता को कुछ जिहादियों ने मिलकर बेरहमी से मौत के घाट उतार दिया। ऐसी हिन्दुविरोधी घटनाएं सैंकड़ों सालों से नियमित रूप से हो रही हैं, कभी कम, तो कभी ज्यादा। पर एक भय का माहौल खड़ा करके इन्हें दबा कर या दुष्प्रचार से हल्का कर दिया जाता है। सभी लोगों का कल्याण इसीमें है कि सभी धर्मों के लोग मिलजुलकर रहें। आज सभी धर्मों को संशोधित करके उनमें से अमानवीय कट्टरता को बाहर निकालने की जरूरत है। मैं किसी धर्म-विशेष के पक्ष या विपक्ष में नहीं बोल रहा, बल्कि धर्म के वैज्ञानिक या मानवीय या कुंडलिनी पक्ष को उजागर करने की जरूरत महसूस कर रहा हूँ। धार्मिक हिंसा के मामले हर धर्म में देखे जाते हैं, कहीं कम तो कहीं ज्यादा। दरअसल क्या होता है कि जब किसी व्यक्ति द्वारा स्वार्थवश किसी विशेष धर्म से यह अपेक्षा की जाती है कि उससे उसे धन या रोजगार आदि के रूप में आर्थिक और सम्मान आदि के रूप में सामाजिक लाभ मिले। इससे वह उस धर्म के विरुद्ध लगने वाली बात जरा भी बर्दाश्त नहीं कर पाता, सच्ची और वैज्ञानिक बात भी नहीं। क्योंकि तब उसे अपनी रोजीरोटी और अपना सम्मान छिन जाने का डर सताने लगता है। यहीं से धार्मिक कट्टरता का उदय होता है। इसीलिए शास्त्रों में ठीक ही कहा गया है कि धार्मिक कार्यों से जीविका का उपार्जन नहीँ करना चाहिए, और न ही उन से सम्मान की अपेक्षा रखनी चाहिए। कोई चाहे कितना ही अपमान क्यों न करे, उसे झेल लेना चाहिए। इसीलिए यह मशहूर दोहा आम जनमानस में काफी प्रचलित है। मार-कूट धरती सहे, काट-कूट वनराय; कुटिल वचन साधु सहे, और से सहा न जाए।

साथ में, मैं वीर्य के महत्त्व के बारे में भी बता रहा था। वीर्यपात के बाद शरीर निस्तेज सा हो जाता है। तन-मन में एक कमजोरी सी छा जाती है। वैज्ञानिक तौर पर देखा जाए तो वीर्य में इतने ज्यादा पोषक तत्त्व भी नहीं होते, जिनकी भरपाई भोजन से न की जा सके। इससे जाहिर होता है कि उसमें कोई नाड़ी उत्तेजक तत्त्व होता है। नाड़ी की तंदरुस्ती से भोजन के पोषक तत्त्वों का शरीर में ठीक ढंग से एसिमिलेशन अर्थात अवशोषण होता है। इसका मतलब है कि वीर्यपात के बाद शरीर की पूर्ववर्ती क्रियाशीलता के लिए अतिरिक्त पोषक तत्त्वों की आवश्यकता पड़ती है। नाड़ी की क्रियाशीलता की कमी को अतिरिक्त पोषक तत्त्वों से पूरा करना पड़ता है। इसीलिए वीर्यपात के एकदम बाद भूख भी बढ़ जाती है। हालांकि उसे पचाने में थोड़ी दिक्कत आ सकती है। सम्भवतः तन्त्र में इसी कमी को पूरा करने के लिए मांसभक्षण का प्रावधान करना पड़ा हो। सम्भवतः माँस में भी कोई नाड़ी उत्तेजक तत्त्व होता है। इसीलिए मांसाहारी जंतुओं में बहुत स्फूर्ति देखी जाती है। हो सकता है कि वह कोई खास विटामिन हो, जिसे मोबि-विटामिन कह सकते हैं। वह शरीर में मांसभक्षण के बाद ही बनता हो। शाकाहारी प्राणियों के शरीर में वह उपस्थित रहते हुए भी काम न कर पाता हो। उस विटामिन को विज्ञान अभी तक खोज न पाया हो। यदि वह विटामिन मिल जाए, तो उसे प्रयोगशाला में भी बनाया जा सकता है, जिससे स्वास्थ्यवर्धक टॉनिक बनाए जा सकते हैं। इससे पशुओं पर होने वाले नाजायज अत्याचार को काफी हद तक कम किया जा सकता है। पर यदि वीर्यस्खलन के बाद यौन-तांत्रिक तकनीकों से नागिन का मुख ऊपर की ओर मोड़ दिया जाए, तब कमजोरी नहीं आती। नागिन

का मुख ऊपर की ओर हो जाने से फिर से वीर्यशक्ति ऊपर की ओर चढ़ने लगती है। इससे नाड़ियाँ फिर से क्रियाशील हो जाती हैं, जिससे पूरा शरीर फिर से सुचारु रूप से काम करने लग जाता है। इस नागिन को उठाने की प्रक्रिया को जितना जल्दी किया जाता है, उतना अधिक लाभ मिलता है। इससे फिर सिद्ध होता है कि वीर्य में कोई विशेष पोषक तत्त्व नहीं होते, जैसा कि विज्ञान भी कहता है, पर सम्भवतः इसमें कोई विशेष नाड़ी उत्तेजक तत्त्व होता है, जो शरीर की क्रियाशीलता के लिए बहुत जरूरी होता है। यदि इस पर वैज्ञानिक अनुसंधान किया जाए, तो एक बहुत ही शक्तिवर्धक दवाई बनाई जा सकती है। उससे नाड़ी ऊर्जा की कमी को पूरा करके आदमी की कार्यकुशलता और कार्यक्षमता को मनचाही रफ्तार दी जा सकती है। इससे जहाँ आदमी का वर्तमानकालिक भौतिक पिछड़ापन दूर हो सकता है, साथ में जागृति भी आसानी से सुलभ हो सकती है। शास्त्रों में भी वीर्य को सबसे शक्तिशाली पदार्थ कहा गया है, रक्त से भी हजारों गुना अधिक। उनमें कहा गया है कि रक्त की हजारों बूंदों से वीर्य की एक बूंद बनती है। इसका मतलब है कि रक्त से छनकर कोई विशेष तत्त्व वीर्य के रूप में धीरे-धीरे जमा होता रहता है। जितनी बार वज्र प्रसारण होता है, उतनी ही बार वीर्य निर्माण के लिए रक्त का दौरा माना गया होगा। हरेक वज्र प्रसारण के बाद जो कुछ यौन उत्तेजना बढ़ती है, उसे ही वीर्य की वृद्धि के रूप में माना गया होगा।

कई लोग अक्सर कहते हैं कि उन्हें तो पीठ में ऊपर चढ़ती हुई ऊर्जा महसूस ही नहीं होती। ऊपर क्या चढ़ाएंगे, जब कुछ नीचे ही नहीं बनेगा। मतलब कि मूलाधार में जब कुंडलिनी ऊर्जा का निर्माण होगा, तभी उसे ऊपर चढ़ा पाएंगे न। मूलाधार पर कुंडलिनी ऊर्जा का निर्माण अनेक प्रकार से होता है। इनमें मुख्य हैं, यौगिक साँसें, रीढ़ की हड्डी को सीधा रखकर बैठने की सही विधि, योगासन, विविध व्यायाम, विविध प्रकार की शारीरिक क्रियाशीलता, पैदल सैर, साइकिल चलाना, अद्वैतभाव के साथ जीवनयापन और संभोग। संभोग से सर्वाधिक और सबसे जल्दी लाभ मिलता है, पर इसमें निपुणता की बड़ी जरूरत होती है, और इसे गुप्त भी रखना पड़ता है। इससे पीठ में ऊपर चढ़ती हुई ऊर्जा का स्पष्ट आभास होता है। संभोग के बाद आदमी अक्सर निस्तेज जैसे हो जाते हैं। यही गलत विधि है। आदमी का तेज कभी घटना ही नहीं चाहिए। दरअसल वीर्यशक्ति को कुंडलिनी ऊर्जा में रूपांतरित न करने से और अत्यावश्यक स्खलन के बाद नागिन को शीघ्रातिशीघ्र ऊपर न उठाने से ही यह तेज की हानि होती है। दरअसल अगर दिव्य नागिन को नीचे की तरफ ही मुँह किए रहने दिया जाए, तो एक सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक संदेश शरीर को प्रसारित हो जाता है कि वीर्य का उत्पादन रोक दिया जाए। सम्भवतः यह इस सम्भावना से उत्पन्न सूक्ष्म और अप्रत्यक्ष भय से होता है कि वीर्य फिर से इसी तरह बर्बाद कर दिया जाएगा। इससे वीर्य की कमी से शरीर निस्तेज हो जाता है। इसके विपरीत, यदि स्खलन के बाद नागिन का मुँह ऊपर की ओर मोड़ दिया जाए, तो मस्तिष्क को यह सन्देश जाता है कि जो हुआ सो हुआ, पर अब शरीर वीर्य को बर्बाद न करके उसे शरीर के प्रयोग में लाएगा। इससे वीर्य का उत्पादन पहले से भी ज्यादा बढ़ जाता है, जिससे पिछले वीर्यक्षरण से उत्पन्न कमजोरी भी शीघ्र पूरी हो जाती है, और साथ में आगे का विकास भी शुरु हो जाता है। इसका यह मतलब नहीं कि वीर्यक्षरण करते रहना चाहिए। मर्द की विशिष्ट शक्ति उसके वीर्य से ही है। वीर्य के बिना तो वह नपुंसक की तरह ही बलहीन है। इसलिए हमेशा वीर्यसंरक्षण का प्रयास करते रहना चाहिए। वीर्यक्षरण से कुछ न कुछ हानि तो होती ही है, पर यह तंत्राभ्यास से बहुत कम रह जाती है। फिर इसे हानि भी नहीं कह सकते, क्योंकि वह हानि फिर कुंडलिनी लाभ में रूपांतरित हो जाती है। बल्कि इसका यह मतलब है कि यदि चूकवश हो जाए, या अत्यावश्यकतावश हो जाए, या पूर्वनियोजित कुंडलिनी लाभ के लिए किया जाए, तो कमजोरी से कैसे बचा जा सकता है। वीर्यक्षरण से उत्पन्न हुई इसी कमजोरी के कारण ही संभोग बदनाम हुआ है। साथ में, स्त्री भी बदनाम हुई है। उसे ऊर्जा निचोड़ने वाला या डाकिनी या विच या चुड़ैल वगैरह समझा गया। लापरवाही पुरुष की, पर दोषारोपण स्त्री पर। वैसे कुछ हद तक स्त्री भी पुरुष की मदद कर सकती है। अपने ऊपर लगे लाँछन को महिला खुद ही मिटा सकती थी, पर वह लज्जावश हमेशा चुप रही। उसने तन्त्र से भी मुंह मोड़ लिया। इसीलिए मैं प्रारम्भ से ही यह कहता आया

हूं कि तन्त्र ही स्त्री को उसका खोया हुआ सम्मान वापिस दिला सकता है। जब लोगों को इन तथ्यों की समझ आएगी, तो यौनहिंसा में भी कमी आएगी। फिर औरत को पूजनीय और देवी माना जाएगा। मैं यहां लिंगभेद वाली बात नहीं कर रहा हूँ, अपितु तथ्यात्मक विश्लेषण का प्रयास कर रहा हूँ।

कम ऊर्जा वाले लोग तो अधिक ऊर्जा वाले लोगों से घृणा करेंगे ही। पशु को ही लें। उन्हें अपना कम ऊर्जा वाला सादा जीवन ही अच्छा लगता है। इसीलिए वे शहरों की बजाय जंगलों में रहना पसंद करते हैं। पर हाईटेक शहर में रहने वाले हाईटेक लोग भी जागृत आदमी के सामने कम ऊर्जा वाले हैं। दुनिया में ज्यादातर लोग कम ऊर्जा वाले ही हैं। इसीलिए वे जागृत लोगों को अलग-थलग सा करके रखते हैं। इसीलिए जागृत लोग कई बार अक्सर विभिन्न ज्यादतियों के शिकार भी बन जाते हैं। उदाहरण के लिए, जैसे ईसामसीह बने थे।

क्या होता है कि थोड़ी सी आध्यात्मिक लक्ष्य की इच्छा भी आदमी को सफल बना देती है। छोटी सी इच्छा बेशक मामूली लगे, पर वह बीज की तरह बड़े पेड़ को जन्म देने वाली होती है। जैसे समय के साथ छोटा सा बीज भी वृद्धि करता हुआ महान वृक्ष बन जाता है, उसी तरह थोड़ा सा किया हुआ आध्यात्मिक प्रयास भी आगे चलकर बहुत बड़ी आध्यात्मिक सफलता अर्थात जागृति के रूप में वृद्धि को प्राप्त होता है। इसीलिए बच्चों में आध्यात्मिक संस्कार डालने की विशेष परम्परा रही है, ताकि वे बड़े होकर जागृति प्राप्त करें, और समाज को भी सही दिशा में ले जाएं। उदाहरण के लिए कुछ दिनों पहले मेरे बेटे ने अचानक अध्यात्मिक प्रश्नोत्तरी शुरु कर दी मेरे साथ। वैसे तो आजकल के बच्चों का ध्यान ऑनलाइन चटपटे ऑडियोवीडियो मसालों पर ही रहता है, पर उस दिन उसका दूसरा मूड बन गया था। वह पूछने लगा कि उसको पीपल को जल देने के लिए क्यों बोला जा रहा है। तो उसकी माँ ने बताया कि पीपल का पेड़ रात को भी ऑक्सीजन बनाता है, और भूतप्रेत उससे दूर रहते हैं। फिर उसने पूछा कि वह रात को कैसे ऑक्सीजन बनाता है, तो मैंने कहा कि चाँद की रौशनी में प्रकाश-संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा। तब उसने पूछा कि उससे भूत कैसे भागते हैं, तो मैंने कहा कि प्रकाश संश्लेषण से पेड़ में ऊर्जा पैदा होती है, जिसकी तरंगों से भूत उसके निकट नहीं आते। ऊर्जा ही चेतना है, और चेतना ही भूतनाश है। कुछ तर्कवितर्क के बाद वह यह बात मान गया। फिर वह पूछता है कि क्या मैं सभी आध्यात्मिक मान्यताओं को वैज्ञानिक रूप मैं समझा सकता हूँ। तो मैंने कहा कि हाँ। फिर वह पूछता है कि जब थाली हाथ से फर्श पर गिरती है, तो उसको एकदम पकड़कर उसकी आवाज करने को बंद करने के लिए क्यों कहा जाता है। मैंने कहा कि गिरकर आवाज करने वाली थाली की आवाज की आवृत्ति लगातार धीरे-धीरे कम होती जाती है। एक आवृत्ति ऐसी आ सकती है, जो हमारे मस्तिष्क में पैदा होने वाली आवृत्ति से मेल खा सकती है। उससे अनुनाद पैदा हो सकता है, जिससे हमारे मस्तिष्क की आवृत्ति बहुत ज्यादा बढ़ सकती है। उससे रक्तचाप व तनाव बढ़ सकता है। फिर उसने पूछा कि ऐसा क्यों कहा जाता है कि उस बजती हुई थाली की आवाज भगवान तक पहुंचती है। तो उसकी माँ ने कहा कि भगवान हमारे अंदर ही है, जो दिल की गहराई में छुपा रहता है। मस्तिष्क में बहुत ज्यादा ऊर्जा के पैदा होने से उसका अहसास दिल तक महसूस होता है, मतलब भगवान तक पहुंच जाता है। मैंने भी इसका अनुमोदन किया। वह और ज्यादा प्रभावित होकर नया सवाल पूछने लगा कि तीन रोटी खाने को मना क्यों करते हैं, और तीन रोटी खा लेने के बाद आधी रोटी और खाने को क्यों कहते हैं। मैंने कहा कि विषम संख्या से हमारी नाड़ियाँ असंतुलित हो जाती हैं, पर सम संख्या से संतुलित हो जाती हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि मुख्य नाड़ियों की संख्या दो है, जो एक सम संख्या है। उनके नाम इड़ा और पिंगला हैं। वैसे भी विषम संख्या को ओड या अटपटा कहा जाता है। फिर वह पूछता है कि मुझे इन बातों का पता कैसे चला, तो उसकी माँ ने कहा कि इतने पुराण पढ़ने के बाद भी पता नहीं चलेगा, तो कब पता चलेगा। फिर बच्चा इधर-उधर व्यस्त हो गया। चलो, बच्चे में इतना तो संस्कार पड़ा। दरअसल संस्कार बहुत छोटा और सूक्ष्म बीज जैसा होता है, पर मन पर लगातार असर डालता रहता है, जिससे कालांतर में बड़ा परिवर्तन देखने को मिलता है। मन पर संस्कार पड़ते समय तो उसका पता भी नहीं

चलता, जैसे सरसों के बीज का पता ही नहीं चलता। उसका प्रभाव लम्बे समय बाद ही नजर आता है, जैसे सरसों का लहलहाता खेत बिजाई के कई महीनों बाद ही दिखता है। संस्कार मौका पाते ही बढ़ने लगता है, और प्रतिकूलता में वहीँ रुक जाता है। गम्भीर योगसाधना के बिना यह कम या खत्म नहीं होता। यह ऐसे ही होता है, जैसे तनिक सूखा पड़ने पर फसल का बढ़ना रुक जाता है, पर वर्षा होने पर फसल फिर से बढ़ने लगती है। जैसे बहुत ज्यादा सूखा पड़ने पर कई बार फसल के साथ उगने वाले खरपतवार नष्ट भी हो जाते हैं, उसी तरह कुंडलिनी योगसाधना से बुरे संस्कार जल कर नष्ट भी हो जाते हैं। इसलिए हमेशा कुंडलिनी योग करना चाहिए। अनेकों पिछले जन्मों के संस्कार हमारे मन में अवचेतन मन के रूप में दबे पड़े होते हैं। उनकी सफाई कुंडलिनी योग से ही सम्भव लगती है। खास बात है कि कुंडलिनी योग से बुरे संस्कार ही नष्ट होते हैं, अच्छे संस्कार नहीं। कुंडलिनी योग से अद्वैत भाव पैदा होता है, जो एक ईश्वरीय भाव है। ईश्वरीय भाव में अच्छी चीजें ही होती हैं, बुरी नहीं। स्कूल में भी योग सहित ऐसी शिक्षा पद्धति होनी चाहिए, जिससे मन पर अच्छे और मजबूत संस्कार पड़े।

किसी चीज को ऊंचा उठाने के लिए बहुत प्रयास करना पड़ता है। नीचे की ओर वह खुद जाती है। इसी तरह कुंडलिनी ऊर्जा को सहस्रार तक उठाने के लिए काफी पम्पिंग फोर्स की जरूरत पड़ती है, जो कुंडलिनी योग से हासिल की जाती है। पर वही कुंडलिनी ऊर्जा खुद ही नीचे गिरकर मूलाधार में पहुंच कर वहाँ पड़ी रहती है, क्योंकि मूलाधार सबसे ज्यादा नीचाई पर है। वैज्ञानिक बताते हैं कि जिराफ का दिल आदमी के दिल से लगभग 30 गुना बड़ा अर्थात शक्तिशाली होता है। यह स्वाभाविक ही है क्योंकि जिराफ की गर्दन बहुत लम्बी होने से उसका सिर बहुत अधिक ऊंचाई पर स्थित होता है। वहाँ तक खून पहुंचाने के लिए दिल को बहुत अधिक मेहनत करनी पड़ती है, जो दिल के बड़े आकार से ही सम्भव है। तो इससे यह क्यों न माना जाए कि खून ही कुंडलिनी ऊर्जा है। हालांकि निष्कर्ष यह निकलता है कि कुंडलिनी ऊर्जा तो नाड़ी ऊर्जा ही है, पर वह रक्तप्रवाह को नियंत्रित करके अपना प्रभाव दिखाती है। कुंडलिनी ऊर्जा को सहस्रार तक चढ़ाने वाला एक नुस्खा बताता हूँ। आप स्वयं अंतरिक्ष या कहीं सूर्य, चन्द्र आदि पर स्थित हो जाओ। फिर अपने शरीर के कई सिरों वाले नाग को वहां से ऐसे देखो जो कुंडलिनी लगा कर बैठा है, और जिसने अपना फन ऊपर उठाया हुआ है, तथा अपने सबसे लंबे और केंद्रीय फन में अपनी पूँछ पकड़ी हुई है। इससे कुंडलिनी गोल लूप में घूमते हुए सहस्रार में चमकने लगेगी। इस विधि का यह लाभ है कि शरीर को कुंडलिनी ऊपर चढ़ाने के लिए ज्यादा मेहनत नहीं करनी पड़ती। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि सुदूर अंतरिक्ष से देखने पर हमारा शरीर एक छोटी सी गेंद की तरह है, कोई लम्बीचौड़ी आकृति नहीं है। इससे एक मनोवैज्ञानिक सहायता मिलती है। चंद्र से याद आया कि चंद्र को पितृलोक भी कहते हैं। एकदिन मैं रात को बाहर टहल रहा था। सिर के ऊपर और थोड़ा सा आगे बहुत खूबसूरत गोल चांद था। लग रहा था मानो वह मेरे साथ चल रहा हो। उसकी तरफ ध्यान से और प्यार से देखते रहने पर मुझे उसके अंदर अपने मुस्कुराते पूर्वज नजर आए। साथ में, कुंडलिनी ऊर्जा भी मेरे अंदर गोल-गोल घूमने लगी। सम्भवतः पूर्वज की सूक्ष्म व धुंधली याद को मजबूत बनानेके लिए ही कुंडलिनी ऊर्जा अपना सहयोग देने आई हो। चंद्रमा भी उस कुंडलिनी लूप का हिस्सा बन गया था, जो सहस्रार की तरह ही गोल छल्ले या लूप के सर्वोच्च शिखर के रूप में लग रहा था। वैसे तो उस समय मैं अपने तन्त्रसाथी के साथ हाथ से हाथ पकड़कर चल रहा था। यिन-यांग के इकट्ठा जुड़ने से अद्वैत व कुंडलिनी प्रकट हो जाते हैं। सम्भवतः अपने यांग को बढ़ाने के लिए ही पुरुष अपना पुरुषत्व बढ़ाने की कोशिश करते हैं। वे स्कूलों-कॉलेजों में बहादुरी या दादागिरी या स्पोर्ट्समैनशिप दिखाने की कोशिश करते हैं। इसके पीछे उनकी यही छुपी हुई मंशा होती है कि यिन अर्थात लड़की उनकी तरफ आकर्षित हो जाए। यदि ऐसा होता है तो वे अद्वैत व कुंडलिनी का महान आनन्द प्राप्त करते हैं। यदि लड़का पहले ही यिन की तरह हो, और उसकी तरफ यिन आकर्षित भी हो जाए, तब भी उतना फायदा नहीं होता। इसलिए कहते हैं कि कुछ पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है। बहादुरी दिखाते समय जान का जोखिम तो बना ही रहता है। यही कारण है कि बॉयज होस्टल व गर्ल्ज हॉस्टल एकदूसरे के प्रति बेइंतेहा आकर्षित हुए रहते हैं। दरअसल बॉयज हॉस्टल यांग का समुद्र होता है, और गर्ल्ज

होस्टल यिन का। यान-यिंग गठजोड़ में बहुत शक्ति होती है। यह ईश्वरीय शक्ति होती है। इसीलिए तो मातापिता को ईश्वर का स्वरूप माना जाता है। इस गठजोड़ को अद्वैत, और आनन्द इसलिए प्रदान किया गया है, ताकि जीव अपनी संतान का अच्छे से पालन पोषण कर सके। अद्वैत से प्रेम व परोपकार की भावना पैदा होती है। इसीलिए मातापिता को अपनी संतान ही सबसे प्रिय लगती है। यदि यिन-यांग गठजोड़ में ये अद्वैत या कुंडलिनी शक्ति न हुआ करती, तो मांबाप अपनी संतान की उपेक्षा करते, जिससे सृष्टि का विस्तार असम्भव सा हो जाता। ईश्वर में यह अद्वैत भाव चरमावस्था में होता है, इसीलिए वह किसी भी जीव से वैरविरोध न करके सबको सुखपूर्वक जीने के भरपूर अवसर देता है। इसलिए सभी जीवों को ईश्वर की संतान कहा जाता है। वैसे तो यिन-यांग गठजोड़ को ईश्वर ने संतान के लिए बनाया है, पर आध्यात्मिक वैज्ञानिकों ने इसका प्रयोग कुंडलिनी जागरण के लिए किया। यही फिर तन्त्र बन गया। कमजोर राजा ताकतवर राजा से दोस्ती बढ़ाने के लिए उसे या उसके पुत्र को अपनी बेटी का हाथ दे दिया करता था। इससे स्वाभाविक है कि यिन-यांग गठजोड़ के कारण दोनों के बीच मैत्री बढ़ जाया करती थी। आज भी अक्सर इसका उपयोग लोग अपने सामाजिक उत्थान के लिए करते रहते हैं। इतिहास गवाह है कि औरत ने कैसे समय-समय पर अपना जलवा दिखाया है। महाभारत का युद्ध एक औरत के गुस्से से हुआ था। उसने अपने बालों को तब तक न बांधने का निर्णय लिया था, जब तक वह कौरवपुत्रों के खून से अपने बालों को न धो लेती। मतलब कि उसने अपनी यिन शक्ति को अलग रखा, और यांग के साथ उसका पूरा गठजोड़ नहीं होने दिया। इससे उसके पति वीर पांडव हमेशा युद्धपिपासु बने रहे। यदि वह अपने यिन को इस तरह अपने बालों तक सीमित करके न रखती, तो वह जरूर यांग के साथ मिश्रित हो जाती, जिससे उसके पतियों में शांतिपरक ईश्वरीय गुण आ जाते, जिससे सम्भवतः युद्ध टल जाता। वैसे तो इस कथा के बहुत से कारण और पक्ष हैं, पर मैं केवल एक पक्ष को सामने रखकर अपना मन्तव्य स्पष्ट कर रहा हूँ। वैसे इस देवी शक्ति का दुरुपयोग भी बहुत होता है। उदाहरण के लिए दुष्ट राष्ट्रों के द्वारा सेनानायकों को बहलाने-फुसलाने के लिए औरतों को भेजा जाता है। सुनने में आया है कि पाकिस्तान भी आजकल अपने दुश्मन राष्ट्रों के खिलाफ कुछ ऐसा ही कर रहा है। आज अगर पुतिन, बाइडेन, जिनपिंग और यूक्रेन राष्ट्र प्रमुख जेलेन्स्की के मन में ऐसा यिन-यांग गठजोड़ बन जाए, तो दुनिया विनाशकारी युद्ध से बच सकती है। मैं इसके बारे में गहनता से न जाता हुआ यही कौमन सेंस की बात कहता हूं कि यदि सामने हार या हानि दिख रही हो तो युद्ध से भागना भी एक युद्धनीति है, कायरता नहीं। और ये भी सभी जानते हैं कि युद्ध चाहे कैसा ही क्यों न हो, उसमें कुछ न कुछ हानि होना तो निश्चित ही है। मैंने इशारों में ही बहुत कुछ कह दिया है। समझदार के लिए तो इशारा ही काफी है। मैं पिछले कुछ दिनों कामकाज में काफी व्यस्त रहा। यदि यह पता होता कि मेरे लिखने से युद्ध रुक सकता है, तो सब काम छोड़कर लिखने ही बैठता। अब पोस्ट के मुख्य विषय पर आते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि एक औरत में बहुत शक्ति होती है। उसके आगे बड़ी-बड़ी सेनाएँ और बड़े-बड़े राष्ट्र घुटने टेक देते हैं। औरत एक देवी होती है। पर वह तब न, अगर औरत समझे। आज तो वह इस रहस्यमयी तंत्रविद्या को भूली हुई सी लगती है। सूर्य यांग है, उसको चढ़ाया जाने वाला अर्घ्य का जल यिन है। इसीलिए कहते हैं कि सूर्य की तरफ ऊँचाई से जल डालना चाहिए, ताकि सूर्य और जल एकसाथ नजर आए। सबसे बढ़िया तब माना जाता है अगर जल की धारा के बीच में से सूर्य दिखे। इससे यिन और यांग सबसे अच्छी तरह मिश्रित हो जाते हैं, जिससे कुंडलिनी-अद्वैत पैदा होता है। हाथी यिन है, औऱ आदमी यांग। दोनों के मिश्रण का नाम भगवान गणेश है। इसी तरह बन्दर यिन है, और आदमी यांग। दोनों का मिश्रण मंकीगोड हनुमान जी हैं। इसीलिए इन दोनों देवताओं की आराधना से अद्वैत व कुंडलिनी का अनुभव बड़ी तेजी से होता है। भगवान शिव के माथे पर त्रिपुंड व तीसरी आंख के चिन्ह होते हैं। त्रिपुंड चंदन आदि से बनाई तीन समानांतर रेखाएं हैं, और तीसरी आंख चन्दन से लगाया गया दीप ज्योति के आकार का तिलक है। त्रिपुंड का मतलब प्रकृति के तीन गुण हैं, सत्त्व, रज और तम। तीसरी आंख कुंडलिनी जागरण को दर्शाती है। इसका मतलब है कि दुनियादारी में तरक्की कर लेने के बाद ही कुण्डलिनी जागरण की अनुभूति होती है, दुनिया को छोड़कर नहीं। नहाने के बाद गीले शरीर को तौलिये से एकदम साफ न करके उसका पानी खुद निचुड़ने देने के लिए कहा जाता है।

दरअसल इससे शरीर में ठंडक पैदा होती है, जिससे मांसपेशियों में सिकुड़न पैदा होती है। पीठ की मांसपेशियों से होते हुए यह सिकुड़न ऊपर चढ़ती है, और आगे के शरीर से नीचे उतरती है। इस सिकुड़न के साथ कुंडलिनी भी शरीर में बहुत अच्छे तरीके से घूमती है। इसी तरह मन्दिर आदि में या आध्यात्मिक पर्व पर भोग या भोजन आदि खाने को इसलिए दिया जाता है, क्योंकि मुंह के अंदर की ऊपर की और नीचे की सतहें आपस में मिल जाती हैं, जिससे कुंडलिनी स्विच के ऑन होने से कुंडलिनी परिपथ पूर्ण हो जाता है, जिससे कुंडलिनी घूमने लगती है। इन सब बातों का मतलब यह है कि हिंदु शास्त्रों व पुराणों की हरेक बात वैज्ञानिक व आध्यात्मिक रूप से एकदम खरी उतरती है, तथा कुंडलिनी पर आधारित है। कई लोग ऐसी बातों को अंधविश्वास कहते हैं। पर यह उनके देखने का नजरिया है, जिससे उन्हें ऐसा लगता है। वे उन्हें स्थूल आँखों से भौतिक रूप में देखना चाहते हैं, पर वे मन की आंखों से देखने पर ही सूक्ष्म रूप में नजर आती हैं। कुंडलिनी भी मन की आँखों से ही दिखती है, स्थूल आँखों से नहीं। इसीलिए कुंडलिनी के दिखाई देने को तीसरी आँख का खुलना भी कहा जाता है। यह तीसरी आँख मन की आँख ही है। इसका मतलब है कि सारे धर्म विशेषकर हिंदु धर्म पूरी तरह से कुंडलिनी पर ही आश्रित है, क्योंकि इसमें बताई गई अधिकांश चीजें मन की आँखों से ही दिखती हैं, भौतिक आँखों से नहीं। पुराणों की रूपक कथाएं भी तब तक समझ नहीं आतीं, जबतक उनके बारे में गहन सोचविचार न किया जाए। इससे मन की आंखें खुलती हैं। और जहाँ मन की आँख है, वहाँ तो कुंडलिनी होगी ही। मुझे तो यहाँ तक लगता है कि पुराणों में लिखे गए भौतिक पूजापाठ और कर्मकांड के विधान भी किन्हीं मानसिक या शारीरिक प्रणालियों को रूपक के रूप में अभिव्यक्त करते हैं, वास्तविक भौतिक व स्थूल क्रियाओं को नहीं। पर लोगों ने उन्हें भौतिक रूपों में समझा, और उनका भौतिक प्रचलन शुरु हुआ। निम्न श्रेणी के लोगों को इससे फायदा भी हुआ, क्योंकि वे उनके सहारे ऊंचे कुंडलिनी योग तक आसानी से पहुंच गए। पर उच्च वर्ग के बुद्धिजीवियों को इससे नुकसान भी हुआ होगा, क्योंकि वे पूरी उम्र इन्हीं में उलझे रहे होंगे, और कुंडलिनी योग का असली प्रयास नहीं कर पाए होंगे, जिसके वे असली हकदार थे। इसका मतलब है कि रूपकों का यथार्थ विश्लेषण भी जरूरी है आजकल। आजकल अधिकांश लोग बुद्धिजीवी और सम्पन्न हैं। उनके पास पर्याप्त समय और संसाधन हैं कि वे आराम से मनोलोक की सैर कर सकें। फिर यह लोगों की योग्यता और पसंद पर निर्भर है कि क्या वे पौराणिक बातों को भौतिक रूप में अपनाएं, या सूक्ष्म आध्यात्मिक रूप में। उदाहरण के लिए यज्ञ का मतलब चक्र पर साँसों की सहायता से कुंडलिनी ध्यान है। यज्ञ की वायु साँसों का प्रतीक है, यज्ञकुंड चक्र का, और उसमें धधक रही अग्नि कुंडलिनी का। लोगों ने उसे भौतिक समझकर भौतिक यज्ञ-हवन का प्रचलन शुरु कर दिया। हजारों किलोग्राम देसी घी, तिल आदि यज्ञ की बलि चढ़ने लगा। यहाँ किसी प्रथा की आलोचना नहीं हो रही है, अपितु तथ्यात्मक वर्णन हो रहा है। यज्ञ की कीमती सामग्रियां बहुत अल्प मात्रा में मात्र धार्मिक औपचारिकता को पूरा करने के लिए डाली जा सकती हैं। आज जनसंख्या विस्फोट के कारण ही ऐसी बात होती है, पहले ऐसा नहीं होता था। उस समय ऐसी कोई खाद्य पदार्थों की समस्या नहीं थी, क्योंकि जनसंख्या कम थी, और अर्थव्यवस्था कृषिप्रधान होती थी। वैसे यज्ञ से लाभ बहुत मिलता है। मैं जब यज्ञ करता हूँ, तो मुझे अपनी कुंडलिनी बहुत तेज चमकती हुई महसूस होती है, यज्ञकुंड की अग्नि के रूप में। सम्भवतः वही कुंडलिनी यज्ञ देवता है, या भगवान विष्णु है, या अग्निदेवता है, जो यज्ञ का फल प्रदान करता है। भगवान विष्णु लोकपालक है, कुंडलिनी भी लोकपालक है। दोनों ही अद्वैत भाव की सहायता से सभी लोकों का पालन करते हैं। जैसा कि मैंने ऊपर समझाया है। इसलिए शास्त्रों में भगवान विष्णु अर्थात कुंडलिनी को यज्ञ का भोक्ता अर्थात कुंडलिनी योग का लाभार्थी कहा जाता है। यज्ञ से माइक्रोकोस्मिक ऑर्बिट में भी वह शानदार ढंग से घूमती है। कईयों के मन में प्रश्न उठता होगा कि अद्वैत भाव के दौरान कुंडलिनी मन में क्यों प्रकट होने लगती है। हो सकता है कि मैंने इसको पहले भी स्पष्ट किया होगा, क्योंकि मैं इतना ज्यादा लिखता हूँ कि मुझे भी कई बार याद नहीं रहता कि क्या लिख दिया है, और क्या नहीं। दरअसल असली अद्वैत भाव के दौरान मस्तिष्क के सहस्रार में बहुत ऊर्जा होती है, पर सबकुछ एकजैसा लगने के कारण उससे मन में कोई विशेष चित्र या विचार नहीं बनता। इसलिए उपलब्ध ऊर्जा का लाभ उठाने के लिए सबसे प्रिय या

सबसे अभ्यस्त चित्र अर्थात कुंडलिनी चित्र अनायास ही मन में प्रकट होने लगता है। वस्तुओं को भेदभाव से अनुभव करने वाला आज्ञा चक्र है। इसीलिए कहते हैं कि जब जागरण की झलक या तीव्र अद्वैतभावना खत्म हो जाती है, तो कुंडलिनी ऊर्जा सहस्रार से आज्ञा चक्र को उतर जाती है। यिन-यांग की एकजुटता के समय मूलाधार चक्र क्रियाशील हो जाता है, क्योंकि उससे यौन क्रीड़ा का स्मरण हो आता है। मूलाधार और सहस्रार चक्र आपस में सीधे जुड़े होते हैं, इसलिए मूलाधार में ऊर्जा बढ़ने से सहस्रार में खुद ही ऊर्जा बढ़ने लगती है। जैसे सहस्रार में ऊर्जा जाने से कुंडलिनी का ध्यान खुद होने लगता है, उसी तरह कुंडलिनी चित्र के ध्यान से सहस्रार में खुद ही ऊर्जा बढ़ने लगती है, क्योंकि हरेक अनुभूति सहस्रार में ही होती है, पर आदमी के मानसिक ऊर्जा स्तर के अनुसार विभिन्न चक्रों पर प्रेषित कर दी जाती है। यही कुंडलिनी योग का सिद्धांत भी है। क्योंकि कुंडलिनी मस्तिष्क की ऊर्जा को खाने लगती है, इसलिए मस्तिष्क की ऊर्जा को पूरा करने के लिए खुद ही मूलाधार से ऊर्जा ऊपर चढ़ने लगती है। वह ऊर्जा सहस्रार को ही जाती है, आज्ञा चक्र को नहीं। ऐसा इसलिए, क्योंकि एकमात्र या एकाकी कुंडलिनी का ध्यान अद्वैत का प्रतीक है। अद्वैत का शाब्दिक अर्थ भी एक ही होता है। मन्दिर आदि में कुंडलिनी सहस्रार में रहती है, क्योंकि वहाँ अद्वैतमयी वातावरण होता है। पर यदि मन में दुनियादारी के रंगबिरंगे चित्रों की भरमार हो, तब भी मस्तिष्क को ऊर्जा देने वाला तो मूलाधार ही है, पर तब वह ऊर्जा सहस्रार को न जाकर आज्ञा चक्र को जाती है। मूलाधार और आज्ञा चक्र भी आपस में सीधे जुड़े हुए होते हैं। अद्वैतभाव के ध्यान से ऊर्जा सीधा सहस्रार अर्थात कुंडलिनी को जाती है, पर द्वैतभाव के ध्यान से आज्ञा चक्र को जाती है। इसीलिए तीखा व चालाकी से सोचने वाले लोग आंखों को भींचते जैसे रहते हैं, क्योंकि आज्ञाचक्र आँखों के बीच में बताया जाता है। अब यदि नशे या हिंसक आचरण से या अनुचित मांसाहार से या थकान आदि से मस्तिष्क में ऊर्जा की कमी हो, तब भी अद्वैत जैसा महसूस होता है, क्योंकि मन में कोई विचार नहीं बन रहे होते हैं। अवसाद या अंधेरा जैसा महसूस होता है। इसमें कुंडलिनी को देने के लिए ऊर्जा नहीं होती, इसलिए प्रयास करने पर कुंडलिनी चित्र मन में तो आ सकता है, पर बहुत कम चमक या ऊर्जा के साथ। इसलिए वह नीचे के कम ऊर्जा वाले चक्रों को चला जाता है। इसे ही हम कहते हैं कि बुरे काम से आदमी का पतन हो गया। हालाँकि योगसाधना के अभ्यास से वह जल्दी ही ऊपर उठने लगती है, और कुछ दिनों में सहस्रार में पहुंच जाती है। इस बार वह वहाँ पहले से भी ज्यादा चमकती है। यह ऐसे ही है जैसे कोई कूदने का बारबार अभ्यास करके बहुत ऊंचा कूदने लगता है। इसको कहते हैं कि फलां आदमी फिर ऊपर उठ गया है। दुनियादारी में यह उठने-गिरने का खेल लगातार चलता रहता है। सम्भवतः पँचमकारों वाले तांत्रिक योग का मूल सिद्धांत भी कुंडलिनी की यही उछलकूद है। बीच-बीच में भिन्न-भिन्न लोगों में कुंडलिनी का यह अस्थायी चढ़ना-उतरना चलता रहता है। पर एक अधिक स्थायी तौर का समष्टि कुंडलिनी-गमन भी होता है। इसमें एक समाज के सभी लोगों की कुंडलिनी एकसाथ चलकर किसी चक्र पर स्थित हो जाती है, और फिर वहां लम्बे समय तक बनी रहती है। उदाहरण के लिए, भौतिक व सामाजिक सुख सुविधाओं के विकास के दौरान लोगों की सामूहिक कुंडलिनी आज्ञाचक्र पर होती है। विकास का चरम छू लेने के बाद भी कुछ समय वहाँ बनी रहती है, और फिर सहस्रार को जाने लगती है। इस दौर में बहुत से लोगों को जागृति मिलने लगती है, और लोगों की रुचि भौतिक विज्ञान से हटकर आध्यात्मिक विज्ञान की तरफ स्थानांतरित होने लगती है। लोग देवता, प्रकृति और ईश्वर के प्रति वफादार होने लगते हैं। ऐसे में स्वाभाविक है कि प्रकृति को नुकसान पहुंचाने वाली अति भौतिकता नष्ट होने लगती है। लोगों को यह आधुनिक व्यवस्था का पतन लगता है। अक्सर कहा भी जाता है कि विकास का दौर पूरा होने के बाद पतन का दौर शुरु होता है। पर यह पतन नहीं बल्कि व्यवस्था का आध्यात्मिक रूपांतरण हो रहा होता है। इसको ठीक से न समझने से ही इसके प्रति असहनशीलता से युद्ध, लूटपाट आदि घटनाएँ हो सकती हैं, यह अलग बात है। पर यदि इस रूपांतरण को ढंग से संभाला जाए, तो असली आध्यात्मिक विकास का युग यहीं से प्रारंभ होता है। इसीको युग परिवर्तन कहते हैं, जैसे कि कलियुग के बाद सतयुग का आना। मुझे लगता है कि विश्व आज इसी सामूहिक रूपांतरण के दौर से गुजर रहा है। यदि अकेले आदमी के रूपांतरण को ढंग से न संभाला जाए, तो वह अवसाद में जाकर कुछ भी गलत कदम उठा

सकता है। इसी तरह, यदि पूरे विश्व या उसके अंतर्गत किसी देश या समाज के रूपांतरण को ढंग से न संभाला जाए, वह भी सामूहिक अवसाद में जाकर युद्धादि के रूप में कुछ भी गलत कदम उठा सकता है। वैसे आजकल देश आदि छोटे समाज के भी बहुत ज्यादा मायने हैं, क्योंकि दुनिया के सभी देश एकदूसरे पर निर्भर होने से एकदूसरे से जुड़े हुए हैं। एक देश की हलचल पूरे विश्व में उथलपुथल मचा सकती है। विश्व आज उच्चतर आत्मजागृति की ओर रूपांतरित हो रहा है। यह रूपांतरण अच्छी तरह से निर्देशित और सुखद रफ्तार से होना चाहिए, एकदम या झटके से नहीं। इसलिए इस रूपांतरण के जोखिम भरे दौर में अधिक से अधिक आध्यात्मिक लेखकों की जरूरत है, जो पूरी दुनिया को वैज्ञानिक ढंग से अध्यात्म समझाए, क्योंकि आज के लोगों की सोच वैज्ञानिक है, और उन्हें वैज्ञानिक ढंग से ही कुछ समझाया जा सकता है।

कुंडलिनी खोने से उत्पन्न पार्वती का कोप और रशियन सत्ताधीश का कोप~ एक तुलनात्मक मनोवैज्ञानिक अध्ययन

दोस्तों, कई पौराणिक कथाओं को पूरी तरह से डिकोड नहीं किया जा सकता। इसलिए वहां अंदाजा लगाना पड़ता है। समथिंग इज बैटर देन नथिंग। हल्की शुरुआत से ये कथाएं भी बाद में डिकोड हो जाती हैं। ऐसी ही रहस्यमयी कथा गणेश देव को लेकर है। मुझे लगता है कि गणेश पार्वती देवी का कुंडलिनी पुरुष है। शिव के कुंडलिनी पुरुष के सहारे रहते हुए देवी पार्वती ऊब जैसी गई थीं। वे अपने को शिव के ऊपर निर्भर सा और परतन्त्र सा समझने लग गई थीं। खासकर उन्हें उनकी सहेलियों ने भी भड़काया था। इसीलिए देवी पार्वती कहती हैं कि वे शिवगणों की सुरक्षा के अंतर्गत रहते हुए एक पराधीन की तरह रह रही थीं। उन्होंने निश्चय किया कि अब वे अपने लिए एक समर्पित गण पैदा करेंगी। एकबार वे निर्वस्त्र होकर स्नान कर रही थीं, पर भगवान शिव द्वारपाल नन्दी को डांटकर अंदर घुस गए, जिससे वे शर्मिंदा हो गईं। इसलिए उन्होंने अपने शरीर की मैल से सर्वांगसुन्दर और निर्दोष गणेश को पैदा किया। मैल को भी रज कहते हैं, और वीर्य के समकक्ष योनिद्रव को भी। सम्भवतः देव गणेश देवी पार्वती की यौन ऊर्जा के रूपांतरण से निर्मित मानसिक पुरुष हैं, जैसे भगवान कार्तिकेय भगवान शिव की यौन ऊर्जा से निर्मित मानसिक कुंडलिनी पुरुष हैं। पुत्र इसलिए क्योंकि बना तो योनि द्रव से ही सामान्य पुत्र की तरह, बेशक गर्भ में न बनकर मस्तिष्क या मन में बना। इसी वजह से तो यौनतन्त्र के अभ्यास से स्त्री में मासिक धर्म के द्रव का स्राव या रज का स्राव बहुत कम या शून्य भी हो जाता है। इससे स्त्री का कमजोरी से भी बचाव हो जाता है। इसी रज या शरीर के मैल से ही उसकी कुंडलिनी विकसित होती है। यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना उचित रहेगा कि हमारे लिए देवी पार्वती पूजनीया हैं, सम्माननीया हैं। हम उनके बारे में सीधे तौर पर कुछ नहीं कह सकते। हम तो केवल देवी पार्वती के जैसे स्वभाव वाले मनुष्यों के बारे में बात कर रहे हैं। क्योंकि हर जगह तो ऐसा नहीं लिखा जा सकता, "देवी पार्वती के जैसे स्वभाव वाला मनुष्य", क्योंकि इससे बिना जरूरत के लेखन का विस्तार बढ़ जाएगा, और साथ में लोग भ्रमित होकर समझ नहीं पाएंगे। इसलिए मजबूरी में संक्षेप के लिए देवी पार्वती या सिर्फ पार्वती लिखना पड़ता है। एक प्रकार से हम व्यक्तित्व या स्वभाव का वर्णन करते हैं, किसी देव विशेष या व्यक्ति विशेष का नहीं। इसी तरह भगवान शिव आदि सभी देवी-देवताओं के बारे में भी समझना चाहिए। आशा और विश्वास है कि आम जनमानस और देवी-देवता इसे अन्यथा नहीं लेंगे। पार्वती ने गणेश को एक लाठी देकर निर्देश दिया कि कोई भी उसकी आज्ञा के बिना उसके घर के अंदर प्रविष्ट न होने पाए। पार्वती दरअसल जीवात्मा है। सहस्रार उसका घर है। गणेश को घर के बाहर खड़े करने का मतलब है, हरसमय कुंडलिनी के ध्यान में मग्न रहना। इससे कोई और चीज ध्यान में आ ही नहीं सकती, मतलब अपनी मर्जी से घर के अंदर प्रविष्ट नहीं हो सकती। जब जीवात्मा चाहेगा और कुंडलिनी से अपना ध्यान हटाएगा, तभी दूसरी चीज ध्यान रूपी घर में आ पाएगी। इससे पहले उसके मन में कुंडलिनी नहीं थी। इसलिए उसे न चाहते हुए भी शिव को और उसकी दुनियादारी को ध्यान-गृह में आने देना पड़ता था। नहाते समय वह नग्न थी, अर्थात आत्मा की गहराई के अंतरंग विचारों में खोई हुई थी। यह उनके लिए अच्छा जवाब है, जो यह गलत धारणा रखते हैं कि तन्त्र में स्त्री को पुरुष से निम्नतर समझा जाता है। दरअसल तन्त्र में पुरुष और स्त्री बराबर हैं, और दोनों के लिए समान प्रकार की साधनाएं बताई गई हैं। एकबार नन्दी को गणेश ने द्वार पर रोक दिया। इससे हैरान होकर शिव ने अपने नन्दी आदि गणों को बारी-2 से पार्वती के घर में प्रवेश करने को कहा, पर गणेश बालक ने अपनी लाठी से सबकी पिटाई कर दी। मतलब कि कुंडलिनी बालक की तरह कोमल होती है, जिसके पास

जीवात्मा की रक्षा करने के लिए विशेष हथियार नहीं होते, पर लाठी को दर्शाता हुआ एक स्नेहभरा भय होता है। नंदी आदि गण यहाँ शिव के विचार हैं, जो शिव की आत्मा को पार्वती की आत्मा से मिलाने से पहले उससे अपना परिचय करवाना चाहते हैं। दुनिया में अक्सर ऐसा ही होता है। विचारों के माध्यम से ही लोगों का एकदूसरे से हार्दिक मिलन सम्भव हो पाता है। गणेश द्वारा लाठी से गणों को डराने या पीटने का मतलब है कि पार्वती अर्थात जीवात्मा बाहर से आ रहे विचारों की तरफ ध्यान न देकर कुंडलिनी पर ही ध्यान जमा कर रखती है। न तो विचारों का स्वागत करना है, और न ही उन्हें भगाना है। यही प्यार से भरा हुआ भय बना कर रखना है। यही विचारों या दुनियादारी के प्रति साक्षीभाव बना कर रखना है। यही विपासना है, विपश्यना है। गणेश द्वारा बारी-बारी से आए सभी देवताओं व गणों को हराना इसी बात को दर्शाता है कि पार्वती की कुंडलिनी शिवजी द्वारा प्रेषित किए गए सभी विचारों व भावनाओं से अप्रभावित रहती है। फिर सभी देवता इसको शिव के अपमान और उससे उत्पन्न जगहँसाई के रूप में लेते हैं। इसलिए वे सभी एक युद्धनीति बनाकर मिलकर लड़ते हैं, और धोखे से गणेश का वध कर देते हैं। मतलब कि शिव पार्वती को दुनियादारी में इतना उलझा देते हैं कि वह कुंडलिनी को भूल जाती है। इससे पार्वती अपार क्रोध से भरकर काली बन जाती है, और सृष्टि को नष्ट करने के लिए तैयार हो जाती है। मतलब कि मन के अखण्ड कुंडलिनी चित्र के नष्ट होने से पार्वती क्रोध से भर जाती है, और घुप्प अंधेरे में डूब जाती है। यह ऐसे ही है जैसे किसी की अतिप्रिय वस्तु गुम हो जाए, या उसे उसके खो जाने का डर सता जाए, और वह उसके बिना अंधा जैसा हो जाए। यह बच्चे के खिलौने के गम होने के जैसा ही है। ऐसे में आदमी कुछ भी गलत काम कर सकता है, यदि उसे सांत्वना देकर संभाला न जाए। रशियन सत्ताशीर्ष को क्या कहीं ऐसा ही सदमा तो नहीं लगा है। ऐसे में आदमी दुनिया को भी नष्ट कर सकता है, और खुद को भी। क्योंकि शरीर में समस्त ब्रह्मांड बसा है, इसीलिए सम्भवतः पार्वती के द्वारा आत्महत्या के प्रयास को ही सृष्टि के विनाश का प्रयास कहा गया हो। काली नाम का मतलब ही काला या अंधेरा होता है। फिर वह काली बनी पार्वती कहती है कि यदि गणेश को पुनर्जीवित कर दोगे, तो वह प्रसन्न हो जाएगी। बात स्पष्ट है कि खोई हुई प्रिय वस्तु या कुंडलिनी को प्राप्त करके ही आदमी अपनी पूर्व की प्रसन्न अवस्था को प्राप्त करता है। यह तो अब रशियन सत्ताधीश से पूछना चाहिए कि उनकी क्या प्रिय वस्तु खो गई है, जिसके लिए वे परमाणु बटन की तरफ हाथ बढ़ा कर पूरी धरती को दांव पर लगा रहे हैं, और जिसे पाकर वे प्रसन्न हो जाएंगे। मैंने पिछली पोस्ट में भी कहा था कि आज के उन्नत युग की कुंडलिनी आज्ञा चक्र में अटकी हुई है। कुंडलिनी का स्वभाव ही गति करना होता है। वह एक स्थान पर ज्यादा समय नहीं रह सकती। उसका अगला और उन्नत पड़ाव सहस्रार चक्र है। पर वहाँ तक कुंडलिनी को उठाने के लिए बहुत अधिक ऊर्जा की आवश्यकता है, जो यौनतन्त्र से ही मिल सकती है। इसीलिए ईश्वरीय प्रेरणा से मैं तन्त्र के बारे में लिखता हूँ। साथ में, भौतिक दुनियादारी को कम करने की भी जरूरत है, ताकि उससे बचाई गई ऊर्जा कुंडलिनी को ऊपर चढ़ाने के काम आ सके। यह युद्ध का विनाश दुनियादारी को कम करने का ही एक अवचेतनात्मक प्रयास है, ताकि कुंडलिनी की ऊर्जा की जरूरत पूरी हो सके। युद्ध के अन्य कारण गिनाए जाना तो बस बहाने मात्र हैं। एक परमाणु हथियार सम्पन्न और क्षेत्रफल के लिहाज से सबसे बड़े देश को भला किससे भय हो सकता है। युद्ध का असली और एकमात्र कारण तो उस बेशकीमती ऊर्जा की कमी है, जिससे आदमी मानवता और आध्यात्मिकता के पथ पर आगे बढ़ता है। समझदार को समझाने के लिए युद्ध का भय दिखाना ही काफी है, नासमझ युद्ध से भी नहीं समझेगा, सिर्फ नुकसान ही होगा। ज्यादा से ज्यादा हल्की सी युद्ध शक्ति दिखा देते, ताकि शत्रु को संभलने और सुधरने का मौका मिलता। फिर दुनिया भी यौद्धा की कूटनीति और युद्धनीति की तारीफ करती। यह क्या कि पूरे ही राष्ट्र को नरक बनाने पर तुले हुए हो। एक तरफ गरीबों को सिर ढकने के लिए छत नहीं मिलती, वे रात भर खुले में ठिठुरते हैं, दूसरी तरफ आप आलीशान भवनों को जमींदोज करते जा रहे हो। सोचो, कितना खून पसीना लगा होगा उन्हें बनाने में। उस प्राण ऊर्जा की कितनी बर्बादी हुई होगी उन्हें बनाने में, जिससे कुंडलिनी जागृत हो सकती थी। कुंडलिनी की ऊर्जा की जरुरत पूरी करने का यह अवचेतनात्मक प्रयास अनियंत्रित और अमानवीय है, अनियंत्रित परमाणु ऊर्जा की तरह। इससे क्या

है कि कुंडलिनी ऊपर चढ़ने की बजाय नीचे उतर रही है, अपने सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त किए बिना ही। इसलिए दुनियादारी या जीने के तरीकों में बदलाव धीरे-धीरे व मानवीय होना चाहिए, एकदम से व अमानवीय नहीं। मैं यहाँ किसी एक राष्ट्र पर आक्षेप नहीं लगा रहा हूँ। सभी राष्ट्र युद्धपिपासु की तरह व्यवहार करते हैं। दुनिया में सभी देशों के द्वारा ऐसी परिस्थितियां क्यों बनाई जाती हैं, जो किसी देश को मजबूरन युद्ध की तरफ धकेल दे। अधिकांश देश हथियारों का जखीरा इकट्ठा करने में लगे रहते हैं। हथियारों के व्यापार से पैसा कमाना चाहते हैं। साम्राज्यवाद का सपना पाल कर रखते हैं। इसकी सबसे अच्छी दवाई कुंडलिनी ही है। कुण्डलिनी की सहायता से संपूर्ण सृष्टि अपने अंदर दिखाई देने लगती है। आदमी अपने में ही संतुष्ट रहने लगता है, चाहे वह कैसा भी हो, और कैसी भी परिस्थिति में क्यों न हो। जब किसी राष्ट्राध्यक्ष को अपने अंदर ही सम्पूर्ण ब्रह्मांड महसूस होगा, तब वह भला क्यों दूसरों की जमीन लूटना चाहेगा। वह अपनी समस्या का हल अपने अंदर ही खोजेगा। फिर उसे अधिकांश मामलों में हथियारों की जरूरत भी नहीं पड़ेगी, और युद्ध की भी नहीं। मैं दुनिया में सिर्फ एक ही देश को जानता हूँ, जिसने भरपूर उकसाओं के बाद भी कभी युद्ध की शुरुआत नहीं की, और न ही किसी के ऊपर आक्रमण किया। वह देश भारत है। सम्भवतः यह भारत में कुण्डलिनी योग और उसपर आधारित धर्म से ही सम्भव हुआ हो। इसलिए समस्त विश्व को भारत से शिक्षा लेनी चाहिए, यदि शांतिपूर्ण विश्व की स्थापना करनी है। मैं किसी की झूठी बड़ाई नहीं कर रहा हूँ। न ही मैं युद्ध के इलावा अन्य पक्षों को देख रहा हूँ। सत्य सत्य है, जिसे कोई झुठला नहीं सकता। खैर, शिव ने अपने गणों को सुबह के समय पूर्व दिशा में भेजा, और कहा कि जो भी जीव सबसे पहले मिले, उसका सिर काट के ले आएं, और गणेश के धड़ से जोड़ दें। मतलब कि कुछ भी सट्टा-बट्टा करना पड़े, पर पार्वती की खोई कुंडलिनी किसी तरह वापिस मिल जाए। गणों को सबसे पहले एक हाथी का बच्चा मिला। उन्होंने शिव की सहायता से उसका सिर गणेश के धड़ से जोड़कर गणेश को पुनर्जीवित कर दिया। उससे देवी पार्वती संतुष्ट हो गई, जिससे उनके कोप से पूरी दुनिया बाल-बाल बच गई।

कुंडलिनी आधारित केस स्टडी में रूस-यूक्रेन युद्ध~शरीर-चक्रों पर जन्म-मृत्यु का चक्र

मित्रों, तीसरी आँख आज्ञा चक्र के समीप ही खुलती है। यही शिव का क्रोध से भरा हुआ नेत्र भी है, जो विध्वंस कराता है। मतलब कि अगर आज्ञा चक्र पर कुंडलिनी को ढंग से न संभाला जाए तो वह विध्वंस भी करवा सकती है। यही मैंने पिछली पोस्ट में समझाने की कोशिश की है कि यदि बुद्धि पर ज्ञान का अंकुश न रहे, तो कैसे वह विध्वंस भी करा सकती है। मशहूर वैज्ञानिक स्टीफेंस हॉकिंग भी यही कहते थे कि आज मानव सभ्यता विकास और विज्ञान के शीर्ष पर है। यदि इस समय विनाशकारी युद्धों से बचा जाए, तो ही धरती स्वर्णिम और अलौकिक अवस्था में पहुंच पाएगी, अन्यथा मंगल ग्रह जैसा हाल हो सकता है धरती का। साथ में, मैं भगवान गणेश को कुंडलिनी-रूप बता रहा था। यहाँ यह गौर करने वाली बात है कि शिव पुराण में पहले यह लिखा है कि देव कार्तिकेय के जन्म के बाद पार्वती देवी ने शिव के साथ संभोग से भगवान गणेश को पैदा किया। फिर आगे के अध्याय में यह लिखा है कि पार्वती ने अपने शरीर के मैल से पुत्र गणेश को पैदा किया। तो जो संभोग से भी बना हो, और उसी के साथ शरीर के मैल से भी बना हो, वह तन्त्र योग से निर्मित मानसिक कुंडलिनी-पुरुष ही हो सकता है।

जन्म और मृत्यु के चक्र इसी मानव शरीर में और इसी जीवन में हैं, बाहर की छोड़ो। कुंडलिनी के मूलाधार चक्र पर होने पर पशुवत व अज्ञान-आसक्ति से भरा जीवन होता है। यह कीट-पतंगे आदि निम्न जीव का जीवन होता है। आदमी के थोड़ी तरक्की करने पर कुंडलिनी स्वाधिष्ठान चक्र तक चढ़ जाती है। वह एक उच्चतर चेतना का पशु जीवन होता है, जैसे कि मुर्गे, बकरे आदि का जीवन। ये जीव अधिकांश समय सम्भोगसुख में ही रमे रहते हैं। और अधिक तरक्की करने पर कुंडलिनी मणिपुर चक्र तक चढ़ जाती है। मणिपुर चक्र नाभि में है, जो खाने-पीने व पाचन से सम्बंधित है। यह ऐसे उच्चतर पशु का जीवन होता है, जो हमेशा खाने में ही व्यस्त रहता है। उदाहरण के लिए, घास-पत्ते खाने वाले जानवर। वे चौबीसों घण्टे कुछ न कुछ खाते ही रहते हैं। और अधिक विकास करने पर कुंडलिनी अनाहत अर्थात हृदय चक्र पर पहुंचती है। यह स्वामिभक्त और भावनामय जैसे प्राणी का जीवन होता है। उदाहरण के लिए कुत्ता, हाथी, डॉल्फिन आदि। उसके ऊपर चढ़ने पर कुंडलिनी विशुद्धि चक्र में पहुंचती है। यह मीठी आवाज वाले जानवर के जैसा जीवन होता है। उदाहरण के लिए, कोयल। फिर कुंडलिनी आज्ञा चक्र तक उठ जाती है। यह बुद्धिमान प्राणी के जैसा जीवन होता है। जैसे प्राइमेट, मनुष्य आदि। उसके ऊपर कुंडलिनी को चढ़ाने के लिए बहुत अधिक ऊर्जा की जरूरत होती है। विरले लोग ही तांत्रिक साधनाओं से व एकांत के योगाभ्यास से कुंडलिनी को सहस्रार तक ऊपर उठा पाते हैं। उनमें से भी बहुत कम लोग ही काफी लंबे समय तक कुंडलिनी को सहस्रार में रोककर रख पाते हैं। उनमें से भी विरले लोग ही सहस्रार में कुंडलिनी को जागृत कर पाते हैं। उनमें भी बहुत कम लोग ही जीवनभर कुंडलिनी को सहस्रार में क्रियाशील रख पाते हैं। यहीं जीवनयात्रा समाप्त होती है। यही ईश्वर की प्राप्ति है। वहां से फिर आदमी दुबारा नीचे नहीं गिरता। यदि गिरता हुआ दिखता है, तो केवल लोकव्यवहार के लिए। असल में वो हमेशा सहस्रार चक्र में ही स्थित रहता है। सम्भवतः इसे ही ब्रह्मलोक कहा गया है। ब्रह्मा अर्थात मन के साथ वह ब्रह्मा की पूर्ण आयु पर्यंत अर्थात मनुष्य की पूर्ण आयु पर्यंत बना रहता है, और अंत में ब्रह्मा के साथ ही मुक्त हो जाता है। अधिकांश लोग तो आज्ञाचक्र से ऊपर जा ही नहीं पाते, और वहां से नीचे गिरने लगते हैं। बारी-बारी से सभी चक्रों से होते हुए वे पुनः मूलाधार रूपी अंधकूप में पहुंच जाते हैं। अर्थात वे एक-एक कदम नीचे की चेतना से होते हुए सबसे नीचे पहुंच जाते हैं। वहां से उनका विकास पुनः शुरु होता है, और वे धीरे-धीरे ऊपर उठने लगते हैं। मनुष्य योनि को पाकर, और परमात्मा को पाए बिना ही फिर नीचे गिरने लगते हैं, विभिन्न जीव-योनियों का रूप प्राप्त करते हुए। इस तरह से यह जन्म-मरण का चक्र बारम्बार चलता रहता है। आज दुनिया

भी इसी अंतिम मोड़ पर स्थित है, जहाँ से यह सत्ययुग के लिए अंतिम छलांग न लगा पा सकने के कारण नीचे गिरना शुरु हो गई है, ऐसा लगता है। वैसे अभी देर नहीं हुई है, संभलने के लिए वक्त है। अभी हाल ही में छिड़े यूक्रेन-रूस युद्ध को ही लें। आदमी अपने बौद्धिक और भौतिक विकास के चरम पर था। ईराक-सीरिया आदि के ऊपर थोपी गई लड़ाईयां तो जैसे इतिहास में दफन हो रही थीं। धार्मिक आतंकवाद के ऊपर भी चारों ओर से शिकंजा कसा जा रहा था। मतलब कि दुनिया की कुंडलिनी आज्ञाचक्र पर थी। एक प्रकार से दुनिया आदमी बनी थी। अधिक से अधिक कुंडलिनी घटनाएं और जागृतियाँ देखने-सुनने में आ रही थीं। दुनिया अच्छे से सत्ययुग में रूपांतरित हो रही थी। बड़े-बड़े भौतिक वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक वैज्ञानिक और लेखक इसमें मदद कर रहे थे। आदमी के पास भरपूर संसाधन इकट्ठे हो गए थे। इससे आदमी के पास पर्याप्त अतिरिक्त समय था, जिससे वह कुंडलिनी योगसाधना करके कुंडलिनी को मुक्ति की अंतिम छलांग के लिए पर्याप्त मुक्तिगामी वेग अर्थात एस्केप विलोसिटी देने के लिए अग्रसर था। फालतू दुनियादारी को घटा कर और जटिल जीवनचर्या को सरल बना कर वह ऊर्जा का संरक्षण और संचय कर रहा था, ताकि वह ऊर्जा कुंडलिनी को दी जा सकती। सबकुछ स्मूथली और शांतिपूर्ण ढंग से हो रहा था। पर तभी इस युद्ध ने इस विकासात्मक प्रक्रिया पर जैसे एक प्रश्नचिन्ह सा लगा दिया हो। आदमी की कुंडलिनी-ऊर्जा सुरक्षा-भावना या सरवाइवल इंस्टिंक्ट को पूरा करने के लिए फिर से नीचे उतरने लगी। आदमी फिर से आदिम युग में चला गया। वह फिर से जंगली बन गया। उसे अब पेट भरने से ही मतलब रह गया था। किस्मत वाला ही तन भी अच्छी तरह से ढक पा रहा था। वीआईपी किस्म के जंगली को ही सिर के ऊपर छत नसीब हो रही थी। आदमी की सारी ऊर्जा रोटी, कपड़ा और मकान का बंदोबस्त करने में ही खर्च हो रही थी। अध्यात्म, योग, मुक्ति जैसे शब्द बेगाने से लगने लग गए थे। आदमी की सारी ऊर्जा जीवनयापन के लिए संघर्षों से मुकाबला करने में ख़र्च हो रही थी। सम्भोग सुख को प्राप्त करने के लिए भी ऊर्जा मुश्किल से उपलब्ध होती थी, संभोग योग तो दूर की बात रही। संघर्षों के चलते मन इतना चंचल हो गया था कि गम्भीर योगसाधना का औचित्य नहीं रह गया था। क्योंकि योगसाधना से मन स्थिर हो जाता था, पर स्थिर मन से संघर्षों से मुकाबला नहीं हो पाता था। क्योंकि मन को स्थिर और अद्वैतमयी करने के लिए अधिकांश ऊर्जा मस्तिष्क को चली जाती थी, इससे भुजाओं और टाँगों में ऊर्जा की कमी हो जाती थी, जिनसे कि दुनियादारी के अधिकांश भौतिक काम निपटाए जाते हैं। ऊर्जा की कमी को पूरा करने के लिए मांसाहार का प्रयोग बढ़ रहा था, जिससे चारों ओर पाप और जीवहिंसा का माहौल पैदा हो गया था। ऐसे युद्धों से पशुओं पर नाजायज अत्याचार बढ़ जाता है। कुछ अच्छे पारिवारिक संस्कारों वाले और अध्यात्म का ज्ञान रखने वाले तो तन्त्र के अनुसार माँस आदि पँचमकारों का सेवन करके अपना आध्यात्मिक विकास कर भी रहे थे। इससे तन्त्र विद्या का विकास भी हो रहा था। संघर्ष से लोगों का मानसिक तनाव इतना बढ़ गया था कि उसे दूर करने के लिए शराब का सहारा लिया जा रहा था। तांत्रिक किस्म के लोग तो इसके साथ योगाभ्यास करके भौतिक लाभ भी प्राप्त कर रहे थे, और आध्यात्मिक विकास भी। कुछ दुनियादारी में डूबे हुए लोग उनके योगाभ्यास की नकल करते हुए बिना ध्यान के योगासन करने लगे थे, शरीर को तोड़ने-मरोड़ने वाले भौतिक व्यायाम की तरह। उन्हें भी कुछ न कुछ लाभ तो मिल ही रहा था, और कुछ वर्षों के अभ्यास के बाद वे भी ध्यानयोगी अर्थात कुंडलिनी योगी बन पा रहे थे। आज जो चारों तरफ बैठक वाले ध्यानमयी कुंडलिनी योग का प्रचलन बढ़ रहा है, वह मानव सभ्यता के चरम के करीब पहुंचने से उपलब्ध अतिरिक्त प्राण ऊर्जा के कारण ही हो रहा है। क्योंकि ध्यान के लिए काफी प्राण ऊर्जा चाहिए होती है। प्राण ऊर्जा की कमी से तो सम्भोग योग जैसे शक्तिशाली योग से भी भरपूर फायदा नहीं उठाया जा सकता। यदि प्राणों की, आराम की, भ्रमण की, निद्रा की, हठ योगाभ्यास की, संतुलित जीवनचर्या की और पर्याप्त समय की कमी में जबरदस्ती व ज्यादा किया जाए, तो विभिन्न शारीरिक व मानसिक विकार भी पैदा हो सकते हैं, जैसे कि प्रोस्टेट ग्रंथि का बढ़ना, संक्रमण, अवसाद, तनाव, गैस्ट्रिक आदि व हो सकता है इसी तरह कुछ अन्य भी। सम्भवतः इसीलिए तन्त्र में लेउकोरहोइआ जैसे योनि-संक्रमण में यौन-योग को न करने की सलाह दी गई है। युद्ध-प्रभावित पतन के दौर में बच्चे और कुंडलिनी योगी सबसे ज्यादा दुष्प्रभावित होते हैं। जैसे बच्चों की

अधिकांश ऊर्जा शारिरिक व मानसिक विकास में खर्च हो रही होती है, ऐसे ही कुंडलिनी योगी की भी। दोनों में ही गजब का रूपांतरण चल रहा होता है। इसीलिए जागृति को दूसरा जन्म भी कहते हैं, उसके बाद ही आदमी द्विज या असली ब्राह्मण बनता है। द्विज का मतलब ही दूसरे जन्म वाला होता है। कुंडलिनी को निरंतर तन-मन में बनाए रखने के लिए भी काफी प्राण ऊर्जा खर्च होती रहती है। मैं रशियन हमले से डरे हुए एक बच्चे को सैंकड़ों किलोमीटर के सफर पर पलायन करते हुए देख रहा था। उसके अभिभावक युद्ध में मारे गए थे। उसका कोई नहीं था। वह मासूम बच्चा रोए जा रहा था, और अपने साथ एक बैग जैसा घसीटते हुए बड़ी मुश्किल से चल पा रहा था। वृद्ध लोग और महिलाएं भी इसी तरह ज्यादा दुष्प्रभावित होते हैं क्योंकि वे समाज के कमजोर अंग होते हैं। इसी तरह, जानवर भी बहुत ज्यादा दुष्प्रभावित होते हैं। पर ऐसे मामलों में उनकी कम ही गिनती होती है, हालांकि वे भी एक स्वस्थ समाज का महत्त्वपूर्ण हिस्सा होते हैं।

वैसे तो कई बार ऐसे युद्ध के लिए छोटे देश भी जिम्मेदार बन जाते हैं। उदाहरण के लिए पाकिस्तान को ही देख सकते है। इसने सीमापार आतंकवाद फैला कर आज तक हजारों निर्दोष लोगों की जान ले ली है। यह सिलसिला लगभग पचास वर्षों से ज्यादा समय से चला आ रहा है, पर उसकी नीति में आज भी कोई बदलाव नहीं दिखता। भारत ने हमेशा शांति बरतते हुए बड़े युद्ध को रोका है। यूएनओ ने भी उसकी ज्यादा मदद नहीं की है, उल्टा कई बार उसे ही कटघरे में खड़ा करने का प्रयास किया है। कभी जब यूएनओ ने मदद करने का हल्का सा प्रयास किया होगा, तो वह पाकिस्तान के अंतरराष्ट्रीय दुष्प्रचार के आगे फीका पड़ गया। मुझे तो समझ नहीं आता कि यूएनओ इतनी हल्की भूमिका क्यों निभाता है, ऐसे मामलों में। आज भी इसका रवैया ढीलाढाला ही लग रहा है। खैर, इसी युद्धोन्मादी जैसे काल में और उसके बाद भी कुछ अति व्यस्त लोग योग करने के लिए जरा भी समय नहीं निकाल पा रहे थे। उनमें से अच्छे संस्कारों वाले लोग काम को ही योग अर्थात पूजा की तरह अद्वैतभाव से करने की कोशिश कर रहे थे, मतलब कर्मयोग को अपना रहे थे। इसमें मदद के लिए शरीरविज्ञान दर्शन जैसे नए-नए दर्शनों की खोज हो रही थी, ताकि भौतिक उत्थान के साथ आध्यात्मिक उत्थान भी आसानी से मिलता रहता। ऐसे दर्शन लोकप्रिय हो रहे थे, क्योंकि वे नवीनता के साथ थे, जो पुराने गीता जैसे दर्शनों को नए रूप में प्रस्तुत करते थे। इससे दर्शन और साहित्य का तीव्र गति से विस्तार हो रहा था। कुछ पुराने शास्त्रों के शौकीन लोग गीता जैसे पुराने दर्शनों, शास्त्रों और पुराणों को दिनरात टटोलते रहते, ताकि कोई ज्ञान की किरण दिखाई देती। इस भीषण युद्ध के कारण विकास के चरम के करीब पहुँची हुई मानव सभ्यता उस सबसे निचले पायदान पर पहुंच गई थी, जहां से सैंकड़ों-हजारों सालों से विकास करती हुई वह वहाँ पहुँची थी। लगता है कि यह चक्र लगातार कई युगों से चला आ रहा था। चरम तक तो विरला ही पहुंचा होगा विकास, जैसे कोई विरला आदमी ही कुंडलिनी जागरण प्राप्त करता है। पर जैसे समुचित अभ्यास से सभी लोग कुंडलिनी जागरण प्राप्त कर सकते हैं, उसी तरह पूरी धरती भी सतयुग में प्रविष्ट हो सकती है। पर इसकी तरफ सावधानी से ध्यान नहीं दिया गया, और इसे हल्के में लिया गया। मुझे लगता है कि जिस समय पुराणों और आध्यात्मिक दर्शनों की रचना हुई, उस समय सतयुग था, खासकर प्राचीन भारत में। उसकी याद से ही हम संतोष प्राप्त कर सकते हैं, अब तो। युद्ध, लूटपाट और अराजकता से पैदा हुए भय, दर्द आदि से निकली चीख-पुकार के साथ कुंडलिनी विशुद्धि चक्र तक उतर गई। फिर दिल को लगने वाले भावनात्मक सदमों को संभालने के लिए अनाहत चक्र पर आ गई। कुछ ऊर्जा वहां से आत्मसुरक्षा के लिए भुजाओं को भी चली गई। ऐसी हाय-तौबा और मार-धाड़ के माहौल के कारण भूख बहुत ज्यादा बढ़ गई। शारिरिक संघर्ष भी बहुत करना पड़ा। इससे कुंडलिनी नाभि चक्र तक आ गई। गट्स नाभि में ही तो रहता है। फिर कुंडलिनी स्वाधिष्ठान चक्र पर आ गई। यह मुर्गे, बकरे आदि सैक्सुअल जीवों के रूप में दुनिया का जन्म है। वहाँ से वह मूलाधार को उतर जाती है। दुनिया कीड़ों-मकोड़ों के जैसी मूढ़ता से भर जाती है। फिर दुनिया के विकास का क्रम पुनः शुरु हो जाता है। कुंडलिनी बारी-बारी से सभी चक्रों से होते हुए ऊपर चढ़ती है। इस तरह से आदमी

युद्ध आदि अमानवीय हिंसाओं पर लगाम नहीं लगा पाता, जिससे दुनिया का जन्म-मरण का चक्कर इसी तरह चलता रहता है।

मुझे तो यूएनओ पर भी हसी आती है। किसी देश को वीटो पावर देने का मतलब है कि चाहे वह कुछ भी कर ले, उसे रोकने-टोकने वाला कोई नहीं है। तब यूएनओ का औचित्य ही क्या है। कम से कम जिस देश के खिलाफ प्रस्ताव हो, उसे तो अपने बचाव में खुद ही वीटो करने का अधिकार नहीं होना चाहिए, दूसरा कोई चाहे बेशक कर दे। यह क्या कि चोर भी मैं और सिपाही भी मैं। वैसे अगर वीटो का सदुपयोग किया जाए, तो इसके लाभ भी हैं। भारत शुरु से ही आतंकविरोधी अभियान में शामिल रहा है। या यूं कह सकते हैं कि इस अभियान की शुरुआत भारत ने ही की थी। अब तो विश्व के अधिकांश देश इस अभियान में शामिल होने लग गए हैं। उस समय भारत के इस अभियान के विरोध में दुष्प्रचार के प्रयोग से यूएनओ में उसके खिलाफ प्रस्ताव लाए जाते थे। पर सिर्फ एक-आध देश ही वीटो पावर का इस्तेमाल करके उन प्रस्तावों को गिरा दिया करते थे। कई बार उल्टा भी होता है, जब गलत काम करने वाले देश को एक वीटो पावर वाला देश इसलिए बचाता है, क्योंकि उसका उससे स्वार्थपूर्ण सम्बंध होता है। इसलिए मुझे तो लगता है कि सभा-निर्णय का वही पुराने जमाने से चला आ रहा तरीका ठीक है, जिसमें बहुमत देखा जाता है, जिस तरफ ज्यादा मत पड़ते हैं, उसी फैंसले को मान्य माना जाता है। मुझे लगता है कि सभा में बहुमत से किया गया निर्णय एकप्रकार से भगवान के निर्णय जैसा होता है। उसे भगवान भी देखता है, क्योंकि सबसे बड़ा सभापति भगवान ही है। इसीलिए शास्त्रों में अधिकांश स्थानों पर भगवान को सभापति की तरह दर्शाया गया है। एक बात और गौर करने लायक है। एक ताकतवर बच्चा एक कमजोर बच्चे को यह बोलते हुए पीट रहा है कि वह अपने बचाव के लिए किसी दूसरे ताकतवर लड़के के पास न जाए। इससे तो वह ज्यादा जाएगा। हाँ, अगर उससे प्यार का बर्ताव किया जाएगा, तो वह नहीं जाएगा। शुरु से यही होता आया है कि लड़ती आपस में दो महाशक्तियां हैं, औऱ खंडहर बनता है वह छोटा देश जिसके लिए वो लड़ रही होती हैं। लड़े सांड, और झाड़ का होए नाश। फिर ज्यादातर मामलों में वे महाशक्तियां उस छोटे देश के पुनर्निर्माण में सहयोग नहीं करतीं। पुनर्निर्माण के काम की कोशिश अधिकांशतः भारत जैसे कुछ विकासशील देश ही करते हैं, क्योंकि वे मानवता देखते है, धर्म, जाति, वर्ग आदि नहीं। फिर कहते हैं कि विकासशील देश विकसित नहीं होते। विकसित कैसे होंगे जब बड़े देश दुनिया को लड़ाइयों में ही उलझाते रहेंगे। अफगानिस्तान, सीरिया और इराक का उदाहरण सबके सामने है। मैंने इन्हीं प्रकार की अंतरराष्ट्रीय घटनाओं का वर्णन किसी दैवीय प्रेरणा से पुस्तक शरीरविज्ञान दर्शन में किया था। हालाँकि ये सबकुछ मैंने स्वास्थ्य विज्ञान के अनुसार शरीर में होता हुआ दिखाया था। वहाँ तो मैंने यहाँ तक लिखा था कि परमाणु युद्ध से पूरा देहदेश बर्बाद हो जाता है, अर्थात मर जाता है, जिसका पुनर्निर्माण के रूप में पुनर्जन्म होता है। यह विध्वंस तो शरीर के अंदर के सूक्ष्म देश का वर्णन था, भगवान करे कि बाहर के स्थूल देश में ऐसा कभी कुछ घटित न हो।

कुंडलिनी शक्ति गाड़ी है, तो संस्कार उसको दिशानिर्देश देने वाला ड्राइवर~द कश्मीर फाइल्स फिल्म का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

दोस्तों, इस हफ्ते मैंने बड़े पर्दे पर 'द कश्मीर फाइल्स' फिल्म देखी। यह पहली फ़िल्म देखी जो कि सच्ची घटनाओं पर हूबहू आधारित है। ज्यादातर ऐसी ही फिल्में बननी चाहिए, ताकि मनोरंजन के साथसाथ सामाजिक उत्थान भी हो सके। यह फ़िल्म सभी को देखनी चाहिए। इस फ़िल्म में धार्मिक कट्टरवाद और जेहादी बर्बरता का जीवंत चित्रण किया गया है। साथ में, मैं मेडिटेशन के लिए एक झील के पास भी गया। वैसे मैं रोजमर्रा के तनाव व उससे उत्पन्न थकान को दूर करने के लिए गया था, मेडिटेशन तो खुद ही हो गई। मैं पथरीली घास पर विभिन्न शारीरिक पोस्चरों या बनावटों के साथ लम्बे समय तक बैठे और लेटे रहकर झील को निहारता रहा। आती-जाती साँसों पर, उससे उत्पन्न शरीर की, मुख्यतः छाती व पेट की गति पर ध्यान देता रहा। मन के विचार आ-जा रहे थे। विविध भावनाएं उमड़ रही थीं, और विलीन हो रही थीं। मैं उन्हें साक्षीभाव से निहार रहा था, क्योंकि मेरा ध्यान तो साँसों के ऊपर भी बंटा हुआ था, और आसपास के अद्भुत कुदरती नजारों पर भी। सफेद पक्षी झील के ऊपर उड़ रहे थे। बीच-बीच में वे पानी की सतह पर जरा सी डुबकी लगाते, और कुछ चोंच से उठाकर उड़ जाते। सम्भवतः वे छोटी मछलियां थीं। बड़ी मछली के साथ कई बार कोई पक्षी असंतुलित जैसा होकर कलाबाजी सी भी दिखाता। एकबार तो एक पक्षी की चोंच से मछली नीचे गिर गई। वह तेजी से उसका पीछा करते हुए दुबारा से उसे पानी में से पकड़कर ऊपर ले आया और दूर उड़ गया। विद्वानों ने सच ही कहा है कि जीवो जीवस्य भोजनम। एक छोटी सी काली चिड़िया नजदीक ही पेड़ पर बैठ कर मीठी जुबान में चहक रही थी, और इधर-उधर व मेरी तरफ देखते हुए फुदक रही थी, जैसे कि मेरे स्वागत में कुछ सुना रही हो। मुझे उसमें अपनी कुंडलिनी एक घनिष्ठ मित्र की तरह नजर आई। मुझे आश्चर्य हुआ कि इतने छोटे जीव भी किस तरह जीवन और प्रकृति के प्रति आशान्वित और सकारात्मक होते हैं। वे भी अपनी जीवनयात्रा पर बेधड़क होके चले होते हैं। झील के पानी की तट से टकराने की हल्की आवाज को मैं अपने अंदर, अपनी आत्मा के अंदर महसूस करने लगा। चलो कुछ तो आत्मा की झलक याद आई। आजकल ऐसे प्राकृतिक स्थानों की भरमार है, जहाँ लोगों की भीड़ उमड़ी होती है। पर ऐसे निर्जन हालांकि सुंदर प्राकृतिक स्थल कम ही मिलते हैं। कई दूरदराज के लोग जब ऐसी जगहों को पहली बार देखते हैं, तो भावविभोर हो जाते हैं। कई तो शांति का भरपूर लुत्फ़ उठाने के लिए वहाँ टैंट लगा कर दिन-रात लगातार कई दिनों तक रहना चाहते हैं। हालांकि मैं तो थोड़ी ही देर में शांत, तनावमुक्त और स्वस्थ हो गया, जिससे डॉक्टर से अपॉइंटमेंट लेने का विचार ही छोड़ दिया। खैर मैं फिल्म द कश्मीर फाइल्स के बारे में बात कर रहा था। इसका एक सीन जो मुझे सबसे ज्यादा भावनात्मक लगा, वह है पुष्कर बने अनुपम खेर का दिल्ली की गर्मी में कश्मीर की बर्फ की ठंड महसूस करना। वह अपने पोते को हकीकत बता रहा होता है कि कैसे आजादी के नारे लगाते हुए जेहादी भीड़ ने उन्हें मारा और भगाया था, इसलिए उसे ऐसे लोगों के नारों के बहकावे में नहीं आना चाहिए। वह बूढ़ा होने के कारण उसे समझाते हुए थक जाता है, जिससे वह कांपने लगता है। काँपते हुए वह चारों तरफ नजर घुमाते हुए कश्मीरी भाषा में बड़ी भावपूर्ण आवाज में कहता है कि लगता है कि बारामुला में बर्फ पड़ गई है, अनन्तनाग में बर्फ पड़ गई है, आदि कुछ और ऊंची पहाड़ियों का नाम लेता है। फिर उसका पोता उसे प्यार व सहानुभूति के साथ गले लगाकर उसे स्थिर करता है। गहरे मनोभावों को व्यक्त करने का यह तरीका मुझे बहुत अच्छा लगा। कश्मीरी भाषा वैसे भी बहुत सुंदर, प्यारी और भावपूर्ण भाषा है। इस फ़िल्म के बारे में समीक्षाएं, चर्चाएं और लेख तो हर जगह विस्तार से मिल जाएंगे, क्योंकि आजकल हर जगह इसीका बोलबाला है। मैं तो इससे जुड़े हुए आधारभूत मनोवैज्ञानिक सिद्धांत पर प्रकाश डालूंगा।

हम हर बार की तरह इस पोस्ट में भी स्पष्ट करना चाहेंगे कि हम न तो किसी धर्म के विरोधी हैं, और न ही पक्षधर हैं। हम असली धर्मनिरपेक्ष हैं। हम सत्य व मानवता ढूंढते हैं, चाहे कहीं भी मिल जाए। सत्य पर चलने वाला बेशक शुरु में कुछ दिक्कत महसूस करे, पर अंत में जीत उसीकी होती है। हम तो धर्म के मूल में छिपे हुए कुंडलिनी रूपी मनोवैज्ञानिक तत्त्व का अन्वेषण करते हैं। इसीसे जुड़ा एक प्रमुख तत्त्व है, संस्कार।

हिंदु दर्शन के सोलह संस्कार

दोस्तों, हम हिंदु धर्म के बजाय हिंदु दर्शन बोलना पसन्द करेंगे, क्योंकि यह एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान लगता है मुझे। दर्शन भी एक मनोविज्ञान या विज्ञान ही लगता है मुझे। इसके सोलह संस्कार आदमी के जन्म लेते ही शुरु हो जाते हैं, और मरते दम तक होते रहते हैं। मृत्यु भी एक संस्कार है, अंतिम संस्कार। हरेक संस्कार के समय कुछ आध्यात्मिक क्रियाएँ की जाती हैं। ये इस तरह से बनाई गई होती हैं कि ये अवचेतन मन पर अपना अधिक से अधिक प्रभाव छोड़े। इससे अवचेतन मन पर संस्कार का आरोपण हो जाता है, जैसे खेत में बीज का रोपण होता है। जैसे समय के साथ जमीन के नीचे से बीज अंकुरित होकर पौधा बन जाता है, उसी तरह कुंडलिनी रूपी अध्यात्म का संस्कार भी अवचेतन मन की गहराई से बाहर निकल कर कुंडलिनी क्रियाशीलता और कुंडलिनी जागरण के रूप में उभर कर सामने आता है। दरअसल संस्कार कुंडलिनी के रूप में ही बनता है। कुंडलिनी ही वह बीज है, जिसे संस्कार समारोह के माध्यम से अवचेतन मन में प्रविष्ट करा दिया जाता है। इस प्रकार, संस्कार समारोह की अच्छी मानवीय शिक्षाएँ भी कुंडलिनी के साथ अवचेतन मन में प्रविष्ट हो जाती हैं, क्योंकि ये इसके साथ जुड़ जाती हैं। इस प्रकार कुंडलिनी और मानव शिक्षाओं का मिश्रण वास्तव में संस्कार है। कुंडलिनी वाहक है, और मानव शिक्षाएं वाह्य हैं अर्थात उनको ले जाया जाता है। समय के साथ दोनों साथ-साथ बढ़ते हैं, और कुण्डलिनी जागरण और मानव समाज की मानवता को एक साथ संभव बनाते हैं। ये संस्कार समारोह मनुष्य की उस जीवन-अवस्था में किए जाते हैं, जिस समय वह बेहद संवेदनशील हो, और उसके अवचेतन मन में संस्कार-बीज आसानी से और पक्की तरह से बैठ जाएं। उदाहरण के लिए विवाह संस्कार। मुझे लगता है कि यह सबसे बड़ा संस्कार होता है, क्योंकि अपने विवाह के समय आदमी सर्वाधिक संवेदनशील होता है। इसी तरह जन्म-संस्कार भी बहुत प्रभावी होता है, क्योंकि अपने जन्म के समय आदमी अंधेरे की गहराइयों से पहली बार प्रकाश में आया होता है, इसलिए वह बेहद संवेदनशील होता है। उपनयन संस्कार आदमी की किशोरावस्था में उस समय किया जाता है, जिस समय उसके यौन हारमोनों के कारण उसका रूपांतरण हो रहा होता है। इसलिए आदमी की यह अवस्था भी बेहद संवेदनशील होती है। संस्कार समारोह अधिकांशतः आदमी की उस अवस्था में किए जाने का प्रावधान है, जब उसमें यौन ऊर्जा का माहौल ज्यादा हो, क्योंकि वही कुंडलिनी को शक्ति देती है। जन्म के संस्कार के समय माँ-बाप की यौन ऊर्जा का सहारा होता है। 'जागृति की इच्छा' रूप वाला छोटा सा संस्कार भी कालांतर में आदमी को कुंडलिनी जागरण दिला सकता है, क्योंकि बीज की तरह संस्कार समय के साथ बढ़ता रहता है। इसीको गीता में इस श्लोक से निरूपित किया गया है, "स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात", अर्थात इस धर्म का थोड़ा सा अनुष्ठान भी महान भय से रक्षा करता है। कुंडलिनी योग के संस्कार को ही यहाँ 'इस धर्म का थोड़ा सा अनुष्ठान' कहा गया है।

कुंडलिनी संस्कारों के वाहक के रूप में काम करती है

संस्कार समारोह के समय विभिन्न आध्यात्मिक प्रक्रियाओं से अद्वैत का वातावरण पैदा किया जाता है। अद्वैत के बल से मन में कुंडलिनी मजबूत होने लगती है। उस कुंडलिनी की मूलाधार-वासिनी शक्ति से दिमाग बहुत संवेदनशील और ग्रहणशील अर्थात रिसेप्टिव बन जाता है। ऐसे में जो भी शिक्षा दी जाती है वह मन में अच्छी तरह से बैठ जाती है, और यहाँ तक कि अवचेतन मन तक दर्ज हो जाती है। कुंडलिनी

से मन आनन्द से भी भर जाता है। इसलिए जब भी आदमी आनन्दित होता रहता है, तब -तब कुंडलिनी भी उसके मन में आती रहती है, और पुराने समय में उससे जुड़ी शिक्षाएं भी। इस तरह वे शिक्षाएं मजबूत होती रहती हैं। आनंद और कुंडलिनी साथसाथ रहते हैं। दोनों को ही मूलाधार से शक्ति मिलती है। आनन्द की तरफ भागना तो जीवमात्र का स्वभाव ही है।

शक्ति के साथ अच्छे संस्कार भी जरूरी हैं

शक्ति रूपी गाड़ी को दिशा निर्देशन देने का काम संस्कार रूपी ड्राइवर करता है। हिन्दू धर्म में सहनशीलता, उदारता, अहिंसा आदि के गुण इसी वजह से हैं, क्योंकि इसमें इन्हीं गुणों को संस्कार के रूप में मन में बैठाया जाता है। जिस धर्म में लोगों को जन्म से ही यह सिखाया और प्रतिदिन पढ़ाया जाता है कि उनका धर्म ही एकमात्र धर्म है, उनका भगवान ही एकमात्र भगवान है, वे चाहे कितने ही बुरे काम कर लें, वे जन्नत ही जाएंगे, और अन्य धर्मों के लोग चाहे कितने ही अच्छे काम क्यों न कर लें, वे हमेशा नरक ही जाएंगे, और उनका धर्म स्वीकार न करने पर अन्य धर्म के लोगों को मौका मिलते ही बेरहमी से मार देना चाहिए, उनसे इसके इलावा और क्या अपेक्षा की जा सकती है। वे कुंडलिनी शक्ति का दुरुपयोग करते हैं, क्योंकि उनके मन में जमे हुए अमानवीय संस्कार उस शक्ति की सहायता से उन्हें गलत रास्ते पर धकेलते रहते हैं। इससे अच्छा तो कोई संस्कार मन में डाले ही न जाएं, अर्थात किसी धर्म को न माना जाए मानव धर्म को छोड़कर। जब मानव बने हैं, तो जाहिर है कि मानवता खुद ही पनपेगी। फिर खुद ही मानवीय संस्कार मन में उगने लगेंगे। बुद्ध कहते हैं कि यदि कांटे बोना बंद करोगे, तो फूल खुद ही उग आएंगे। कुंडलिनी शक्ति हमेशा अच्छाई की ओर ले जाती है। पर यदि ज़बरदस्ती ही, और कुंडलिनी के लाख प्रतिरोध के बाद भी यदि बारम्बार बुराइयां अंदर ठूंसी जाए, तो वह भी भला कब तक साथ निभा पाएगी। दोस्तो, सुगन्ध फैलाने वाले गेंदे के फूल के चारों ओर विविध बूटियों से भरा हुआ रंगबिरंगा जंगल उग आता है, जबकि लैंटाना या लाल फूलनू या फूल-लकड़ी जैसी जहरीली बूटी चारों तरफ बढ़ते हुए हरेक पेड़-पौधे का सफाया कर देती है, और अंत में खुद भी नष्ट हो जाती है। मैं शिवपुराण में पढ़ रहा था कि जो शिव का भक्त है, उसका हरेक गुनाह माफ हो जाता है। इसका मतलब है कि ऐसे कट्टर धर्म शिवतंत्रसे ही निकले हैं। तन्त्र में और इनमें बहुत सी समानताएं हैं। इन्हें अतिवादी तन्त्र भी कह सकते हैं। इससे जुड़ी एक कॉलेज टाइम की घटना मुझे याद आती है। एक अकेला कश्मीरी मुसलमान पूरे होस्टल में। उसी से पूरा माहौल बिगड़ा जैसा लगता हुआ। जिसको मन में आया, पीट दिया। माँस-अंडों के लिए अंधा कुआँ। शराब-शबाब की रंगरलियां आम। कमरे में तलवारें छुपाई हुईं। पेट्रोल बम बनाने में एक्सपर्ट। एकबार सबके सामने उसने चुपके से अपनी अलमारी से निकालकर मेरे गर्दन पर तलवार रख दी। मैं उसकी तरफ देखकर हंसने लगा, क्योंकि मुझे लगा कि वो मजाक कर रहा था। वह भी मक्कारी की बनावटी हंसी हंसने लगा। फिर उसने तलवार हटा कर रख दी। मेरे एक प्रत्यक्षदर्शी दोस्त ने बाद में मुझसे कहा कि मुझे हंसना नहीं चाहिए था, क्योंकि वह एक सीरियस मेटर था। मुझे कभी इसका मतलब समझ नहीं आया। हाँ, मैं उस दौरान जागृति और कुंडलिनी के भरपूर प्रभाव में आनन्दमग्न रहता था। इससे जाहिर होता है कि इस तरह के मजहबी कट्टरपंथी वास्तविक आध्यात्मिकता के कितने बड़े दुश्मन होते हैं। जरा सोचो कि जब सैंकड़ों हिंदुओं के बीच में अकेला मुसलमान इतना गदर मचा सकता है, तो कश्मीर में बहुसंख्यक होकर उन्होंने अल्पसंख्यक कश्मीरी हिंदुओं पर क्या जुर्म नहीं किए होंगे। यह उसी के आसपास का समय था। यही संस्कारों का फर्क है। शक्ति एक ही है, पर संस्कार अलग-अलग हैं। इसलिए शक्ति के साथ अच्छे संस्कारों का होना भी बहुत जरूरी है। यही 'द कश्मीर फाइल्स फ़िल्म' में दिखाया गया है। यह फिल्म नित-नए कीर्तिमान स्थापित करती जा रही है।

यह युद्ध है यह युद्ध है~कविता

यह युद्ध है यह युद्ध है।

न कोई यहाँ पे गाँधी है

न कोई यहाँ पे बुद्ध है।

यह युद्ध है यह युद्ध है।

वीरपने की ऐसी होड़ कि

हिंसा-व्यूह का दिखे न तोड़।

कोई तोप चलाता है तो

कोई देता है बम फोड़।

रुधिर-सिक्त शापित डगरी पर

दया सब्र रूपी न मोड़।

लड़े सांड़ पर मसले घास

जिस पर देते उनको छोड़।

मान पलायन-कायरता न

युद्ध-नीति में इसका जोड़।

असली वीर विरल जगती में

हर इक न होता रणछोड़।

नीति-मार्ग अवरुद्ध है।

यह युद्ध है----

गलती को दुत्कारे फिर भी

नकल उसी की करते हैं।

हमलावर को अँगुली कर के

खुद भी हमला करते हैं।

चिंगारी वर्षों से दबी जो

उसको हवा लगाते हैं।

क्रोध का कारण और ही होता

और को मार भगाते हैं।

खून बहा कर नदियां भर-भर

भी हर योद्धा क्रुद्ध है।

यह युद्ध है---

बढ़त के दावे हर इक करता

आम आदमी है पर मरता।

लाभ उठाए और ही कोई

कीमत उसकी और ही भरता।

जीत का तमगा लाख दिखे पर

न स्वर्णिम न शुद्ध है।

यह युद्ध है----

धर्म का चोला हैं पहनाते

युद्ध को कोमलता से सजाते।

दिलों के महलों को ठुकराकर

पत्थर पर झंडा फहराते।

कैसा छद्म-युद्ध है यह

कैसा धर्म-युद्ध है।
यह युद्ध है---

ज्वाला में सब जलता है और
पानी में सब गलता है।
पेड़ हो चाहे या हो तिनका
नाश न इनका टलता है।
रणभूमि में एकबराबर
मूर्ख है या प्र-बुद्ध है।
यह युद्ध है----

राजा वीर बहुत होता था
रण को कंधे पर ढोता था।
जान बचाने की खातिर वो
गिरि-बंकर में न सोता था।
आज तो प्रजा-खोरों का दिल
राज-धर्म-विरुद्ध है।
यह युद्ध है---

आग बुझाने जाना था जब
आग लगाई क्यों तूने।
आग तपिश के स्वाद की खातिर
लेता जला तू कुछ धूने।

बात ही करनी थी जब आखिर

बात बिगाड़ी क्यों तूने।

सोच सुहाग उजड़ते क्योंकर

क्यों होते आँचल सूने।

परमाणु की शक्ति के संग

प्रलयंकर महा-युद्ध है।

यह युद्ध है--

खून-पसीने की जो कमाई

वो दिखती अब धरा-शायी।

मुक्ति मिलती जिस शक्ति से

क्यों पत्थर में थी वो गंवाई।

बुद्धि नहीं कुबुद्ध है।

यह युद्ध है---

कुंडलिनी के लिए संस्कार या सत्संग का महत्त्व

दोस्तों, मैं पिछली पोस्ट में संस्कारों के बारे में बात कर रहा था। जितने लोगों तक किसी आदमी की अच्छी प्रतिज्ञा या अच्छे काम या अच्छे आचरण का सन्देश जाता है, मन पर उसका संस्कार उतना ही मजबूत बनता है। इसी संस्कार के लिए ही तो लोग ब्लॉग लिखते हैं, लेख लिखते हैं, प्रचार करते हैं, सशुल्क या निःशुल्क शिविर लगाते हैं, छोटे-बड़े समारोहों का आयोजन करते हैं, आदि। जिसको जितनी ज्यादा भीड़ मिलती है, वह उतना ज्यादा सफल माना जाता है। इन क्रियाकलापों के लिए कई बार काफी खर्चा करना पड़ता है, कई बार सस्ते में हो जाता है। कई बार बड़ों और गुरु लोगों की कृपा से मुफ्त में भी हो जाता। मैं इसी मामले में जागृति से जुड़ी अपने साथ घटी घटना बताता हूँ। कॉलेज टाइम में गुरुजनों की कृपा से मुझे एक पत्रिका में लेख लिखने का मौका मिला था। मैंने दो-तीन लेख लिख के दे दिए, जो सौभाग्यवश एक पेज पर छप गए। वे लेख सामान्य शरीरविज्ञान दर्शन, मानवता धर्म, प्रेम, देशप्रेम, कर्मयोग, तन्त्र और काव्य से संबंधित थे। मुझे उससे एक नई पहचान मिली। उससे मेरे मन पर इतना गहरा संस्कार पड़ गया कि मैं खूब क्रियाशील हो गया और दिन दोगुनी रात चौगुनी तरक्की करने लगा। मुझे तो लगता है कि कई वर्षों के भौतिक विकास के बाद जब मेरे मन में वह संस्कार-रूपी बीज भरापूरा वृक्ष बन गया, तभी मुझे जागृति की दूसरी झलक मिली, जिससे मेरे से शरीरविज्ञान दर्शन की रचना पुस्तक के रूप में पूर्ण हुई, अन्य भी बहुत सी पुस्तकों की रचना हुई, और

कुंडलिनी ब्लॉग लिखने में भी काफी हद तक सफलता मिली। मतलब कि मैं पहले पुस्तकों को व्यवहारिक जीवन में खूब जिया हूँ, बाद में मैंने उस जीवन को पुस्तकों और ब्लॉग के रूप में उतारा है। ऐसा नहीं है कि मैं पैदा हुआ, और लिखने बैठ गया। वह तो नकल होती है। असली लेखन वह है जिसमें अपना जीवन कागज पर उतरता हुआ दिखे। उस समय मेरे यौन हॉर्मोन्स का स्तर काफी उच्च था, जैसा कि उस उम्र में सबका होता ही है। पर मुझे लगता है कि जागृति की प्रथम झलक और कुंडलिनी के कारण मेरा कुछ ज्यादा ही और आध्यात्मिक रूप से विशिष्ट था। सम्भवतः इसी वजह से वह शुभ संस्कार इतनी दृढ़ता से जम गया हो, जो ताउम्र मेरे से जुड़ा रहने के लिए बेताब लगता था। मुझे यह भी लगता है कि जागृति की पहली झलक के बाद मेरा पुराना संघर्षमय जैसा बालजीवन एकदम से मेरे मन में ध्वस्त जैसा हो गया था। उससे मेरा मन एक बच्चे की तरह साफ हो गया था, बिना लिखे नए ब्लैकबोर्ड की तरह। बच्चे की तरह मेरा रूपांतरण चल रहा था, जिससे मेरा मन-मस्तिष्क उसी की तरह बहुत ज्यादा ग्रहणशील हो गया था। इसीसे उस शुभ संस्कार ने मेरे मन में इतनी सकारात्मक और चिरस्थायी क्रियाशीलता पैदा कर दी कि उसने कालांतर में मुझे जागृति की दूसरी झलक भी दिखला दी। इसीलिए कहा जाता है कि बच्चों को अच्छे संस्कार देने चाहिए। इससे स्पष्ट हो जाता है कि बच्चों में अच्छे संस्कार डालने वाले सुसंस्कृत शिक्षक का समाज में इतना ज्यादा महत्त्व क्यों बताया गया है। सर्वप्रथम शिक्षिका माँ होती है। उसके द्वारा दिए संस्कारों का प्रभाव मनुष्य पर सबसे ज्यादा होता है। इसीलिए कहा गया है कि रमन्ते तत्र देवताः, नार्यस्यत्र पूज्यंते। शिवाजी महाराज को माँ जीजाबाई से जन्म से ही (यूँ कहो कि गर्भ से ही) संस्कार मिलने शुरु हो गए थे, इसी वजह से वे आक्रमणकारी मुगलों से सनातन धर्म की रक्षा कर सके। संस्कारों का प्रभाव कई जन्मों तक मन पर पड़ा रहता है। मैंने बहुत पहले एक बात सुनी-पढ़ी थी। रूस की एक 80 वर्ष की बुजुर्ग महिला ने स्कूल की पढ़ाई शुरु की। जब उससे पूछा गया कि वह पढ़ाई उसके किस काम आएगी, तो उसने जवाब दिया कि वह उसके अगले जन्म में काम आएगी। मतलब वह अगले जन्म के लिए पढ़ रही थी। उसने यह पढ़ी-पढ़ाई बात नहीं की होगी पर अपने अनुभव और अनुमान आदि के आधार पर कही होगी, क्योंकि पुनर्जन्म का बोलबाला हिन्दू धर्म में ही लगता है मुझको। स्वस्थ समाज का निर्माण स्वस्थ मन से होता है। स्वस्थ मन का निर्माण स्वस्थ संस्कारों से होता है। स्वस्थ संस्कारों का निर्माण स्वस्थ शिक्षा प्रणाली से होता है। हिंदी में एक कहावत है, काँटे का मुँह शुरु से ही पैना होता है। इसका मतलब है कि किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का पता उसके बचपन में ही चल जाता है। इसलिए यह कहावत भी संस्कारों का महत्त्व प्रदर्शित करती है।

उपरोक्त उदाहरण से यह मतलब भी निकलता है कि यह जरूरी नहीं है कि संस्कारों के निर्माण के लिए बड़े-बड़े और महंगे समारोहों पर ही निर्भर रहा जाए। हालाँकि इनसे समाज में उत्तम प्रथा बनी रहती है। रोज जो प्रातः संस्कृत मन्त्र बोले जाते हैं, वे भी संस्कारों का निर्माण करते हैं। उन मन्त्रों की शक्ति यही है कि वे अवचेतन मन पर गहरा प्रभाव डालकर संस्कार बनाते हैं। संस्कृत मंत्रों से कुंडलिनी शक्ति इसलिए भी मिलती है, क्योंकि इनको गाते समय साँसें लम्बी, गहरी, धीमी और नियमित हो जाती हैं। सांसों के साथ इनका तालमेल होता है। मन्त्र का कुछ भाग अंदर जाती हुई लम्बी गहरी सांस के साथ गाया जाता है, तो कुछ भाग बाहर निकलती हुई लम्बी गहरी सांस के साथ। अधिकांश मामलों में तो सिर्फ बाहर जाती सांस के साथ ही गाया जाता है। अंदर जाती गहरी सांस पर तो सिर्फ ध्यान दिया जाता है। सांस पर ध्यान देने से और ज्यादा कुंडलिनी-अद्वैत का लाभ मिलता है। इससे संस्कार और अधिक मजबूत हो जाता है। सांसों और मंत्र-शब्दों पर अनासक्तिपूर्ण ध्यान जाने से अद्वैत व साक्षीभाव का उदय होता। चालीसा आदि बोलने से भी इसी मनोवैज्ञानिक सिद्धांत से लाभ मिलता है। वैसे कुछ न कुछ लाभ तो हर किसी गाने को गाकर मिलता है। यह गायन का आध्यात्मिक मनोविज्ञान है। मैं जब बचपन में नानी के घर जाया करता था, तो मेरे नानाजी मुझे और मेरे दोनों लगभग हमउम्र मामाओं को ऐसे बहुत से प्रातःकालीन मंत्र बार-बार बुला कर याद कराया करते थे, जो मुझे अभी तक याद हैं। एक सार्वभौमिक उदारता का निर्माण करने वाला वैदिक संस्कृत मन्त्र बताता

हूँ। सह नाववतु सह नौ भुनक्तौ सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै। इसका अर्थ है, हमारी साथ-साथ रक्षा हो, मतलब हम सब एकदूसरे की रक्षा करें, हम सब साथ मिलकर खाएं मतलब कोई भूखा न रहे या सबको रोजगार मिले, हम सब साथ-साथ मिलकर बल का प्रयोग करें मतलब हम सब एकदूसरे की सहायता करें। हमारे द्वारा प्राप्त की गई विद्या तेज अर्थात व्यावहारिकता के प्रकाश से परिपूर्ण हो मतलब सिर्फ किताबी न हो, हम एकदूसरे से द्वेष अर्थात नफरत न करें। यह बहुत शक्तिशाली मंत्र है, और ज्यादा नहीं तो कम से कम इसे तो प्रतिदिन प्रातः जरूर बोलना चाहिए। गा कर बोलने पर तो यह और ज्यादा आकर्षक और प्रभावशाली लगता है। इसमें 'मा' शब्द विशेष प्रभावशाली है। इसका अर्थ वैसे तो 'न' होता है, पर यह मन पर माँ अर्थात माता के प्रभाव को भी पैदा करता है। इससे मन बच्चे की तरह भोला और ग्रहणशील बन जाता है। इसलिए गाते समय मा शब्द को दीर्घता और गुरुता प्रदान करनी चाहिए। प्रसिद्ध भारतीय नारा, 'सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास' भी तो सरल शब्दों में यही मंत्र है। इसमें संदेह नहीं कि यह देश के लोगों में अच्छे संस्कार डालने का प्रयास है, जो कालांतर में जरूर फलीभूत होगा। गजब का मनोविज्ञान छिपा होता है संस्कृत मन्त्रों में। अगर इनका गहराई से अध्ययन किया जाए, तो बहुत सी रहस्यात्मक शक्तियाँ हाथ लग सकती हैं। वैदिक मंत्र होने के कारण इसकी संस्कृत का व्याकरण और अर्थ ज्यादा स्पष्ट नहीं है। वैदिक मंत्र ऐसे ही होते हैं। इनमें सस्पेंस जैसा होता है। यह इसलिए ताकि बेशक ये स्थूल रूप से समझ न आए, पर अपने विशेष उच्चारण और शब्द रचना के साथ मन पर गहरा सूक्ष्म संस्कार छोड़ते हैं, जो स्थूल समझ से कहीं ज्यादा शक्तिशाली होता है। सस्पेंस में भी बहुत शक्ति होती है। इससे आदमी विचारों का घोड़ा तेजी से दौड़ाता है, और बहुत सी मंजिलें आसानी से पा लेता है। इसीलिए सस्पेंस से भरी फिल्में बहुत लोकप्रिय होती हैं। मेरे द्वारा लिखे बताए गए उपरोक्त लेख भी भरपूर सस्पेंस से भरे थे, इसीसे उनसे इतनी शक्ति मिली। मुझे तो मिली ही, पर मुझे लगता है कि अन्य अनेक लोगों को भी मिली, जिन्होंने ये पढ़े थे। उनसे दोहरे अर्थ निकलते थे, भौतिक भी और आध्यात्मिक भी, सभ्य भी और असभ्य भी, धार्मिक भी और अधार्मिक भी, व्यंग्यात्मक भी और गम्भीर भी, आलोचनात्मक भी और विश्लेषणात्मक भी। कभी उनमें अश्लीलता नजर आती थी तो कभी तांत्रिक मनोविज्ञान। उनके साथ शरीरविज्ञान दर्शन का ऐसा तड़का लगा था कि ये उपरोक्त परस्पर विरोधी भाव उनमें एकसाथ भी नजर आते थे, और कुछ भी नजर नहीं आता था। सबकुछ शून्य के जैसे सन्नाटे की तरह लगता था। इसी वजह से वे हरेक किस्म के लोगों को पसंद आए। साथ में, उनमें कुछ थ्रिल भी था। मुझे तो लगता है कि पुराणों की कथाएँ इसीलिए बहुत प्रभावशाली होती हैं, क्योंकि उनमें भरपूर सस्पेंस और थ्रिल होता है। बाहुबली फ़िल्म इतनी लोकप्रिय क्यों हुई। उसमें शुरु से लेकर सस्पेंस बनाया हुआ था, जो फिल्म के दूसरे भाग के अंत में जाकर खत्म हुआ। थ्रिल भी उसमें बहुत और एक आभासिक या पौराणिक प्रकार का था। इसी तरह, एक और मंत्र है, 'कराग्रे वसते लक्ष्मी—-'आदि। यह सुबह सो कर उठकर हथेली की ओर देखकर बोला जाता है। यह शरीरविज्ञान दर्शन सम्मत है, क्योंकि इससे हाथ में अर्थात शरीर में पूरे ब्रह्मांड का अनुभव होता है। पौराणिक मन्त्रों का व्याकरण स्पष्ट होता है और इनकी शब्दरचना भी स्पष्ट होती है, इसलिए इनमें वैदिक मन्त्रों जितनी अदृश्य शक्ति नहीं होती। कई लोग अपने असभ्य आचरण के लिए दूसरों को दोष देते हैं। पर वास्तव में दोष उनके अंदर अच्छे संस्कारों की कमी का है। यह अलग बात है कि अच्छे संस्कारों की कमी के लिए कुछ हद तक पूरा समाज जिम्मेदार होता है। अच्छे संस्कार न डालने के लिए कभी माँबाप पर दोषारोपण होता है, कभी गुरुजनों पर तो कभी परिवारजन, मित्र, रिश्तेदार आदि अन्य निकटवर्ती सुपरिचित लोगों पर। हालांकि अपने संस्कारों के लिए आदमी स्वयं भी जिम्मेवार होता है। आदमी के पिछले जन्मों के संस्कार ही यह निश्चय करते हैं कि वह किस प्रकार के संस्कार ग्रहण करेगा। तभी तो आपने देखा होगा कि कई बार बहुत बुरे परिवार में जन्म लेने वाला व्यक्ति भी बहुत बड़ा महात्मा बनता है। दरअसल वह पिछले जन्म के अच्छे संस्कारों के कारण अपने वर्तमान जीवन में बुरे संस्कारों की तरफ आकृष्ट नहीं होता, बल्कि वह अच्छे संस्कारों की तरफ भागता है, बेशक वे परिवार के बाहर ही क्यों न हों। इसी तरह, कई बार सभ्य परिवार का कोई

सदस्य भी कई बार दुरात्मा बन जाता है। इस छोटी सी कहावत के बहुत बड़े मायने हैं, 'बोए बीज बबूल का, आम कहाँ से होए'।

कुंडलिनी के लिए संस्कारों का महत्त्व

भौतिक उपलब्धियां अल्प अवधि में भी प्राप्त की जा सकती हैं। पर कुंडलिनी की प्राप्ति के लिए बहुत लंबा समय लग जाता है। अधिकांश मामलों में तो एक पूरा जीवन भी थोड़ा पड़ने से कई जन्मों के प्रयास की आवश्यकता लगती है। अगले जन्म का क्या पता कि कहाँ मिले, कैसा मिले। इसलिए प्रयास होना चाहिए कि इसी एक मनुष्य-जीवन में कुंडलिनी की प्राप्ति हो जाए। ऐसा केवल संस्कारों से ही सम्भव हो सकता है। यदि जन्म से ही आदमी को कुंडलिनी के संस्कार देना शुरु कर दिया जाए, और यह सिलसिला उम्रभर जारी रखा जाए, तभी यह हो पाना सम्भव लगता है। प्राचीन भारतीय हिंदू परंपरा में ऐसा होता भी था। यह कोई झूठी शेखी बघारने वाली बात नहीं है। कदम-कदम पर देवमन्दिर होते थे। आध्यात्मिक उत्सव-पर्व होते रहते थे। हरेक क्रियाकलाप के साथ अध्यात्म जुड़ा होता था। ज्योतिष पर लोगों की आस्था होती थी। चारों ओर वैदिक कर्मकांड का बोलबाला था। वर्णाश्रम धर्म अपने श्रेष्ठ रूप में विद्यमान था। हरेक आदमी के सोलह संस्कार कराए जाते थे। यह सब कुंडलिनी के लिए ही तो था। यह सब कुंडलिनी विज्ञान है, आध्यात्मिक मनोविज्ञान है। बड़े-बूढ़े लोग जब संस्कार प्रदान करते थे, तब उनके व्यक्तित्व की छाप बच्चों के मन पर गहरी पड़ जाती थी। इससे बच्चा बड़ा होकर एकसाथ दो जीवन जीता था, अपना भी और अपने पूर्वज का भी। उदाहरण के लिए मान लो एक व्यक्ति अपने पौत्र को कुंडलिनी संस्कार देता है। इससे पौत्र के मन में अपने दादा के प्रति अच्छे भाव पैदा हो जाते हैं। इससे अनजाने में ही दादा के जीवन-अनुभवों का लाभ पौत्र को मिलने लगता है। मतलब कि दादा बिना मरे ही पौत्र के रूप में दूसरा जीवन जी रहा है, अर्थात दादा की उम्र दुगुनी हो गई है, और पौत्र को अपनी आयु के साथ दादा की दुगुनी आयु भी प्राप्त होती है। इससे पौत्र की आयु तिगुनी मानी जाएगी, अर्थात 300 साल। अब यह समझ लो कि पौत्र ने लगातार 300 साल तक कुंडलिनी योग किया है। इतने समय की साधना से बहुत संभव है कि उसे कुंडलिनी जागरण हो जाए। पौत्र का अपना असली जीवन तो सौ साल का ही है, पर उसे संस्कारों के कारण तीन सौ सालों का लाभ मिल रहा है। यही कारण है कि हिंदू शास्त्रों में वर्णित कालगणना के मामले में भ्रम पैदा होता है। वहाँ किसी की आयु 300, किसी की 500 या किसी की हजारों साल की बताई गई है। इसी तरह कोई सैंकड़ों सालों तक तप-साधना करता है, तो कोई हजारों सालों तक। दरअसल यह वास्तविक उम्र या समय नहीं होता, बल्कि संस्कारों के कारण मिल रहा इतनी उम्र या समय का लाभ है। उपरोक्त उदाहरण में, इसी तरह दादा भी दो उम्रों को एकसाथ जीता है, एक अपनी और एक अपने पौत्र की। अगर बुढ़ापे से उनकी मृत्यु भी हो जाए, तब भी उन्हें अगले जन्म में पिछले जन्म की दोनों उम्रों का लाभ मिलता है, संस्कारों के कारण। एक-दूसरों से जीवन का साझाकरण संस्कारों से ही सम्भव है। हिंदु अध्यात्म में गुरु परम्परा भी संस्कार को बढ़ाने के लिए ही है। यदि किसी की गुरु परम्परा 10 गुरुओं से चली आ रही है, तो वर्तमान काल के गुरु की सांस्कारिक उम्र 1000 साल मानी जाएगी। मतलब उसे 1000 साल लम्बी चलने वाली कुंडलिनी योगसाधना का लाभ एकदम से अपने आप मिल जाएगा। ऐसा इसलिए होगा क्योंकि हरेक गुरु अपने शिष्य अर्थात भावी गुरु को संस्कारों के रूप में अपना सारा जीवन देते आए हैं, जिससे संस्कार उत्तरोत्तर बढ़ते रहे। इसी तरह, यदि किसी का वंश 10 पीढ़ियों से चलता आ रहा है, तो उसकी वर्तमान पीढ़ी के व्यक्ति की सांस्कारिक उम्र 1000 साल मानी जाएगी। आपस में जितना अधिक भावनात्मक और प्रेमपूर्ण सम्बंध बना होगा, संस्कारों का उतना ही अधिक लाभ मिलेगा। यदि एक परिवार दस पीढ़ियों से लगातार आध्यात्मिक जीवन पद्धति को जीता आ रहा है, तो उसकी वर्तमान समय की दसवीं पीढ़ी के सदस्य को समझा जाएगा कि वह बिना मृत्यु को प्राप्त हुए, एक हजार वर्षों से लगातार आध्यात्मिक जीवन पद्धति को जीता आ रहा है। इसका मतलब है कि जो जीवन पद्धति या परंपरा जितनी अधिक पुरातन है, उसमें उतना ही ज्यादा संस्कारों का बल है। इस हिसाब से तो हिंदु या वैदिक

परंपरा सबसे शक्तिशाली है, क्योंकि यह सबसे पुरातन है। अगर मैं आज शिवपुराण को रहस्योद्‌घाटित कर रहा हूँ, तो इसका यह मतलब भी हो सकता है कि मैं इसके लेखक ऋषि के संस्कार को पीढ़ी दर पीढ़ी परम्परा से प्राप्त कर रहा हूँ। परम्परा में संस्कार छिपे होते हैं, इसलिए हमें परम्परा को विलुप्त नहीं होने देना है। अगर उसे युग के अनुरूप भी ढालना है, तो उसके मूल रूप से छेड़छाड़ नहीं होनी चाहिये। प्रसिद्ध चीनी दार्शनिक कन्फ्यूशियस कहते हैं कि नयापन इस तरह लाओ कि पुरानापन भी जीवित रहे। परम्परा से कटा आदमी डोरी से कटी पतंग की तरह दिशाहीन हो जाता है। हालांकि आज हमें उपरोक्त वैदिक परंपरा या जीवन पद्धति की तरह अन्य पुरातन परम्पराएँ भी अजीब सी लगती हैं। यह ऐसा इसलिए है क्योंकि आज ये विकृत हो गई हैं, अपने असली स्वरूप में नहीं हैं। आज ये ढोंग या दिखावा बन कर रह गई हैं। आज इनमें शक्ति नहीं है। आज हम बहुत आदर्शवादी बन गए हैं, जिससे अपनी असली संस्कृति भूल सी गए हैं। यह ऐसे है, जैसे शिवपुराण में कथा आती है कि त्रिपुरासरोंको पथभ्रष्ट करने के लिए भगवान विष्णु ने सिर मुंडवाए हुए बौद्ध-जैन भिक्षु जैसे लोग पैदा किए। वे शिवलिंग, वेदों, यज्ञों व उनमें दी जाने वाली पशु बलि के विरोध में छद्म अहिंसा आदि का उपदेश देते हुए अपने मायामय धर्म का प्रचार करने लगे। इससे महिलाएं कुलटा हो गईं। जिससे सब शक्तिहीन हो गए। वे भिक्षु मुंह पर कपड़ा जैसा बाँध रखते थे, और बहुत धीरे चलते थे, ताकि पैर के नीचे दब कर किसी चींटी आदि सूक्ष्म जीव की हत्या न हो जाए। शिवलिंग पूजा छोड़ने से सब तन्त्र से विमुख हो गए। उन्हें शक्तिहीन जानकर देवताओं ने अच्छा मौका जानकर उन त्रिपुरासरों को शिव से मरवा दिया। फिर वे मुंडी लोग भगवान नारायण के पास जाकर कहने लगे कि आपका काम हो गया, अब आप बताएं हम कहाँ जाएं। नारायण ने उन्हें रेगिस्तान चले जाने का निर्देश दिया और कहा कि कलियुग में फिर दुनिया में फैल जाना। आज के कलियुग में यह बात सच होती हुई लग रही है। मैं इस कथा का रहस्योद्‌घाटन अगली पोस्ट में करूंगा।

उपरोक्त बातों से सिद्ध होता है कि संस्कारों के बिना कुंडलिनी दुर्लभ है। संस्कार के साथ शुभ लगाने की जरूरत नहीं, क्योंकि इसका मतलब ही शुभ संस्कार बनता है। विशेष संस्कार बताने के लिए विशेष शब्द जोड़ सकते हैं, जैसे भौतिक संस्कार, स्वच्छता के संस्कार आदि। क्योंकि कुंडलिनी आध्यात्मिक संस्कार से मिलती है, इसलिए इस कुंडलिनी विषयक वेबसाइट में संस्कार का मतलब आध्यात्मिक संस्कार ही समझा जाएगा, जो शुभ संस्कार का ही एक प्रकार है। बुरे संस्कार के साथ बुरा या अशुभ जोड़ना पड़ता है। यह समझा जा सकता है कि बच्चे से कुंडलिनी योग या अन्य आध्यात्मिक क्रियाकलाप आसानी से नहीं कराया जा सकता, पर संस्कार तो डाला जा सकता है। यही संस्कार रूपी बीज कालांतर में कब महान वृक्ष बनेगा, किसीको पता भी नहीं चलेगा। संस्कार संगति से बनता है। इसीलिए अच्छी संगति की अध्यात्म में बहुत बड़ी महिमा है। थोड़ी सी संगति से भी अनगिनत लोग, यहाँ तक कि अन्य जीव भी भवसागर से तर गए हैं। शास्त्र ऐसे उदाहरणों से भरे पड़े हैं। उदाहरण के लिए, एक कौवा मंदिर पर चढ़ाया हुआ प्रसाद खाता था। संगति या संस्कार के प्रभाव से वह अगले जन्म में साधु बना और मुक्त हो गया। कोई जीव या मनुष्य किसी साधु की कुटिया के सानिध्य में रहकर मुक्त हो गया, आदि। वृंदावन में तो भगवान कृष्ण की संगति से फूल-पौधे भी तर गए। यह सब संस्कार या संगति का ही चमत्कार है। बिना किए ही सबकुछ हो जाता है। संस्कार की तरह संगति का मतलब भी यहाँ शुभ या आध्यात्मिक संगति ही समझना चाहिए। तत्त्वतः संगति और संस्कार में कोई अंतर नहीं है।

कुंडलिनी और इस्लाम~कुंडलिनी जिन्न, सलत या नमाज योग, अल्लादीन योगी, चिराग आज्ञा चक्र, व शरीर बोतल है, और आँखें आदि इन्द्रियां उस बोतल का ढक्कन हैं

मित्रो, मैं पिछले लेख में बता रहा था कि कैसे अच्छे लेखक के लिए अनुभवी होना बहुत जरूरी है। अनुभव की पराकाष्ठा जागृति में है। इसलिये हम कह सकते हैं कि एक जागृत व्यक्ति सबसे काबिल लेखक बन सकता है। होता क्या है कि जागृत व्यक्ति का पिछला जीवन जल्दी ही खत्म होने वाला होता है, तेजी से चल रहे रूपाँतरण के कारण। इसलिये उसमें खुद ही एक नेचुरल इंस्टिन्कट पैदा हो जाती है कि वह अपने पुराने जीवन को शीघ्रता से लिखकर सुरक्षित कर ले, ताकि जरूरत पड़ने पर वह उसे पढ़ कर अपने पुराने जीवन को याद कर ले। इससे उसे रूपान्तरण का सदमा नहीं लगता। इस इंस्टिनकट या आत्मप्रेरणा की दूसरी वजह यह होती है कि लोगों को जागृति के लिए प्रेरणा मिले और उन्हें यह पता चल सके कि जागृति के लिए कैसा जीवन जरूरी होता है। अगर उसे खुद भी फिर से कभी जागृति की जरूरत पड़े, तो वह उससे लाभ उठा सके। वेदों और पुराणों को लिखने वाले लोग जागृत हुआ करते थे। उन्हें ऋषि कहते हैं। यह उनकी रचनाओं को पढ़ने से स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। उन्हें पढ़ने से लगता है कि वे जीवन के सभी अनुभवों से भरे होते थे। उनका लेखन मानव के हरेक पहलू को छूता है। साथ में मैं अपना ही एक अनुभव साझा कर रहा था कि कैसे मुझे अपने ही लेख ने प्रेरित किया। अन्य अधिकांश लोग तो दूसरों के लेखों से प्रेरित होते हैं। मुझे अपना ही लेख अचंभित करता था। उसमें मुझे अनेकों अर्थ दिखते थे, कभी कुछ तो कभी कुछ, और कभी कुछ नहीं। यह आदमी का मानसिक स्वभाव है कि सस्पेंस या संदेह और थ्रिल या रोमांच से भरी बात के बारे में वह बार-बार सोचता है। इसी वजह से वह लेख मेरे मन में हमेशा खुद ही बैठा रहता था, और मुझे ऐसा लगता था कि वह मुझे जीवन में दिशानिर्देशित कर रहा था। दरअसल अगर कोई चीज मन में लगातार बैठी रहे, तो वह कुंडलिनी का रूप ले लेती है। कई लोग उसे झेल नहीं पाते और अवसाद का शिकार हो जाते हैं। इसीलिए तो लोग कहते हैं कि फलां आदमी फलां चीज के बारे में लगातार सोच-सोच कर पागल हो गया। दरअसल वैसा ऊर्जा की कमी से होता है। कुंडलिनी शरीर की ऊर्जा का अवशोषण करती है। यदि कोई अतिरिक्त ऊर्जा को न ले तो स्वाभाविक है कि उसमें शक्तिहीनता जैसी घर कर जाएगी। इससे उसका मन अपनी रोज की साफसफाई के लिए भी नहीं करेगा। अवसाद की परिभाषा भी यही है कि आदमी अपने शरीर की देखरेख भी ढंग से नहीं कर पाता, बाकि काम तो छोड़ो। मेरा एक सहकर्मी जो अवसाद की दवाइयां भी खाता था, कई-कई दिनों तक न तो नहाता था और न खाना बनाता था। कुंडलिनी, ऊर्जा और शक्ति एकदूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं, लगभग। अवसाद में आदमी अकेलेपन में इसलिए रहने लगता है क्योंकि वह व्यर्थ के झमेलों से बचकर अपनी ऊर्जा बचाना चाहता है। पर इससे कई बार उसका अवसाद बढ़ जाता है, क्योंकि उसे प्रेमभरी सहानुभूति देने वाला कोई नहीं रहता। पर यदि कुंडलिनी के लिए अतिरिक्त ऊर्जा या शक्ति की आपूर्ति हो जाए, और उससे आदमी के काम कुप्रभावित न हों, तो कुंडलिनी चमत्कार करते हुए आदमी को मुक्ति की ओर ले जाती है। कई बार अवसाद के मरीज में ऊर्जा तो पर्याप्त होती है, पर वह ऊर्जा दिग्भ्रमित होती है। कुंडलिनी योग से यदि ऊर्जा को सही दिशा देते हुए उसे कुंडलिनी को प्रदान किया जाए, तो अवसाद समाप्त हो जाता है। मुझे भी ऐसा ही अवसाद होता था, जो कुंडलिनी योग से समाप्त हो गया। मेरे उन लेखों में यौनवासना का बल भी था, तंत्र के रूप में। क्योंकि आपने देखा होगा कि लगभग हरेक फिल्म में रोमांस होता है। यह रोचकता प्रदान करने के लिए होता है। कोई चीज हमें तभी रोचक लगती है जब वह

कुंडलिनी शक्ति से हमारे मन में ढंग से बैठती है। मतलब साफ है कि फ़िल्म में प्रणय संबंधों का तड़का इसीलिए लगाया जाता है, ताकि उससे मूलाधार-निवासिनी कुंडलिनी शक्ति सक्रिय हो जाए, जिससे पूरी फ़िल्म अच्छे से मन में बैठ जाए और लोग एकदूसरे से चर्चा करते हुए उसका खूब प्रचार करे, और वह ब्लॉकबस्टर बने। इसीलिए यदि ऐतिहासिक दस्तावेज पर भी फ़िल्म बनी हो, तो भी उसमें रोमांस जोड़ दिया जाता है, सच्चा न मिले तो झूठा ही सही। इसीलिए कई बार ऐसी फिल्मों का विरोध भी होता है। इसी विरोध के कारण ही फ़िल्म पद्मावती (स्त्रीलिंग) का नाम बदलकर पद्मावत (पुलिंग) रखना पड़ा था। यह फ़िल्म उद्योग का मनोविज्ञान है। ऐसा लग रहा था कि वे लेख मैंने नहीं, बल्कि मेरी कुंडलिनी ने लिखे थे। मेरा मन दो हिस्सों में विभाजित जैसा था, एक हिस्सा कुंडलिनी पुरुष या गुरु या उपदेशक के रूप में था, और दूसरे हिस्से में मेरा पूरा व्यक्तित्व एक शिष्य या श्रोता के रूप में था। कुंडलिनी का यह लाभ भी काबिलेगौर है। वैसे आम आदमी तो अपने लिखे या शत्रु द्वारा लिखे लेख से ज्यादा लाभ नहीं उठा सकता, पर कुंडलिनी को धारण करने वाला व्यक्ति उनसे भी पूरा लाभ उठा लेता है, क्योंकि उसे लगता है कि वे कुंडलिनी ने लिखे हैं। सम्भवतः इसीलिये कुंडलिनी को सबसे बड़ा गुरु या मार्गदर्शक कहते हैं। एक लेख से मुझे अपने लिए खतरा भी महसूस होता था, क्योंकि उसमें धर्म के बारे में कुछ सत्य और चुभने वाली बातें भी थीं। हालांकि गलत कुछ नहीं लिखा था। उस बारे मुझे कुछ धमकी भरी चेतावनियाँ भी मिली थीं। उसकी वजह मुझे यह भी लगती है कि उससे कुछ बड़े-बुजुर्गों और तथाकथित धर्म के ठेकेदारों के अहंकार को चोट लगी होगी कि एक साधारण सा कम उम्र का लड़का धर्म, तंत्र व आध्यात्मिक विज्ञान के बारे में कुछ कैसे लिख सकता था। हो सकता है कि उन्हें यह भी लगा हो कि उन लेखों में एक जगह गुरु का अपमान झलकता था। हालाँकि लगता है कि वे बाद में समझ गए थे कि वैसा कुछ नहीं था, और वे लेख अनगिनत अर्थों से भरे थे, ताकि हर किस्म के लोगों को पसंद आते। वैसे उन्हें यह सवाल पत्रिका के लिए लेख के चयनकर्ताओं से पूछना चाहिए था कि उन्होंने मेरे लेखों को क्या देखकर चयनित किया था। मुझे उन लेखों से पैदा हुए भय से लाभ भी मिला। भय से एक तो हमेशा उन लेखों पर ध्यान जाता रहा, और दूसरा लेखन की बारीकियों की समझ विकसित हुई। मेरे लेखन को मेरे परिवार के एक या दो बड़े लोगों ने भी पढ़ा था। उन्हें भी उससे अपने लेखन में कुछ सुधार महसूस हुआ था। साथ में, मैं बता रहा था कि कैसे पुरातन चीजों के साथ संस्कार जुड़े होते हैं। इसी मनोवैज्ञानिक सिद्धांत से प्रेरित होकर ही पुराणों के ऋषियों ने अपने लेखन में कभी सीमित काल नहीं जोड़ा है। केवल 'बहुत पुरानी बात' लिखा होता है। इससे पाठक के अवचेतन मन में यह दर्ज हो जाता है कि ये अनादि काल पहले की बातें हैं। इससे सर्वाधिक काल-संभव संस्कार खुद ही प्राप्त हो जाता है। इसी तरह यदि कहीं कालगणना की जाती है, तो बहुत दूरपार की, लाखों -करोड़ों वर्षों या युगों की। इसीलिए हिंदू धर्म को ज्यादातर लोग सनातन धर्म कहना पसंद करते हैं।

अब शिव पुराण की आगे की कथा को समझते हैं। हाथी का सिर जोड़कर गणेश को गजानन बना दिया गया। मतलब कि भगवान शिव पार्वती की कुंडलिनी तो वापिस नहीं ला पाए, पर उन्होंने कुंडलिनी सहायक के रूप में गजानन को पैदा किया। हाथी वाला भाग यिन का प्रतीक है, और मनुष्य वाला भाग यांग का। यिन-यांग गठजोड़ के बारे में एक पिछली पोस्ट में भी बताया है। उसे देखकर पार्वती के मन में अद्वैतभावना पैदा हुई, जिससे उसे अपनी कुंडलिनी अर्थात अपने असली पुराने गणेश की याद वापिस आ गई, और वह हमेशा उसके मन में बस गया। इसलिए गजानन उसे बहुत प्यारा लगा और उसे ही उसने अपना पुत्र मान लिया। उसे आशीर्वाद भी दिया कि हर जगह सबसे पहले उसी की पूजा होगी। अगर उसकी पूजा नहीं की जाएगी, तो सभी देवताओं की पूजा निष्फल हो जाएगी। वास्तव में गजानन की पूजा से अद्वैतमयी कुंडलिनी शक्ति उजागर हो जाती है। वही फिर अन्य देवताओं की पूजा के साथ वृद्धि को प्राप्त करती है। देवताओं की पूजा का असली उद्देश्य कुंडलिनी ही तो है। यदि गजानन की पूजा से वह उजागर ही नहीं होगी, तो कैसे वृध्दि को प्राप्त होगी। अगर होगी, तो बहुत कम।

फिर शिव-पार्वती अपने दोनों पुत्रों कार्तिकेय और गणेश के विवाह की योजना बनाते हैं। वे कहते हैं कि जो सबसे पहले समस्त ब्रह्मांड की परिक्रमा करके उनके पास वापिस लौट आएगा, उसीका विवाह पहले होगा। कार्तिकेय मोर पर सवार होकर उड़ जाता है, अभियान को पूरा करने के लिए। उधर गणेश के पास चूहा ही एकमात्र वाहन है, जिसपर बैठकर ब्रह्मांड की परिक्रमा करना असंभव है। इसलिए वह माता पिता के चारों तरफ घूमकर परिक्रमा कर लेता है। वह कहता है कि मातापिता के शरीर में संपूर्ण ब्रह्मांड बसा है, और वे ही ईश्वर हैं। बात ठीक भी है, और शरीरविज्ञान दर्शन के अनुसार ही है। सवारी के रूप में चूहे का मतलब है कि गणेश अर्थात यिन-यांग गठजोड़ ज्यादा क्रियाशील नहीं होता। यह शरीर में कुंडलिनी की तरह नहीं घूमता। शरीर मतलब ब्रह्मांड। कार्तिकेय अर्थात कुण्डलिनी का शरीर में चारों ओर घूमना ही पूरे ब्रह्मांड की परिक्रमा है। इसीलिए उसे तीव्र वेग से उड़ने वाले मोर की सवारी कहा गया है। गणेश तो भौतिक मूर्ति के रूप में शरीर के बाहर जड़वत स्थित रहता है। इसीलिए मन्द चाल चलने वाले चूहे को उसका वाहन कहा गया है। वह खुद नहीं घूमता, पर शरीर के अंदर घूमने वाले कुंडलिनी पुरुष को शक्ति देता है। यदि उसका मानसिक चित्र घूमता है, तो वास्तविक कुंडलिनी पुरुष की अपेक्षा बहुत धीमी गति से। वह तो यिन-यांग का मिश्रण है। माता-पिता या शिवपार्वती भी यिन-यांग का मिश्रण है। दोनों के इसी समान गुण के कारण उसके द्वारा मातापिता की परिक्रमा कही गई है। क्योंकि यिन-यांग गठजोड़ से, बिना कुंडलिनी योग के, सीधे ही भी जागृति मिल सकती है, इसीलिए उसके द्वारा बड़ी आसानी से परमात्मा शिव या ब्रह्मांड की प्राप्ति या परिक्रमा होना बताया गया है। यिन-याँग के बारे में बात चली है, तो मैं इसे और ज्यादा स्पष्ट कर देता हूँ। मांस मृत्यु या यिन है, और उसे जला रही अग्नि जीवन या याँग है। इसीलिए श्मशान में कुंडलिनी ज्ञान प्राप्त होता है। शिव इसी वजह से श्मशान में साधना करते हैं। धुएं के साथ उसकी गंध अतिरिक्त प्रभाव पैदा करती है। सम्भवतः इसी यिनयांग से आकर्षित होकर लोग तंदूरी चिकन आदि का ——। मैंने अपने कुछ बड़े-बुजुर्गों से सुना है कि वैदिक काल के लोग जिंदा भैंसों या बैलों और बकरों को यज्ञकुंड की धधकती आग में डाल दिया करते थे, जिससे यज्ञ के देवता प्रसन्न होकर हरप्रकार से कल्याण करते थे। आजकल भी पूर्वी भारत में ऐसा कभीकभार देखा जा सकता है। आदर्शवादी कहते हैं कि शाकाहार संपूर्ण आहार है। यदि ऐसा होता तो दुनिया से जानवरों की अधिकांश किस्में विलुप्त न हो गई होतीँ, क्योंकि आदमी के द्वारा अधिकांशतः उनका इस्तेमाल भोजन के रूप में ही हुआ। कहते हैं कि एक यज्ञ तो ऐसा भी है, जिसमें गाय को काटा जाता है, जबकि गाय को हिन्दु धर्म में अति पवित्र माना जाता है। यज्ञ की हिंसा को हल्का दिखाने वाले कई लोग यह अवैज्ञानिक तर्क भी देते हैं कि पुराने समय के ऋषि यज्ञ में मरने वाले पशु को अपनी शक्ति से पुनर्जीवित कर देते थे, पर आजकल किसी में ऐसी शक्ति नहीं है, इसलिए आजकल ऐसे यज्ञ आम प्रचलन में नहीं हैं। कई दार्शनिक किस्म के लोग कहते हैं कि यज्ञ में बलि लगे हुए पशु को स्वर्ग प्राप्त होता है। जब बुद्धिस्ट जैसे लोगों द्वारा उनसे यह सवाल किया जाता है कि तब वे स्वर्ग की प्राप्ति कराने के लिए यज्ञ में पशु के स्थान पर अपने पिता की बलि क्यों नहीं लगाते, तब वे चुप हो जाते हैं। सम्भवतः वे यज्ञ देवता कुंडलिनी के रूप में ही होते थे। ऐसा जरूर होता होगा, क्योंकि ऐसे हिंसक यज्ञ-यागों का वर्णन वेदों में है। काले तंत्र या काले जादू में इसी तरह मांस के हवन से कुंडलिनी शक्ति पैदा की जाती है, जिसे जिन्न भी कहते हैं। हम यहाँ यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम नाजायज पशु हिंसा के सख्त खिलाफ हैं, और यहाँ प्रकरणवश ही तथ्यों को सामने रखा जा रहा है, किसी जीवन-पद्धति की वकालत के लिए नहीं। इमरान खान ने बुशरा बेगम से बहुत काला जादू कराया, पर बात नहीं बनी। इससे जुड़ी एक बात मुझे याद आ रही है। मेरा एक दोस्त मुझे एकबार बता रहा था कि मृत पशु के व्यवसाय से जुड़े किसी विशेष समुदाय के लोगों का एक शक्तिशाली देवता

होता है। उसे वे गड्ढा कहते हैं। दरअसल हरवर्ष एक कटे हुए मृत बकरे को उस गड्ढे में दबा दिया जाता है। जिससे उसमें बहुत खतरनाक मांसखोर जीवाणु पनपे रहते हैं। यदि किसीका बुरा करना हो, तो उस गड्ढे की मिट्टी की मुट्ठी शत्रु के घर के ऊपर फ़ेंक दी जाती है। जल्दी ही उस घर का कोई सदस्य या तो मर जाता है, या गंभीर रूप से बीमार हो जाता है। विज्ञान के अनुसार तो उस मिट्टी से जीवाणु-संक्रमण फैलता है। पर मुझे इसके पीछे कोई घातक मनोवैज्ञानिक वजह भी लगती है। जिन्न क्या है, कुंडलिनी ही है। चीज एक ही है। यह तो साधक पर निर्भर करता है कि वह उसे किस तरीके से पैदा कर रहा है, और किस उद्देश्य के लिए प्रयोग में लाएगा। यदि यह सात्विक विधि से पैदा की गई है, और आत्मकल्याण या जगकल्याण के लिए है, तब उसे शक्ति या कुंडलिनी या होली घोस्ट या पवित्र भूत कहेंगे। यदि उसे तामसिक तरीके से पैदा किया है, हालांकि उसे आत्मकल्याण और जगकल्याण के प्रयोग में लाया जाता है, तब इसे तांत्रिक कुंडलिनी कहेंगे। यदि इसे तामसिक या काले तरीके से पैदा किया जाता है, और इससे अपने क्षणिक स्वार्थ के लिए जगत के लोगों का नुकसान किया जाता है, तब इसे जिन्न या भूत या डेमन कहेंगे। अब्राहमिक धर्म वाले कई लोग जो कुंडलिनी को डेमन या शैतान कहते हैं, वे अपने हिसाब से ठीक ही कहते हैं। मैं ऐसा नहीं बोल रहा हूँ कि सभी लोग ऐसा कहते हैं। आपको हरेक धर्म में हर किस्म के लोग मिल जाएंगे। हमारे लिए सभी धर्म समान हैं। इस वैबसाईट में धार्मिक वैमनस्य के लिए कोई जगह नहीं ह। कुंडलिनी योग से जो शरीर में कंपन, सिकुड़न, नाड़ी-चालन आदि विविध लक्षण प्रकट होने लगते हैं, उसे वे शैतान का शरीर पर कब्जा होना कहते हैं। पर मैं उसे देवता का शरीर पर कब्जा होना कहूंगा। शैतान और देवता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उनके पास कुंडलिनी को वश में करने वाली युक्तियां व संस्कार नहीं हैं, इसलिये उनसे वह हिंसा, नुकसान, दंगे, जिहाद, धर्म परिवर्तन आदि करवाती है। हाल ही में जो देशभर में कई स्थानों पर रामनवमी के जुलूसों पर विधर्मियों के द्वारा हिंसक पथराव हुआ है, वह शक्ति से ही हुआ है। उस पर उन्हें कोई पछतावा नहीं, क्योंकि इसको उन्होंने महान मानवता का काम माना हुआ है, लिखित रूप में भी और सामूहिक तौर पर भी। हम मानते हैं कि कुंडलिनी शक्ति मानवता के लिए काम करती है, ये भी ऐसा ही मानते हैं, पर इन्होंने कुंडलिनी को धोखे में डाला हुआ है, मानवता को विकृत ढंग से परिभाषित करके। यह ऐसे ही है कि एक सांप घर के अंदर घुसा था चूहे का शिकार करने, पर शिकार सोया हुआ आदमी बन गया, क्योंकि चूहा सांप से बचने के लिए उसके बिस्तर में घुस गया। गजब का मनोविज्ञान है लगता है यह, जिस पर यदि ढंग से शोध किए जाएं, तो समाज में व्याप्त परस्पर वैरभाव समाप्त हो सकता है। शक्ति कुंडलिनी का ही पर्याय है, या यूँ कहो कि शक्ति कुंडलिनी से ही मिलती है, बेशक वह किसी को महसूस होए या न। उनके लिए तो कुंडलिनी शैतान ही कही जाएगी। पर हिन्दु धर्म में गुरु परम्परा, संस्कार आदि अनेकों युक्तियों से कुंडलिनी को वश में कर के उससे मानवता, सेवा, जगकल्याण, और मोक्ष संबंधी काम कराए जाते हैं। इसलिए हिन्दुओं के लिए वही कुंडलिनी देवता बन जाती है। ऐसा होने पर भी, हिन्दु धर्म में भी बहुत से लोग कई बार कुंडलिनी के आवेश को सहन नहीं कर पाते। मैं एकबार ऊँचे हिमालयी क्षेत्रों में किसी प्रसंगवश रहता था। हम कुछ साथियों का मकान-मालिक बहुत अच्छा इंसान था। देवता पर बहुत ज्यादा आस्था रखने वाला था। हमेशा देवपूजा में शामिल होता था। उसके पूरे परिवार के संस्कार ऐसे ही पवित्र थे। मेरे एक रूममेट के साथ अक्सर उठता-बैठता था। एकबार उस मकान मालिक की कुंडलिनी शक्ति को पता नहीं क्या हुआ, वह ज्यादा ही खानेपीने लग गया, जिससे वह सम्भवतः कुंडलिनी को नियंत्रित नहीं कर पा रहा था। वह रोज मेरे रूममेट को साथ लेकर शराब पीता और पूरे दिन उसके साथ और कुछ अन्य लोगों के साथ ताश खेलता रहता। समझाने पर भी न समझे। उसकी बड़ी-बड़ी और लाली लिए आँखें जैसे शून्यता को

ढूंढती रहती। वह अजीब सा और डरावना सा लगता। ऐसा लगता कि जैसे उस पर देवता की छाया पड़ गई हो, पर उल्टे रूप में। मेरा रूममेट भी बड़ा परेशान। वह किसी के काबू नहीं आया पुलिस के सिवाय। बाद में माफी माँगने लगा। अपने किए पर बहुत शर्मिंदा हुआ। शराब तो उसने बिल्कुल छोड़ दी, और वह पहले से भी ज्यादा नेक इंसान बन गया। इससे जाहिर होता है कि वह देवता या कुंडलिनी के वश में था। इसीलिए वह मारपीट आदि नहीं कर रहा था। यदि मारपीट आदि बवाल मचाता, तो मानते कि वह भूतरूपी कुंडलिनी के वश में होता। उसकी कुंडलिनी को जरूरत से ज्यादा तांत्रिक ऊर्जा मिल रही थी, जिससे वह उसे नियंत्रित नहीं कर पा रहा था। यदि वह अपनी मर्जी से कर रहा होता तो बाद में माफी न मांगता, बहुत शर्मिंदा न होता, और प्रायश्चित न करता। ऐसे मैंने बहुत से अच्छे लोग देखे हैं, जिन्हे पता नहीं एकदम से क्या हो जाता है। वे तो खातेपीते भी नहीं। बिल्कुल सात्विक जीवन होता है उनका। लगता है कुंडलिनी को पर्याप्त ऊर्जा न मिलने से भी ऐसा होता है। यदि उनकी ऊर्जा की कमी को उच्च ऊर्जा वाली चीजों विशेषकर ननवेज या विशेष टॉनिक से पूरा किया जाए, तो वे एकदम से ठीक हो जाते हैं। इसीलिए कहते हैं कि शक्ति खून की प्यासी होती है। माँ काली के एक हाथमें खड़ग और दूसरे हाथ में खून से भरा कटोरा होता है। अगर ऊर्जा की कमी से कुंडलिनी रुष्ट होती है, तो ऊर्जा की अधिकता से भी। इसीलिए योग में संतुलित आहार व विहार पर बल दिया गया है। अपने व्यवसाय की खातिर मैं कुछ समय के लिए एक जंगली जैसे क्षेत्र में भी रहा था। वहां एक गांव में मैंने देखा था कि एक बुजुर्ग आदमी को प्रतिदिन मांस चाहिए होता था खाने को, बेशक थोड़ा सा ही। अगर उसे किसी दिन मांस नहीं मिलता था, तो उसमें भूत का आवेश आ जाता था, और वह अजीबोग़रीब हरकतें करने लगता था, गुस्सा करता, बर्तन इधरधर फ़ेंकता, और परिवार वालों को परेशान करता, अन्यथा वह दैवीय गुणों से भरा रहता था। कुछ तो इसमें मनोवैज्ञानिक कारण भी होता होगा, पर सारा नहीं। बहुत से लोग यह मानते हैं कि शक्ति से केवल लड़ाई-झगड़े जैसे राक्षसी गुण ही पनपते हैं, दैवीय गुण नहीं। पर सच्चाई यह है कि दया, प्रेम, नम्रता, सहनशीलता जैसे दैवीय गुणों के लिए भी शक्ति की जरूरत पड़ती है। अगर विष्ठा को ढोने के लिए ताकत की जरूरत होती है, तो अमृत को ढोने के लिए भी ताकत की जरूरत पड़ती है। यह अलग बात है कि शक्ति का स्रोत क्या है। पर यह भी सत्य है कि शक्ति का सबसे उत्कृष्ट स्रोत संतुलित आहार ही है, और वह ननवेज के बिना पूरा नहीं होता। हम यहाँ निष्पक्ष रूप से वैज्ञानिक तथ्य सामने रख रहे हैं, न कि किसी की जीवनपद्धति। भारत-विभाजन के कारण लाखों निर्दोष लोग मारे गए। विभाजन भी बड़ा अजीब और बेढंगा किया गया था। देश को तोड़ना और जोड़ना जैसे एक गुड्डे-गुडिया का खेल बना दिया गया। उसके लिए तथाकथित जिम्मेदार लोग तो बहुत उच्च जीवन-आदर्श वाले और अहिंसक थे। फिर सामाजिक न्याय, धार्मिक न्याय, बराबरी, हित-अहित, कूटनीति और निकट भविष्य में आने वाली समस्याओं का आकलन वे क्यों नहीं कर पाए। प्रथमदृष्टया तो ऐसा लगता है कि उनमें ऊर्जा की कमी रही होगी, और उनके विरोधी ऊर्जा से भरे रहे होंगे। तब ऐसे आदर्शवाद और अहिंसा धर्म से क्या लाभ। इससे अच्छा तो तब होता अगर वो अपनी ऊर्जा के लिए छुटपुट मानवीय हिंसा को अपनाकर उस भयानक मानवघातिनी हिंसा को रोक पाते, और भविष्य को भी हमेशा के लिए सुरक्षित कर देते। समझदारों के लिए इशारा ही काफी होता है। इस बारे ज्यादा कहने की जरूरत नहीं है। हम किसी की आलोचना नहीं कर रहे हैं, पर तथ्य प्रस्तुत कर रहे हैं। विरोध नीतियों, विचारों और कामों का होता है, व्यक्तियों का नहीं। हम आदर्शवाद की तरफ भी कोई अंगुली नहीं उठा रहे हैं। आदर्शवाद उच्च व्यक्तित्व का आधारस्तम्भ है। यह एक अच्छी और मानवीय आदत है। कुंडलिनी जागरण की प्राप्ति कराने वाले कारकों में यह मूलभूत कारक प्रतीत होता है। हमारा कहने का यही तात्पर्य है कि दुनिया में, खासकर आज के

कलियुग में अधिकांश लोग मौकापरस्त होते हैं और आदर्शवादी का नाजायज फायदा उठाने के लिए तैयार रहते हैं। इसलिए आदर्शवाद के साथ अतिरिक्त सतर्कता की जरूरत होती है। दक्षिण भारत में मछली उत्पादन बहुत होता है, समुद्रतटीय क्षेत्र होने के कारण। इसलिए वहाँ अधिकांश लोग मांसाहारी होते हैं। फिर भी वहाँ हिन्दु संस्कृति को बहुत मान-सम्मान मिलता है। इसकी झलक दक्षिण की फिल्मों में खूब मिलती है। मुख्यतः इसी वजह से आजकल वहाँ की फिल्में पूरी दुनिया में धूम मचा रही हैं। सम्भवतः उपरोक्त वृद्ध व्यक्ति की कुंडलिनी शक्ति ऊर्जा की कमी से ढंग से अभिव्यक्त न होकर भूत जैसी बन जाती थी। एकप्रकार से संतुलित आहार से उसके मन को शक्ति मिलती थी, क्योंकि कुंडलिनी मन ही है, मन का एक विशिष्ट, स्थायी, व मज़बूत भाव या चित्र है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि जिससे मन को शक्ति मिलती है, उससे कुंडलिनी को भी खुद ही शक्ति मिलती है। कुंडलिनी को ही सबसे ज्यादा शक्ति मिलती है, क्योंकि कुंडलिनी ही मन का सबसे प्रभावशाली हिस्सा है। इसीलिए योग में संक्षेप में कहते हैं कि कुंडलिनी को शक्ति मिली, मन की बात नहीं होती। योग में कुंडलिनी से मतलब है, बाकि विस्तृत मन से कोई विशेष प्रयोजन नहीं। आप आदिवासियों के झुण्ड के सरदार को आसानी से वश में कर सकते हो, पूरे झुंड को नहीं। जैसे सरदार को वश में करने से पूरा झुंड वश में हो जाता है, उसी तरह कुंडलिनी को वश में करने से पूरा मन वश में हो जाता है। यूँ कह सकते हैं कि कुंडलिनी ही मन का मर्म है। अगर किसी की कुंडलिनी को पकड़ लिया, तो उसके पूरे मन को पकड़ लिया। तभी तो हरेक आदमी अपनी कुंडलिनी के बारे में छुपाता है। साम्प्रदायिक हिंसा ऐसे ही धार्मिक आवेश में होती है, और उसके लिए मन से पछतावा होने पर भी कोई माफी नहीं मांगता, क्योंकि धर्म में ही ऐसा लिखा होता है कि यह अच्छा काम है और जन्नत को देने वाला है। देवता तो उसे लाभ देना चाह रहा था, पर वह लाभ नहीं ले पा रहा था। उसका तनमन देवता के आवेश को सहन नहीं कर पा रहा था। इसलिये देवता उसके लिए भूत या डेमन बन गया था। इसी से बचने के लिए ही हठयोग के अभ्यास से तनमन को स्वस्थ करना पड़ता है, तभी कोई देव-कुंडलिनी को सहन और नियंत्रित करने की सामर्थ्य पाता है। यदि बंदर के हाथ उस्तरा लग जाए, तो दोष उस्तरे का नहीं है, दोष बंदर का है। इसी तरह, मैंने एकबार देखा कि एक देवता के सामने एक गुर (विशेष व्यक्ति जिस पर देवता की छाया पड़ती हो) जब ढोल की आवाज से हिंगरने या नाचने लगा, तो उसकी दिल के दौरे से मौत हो गई। लोगों ने कहा कि उसके ऊपर देवता की बजाय भूत की छाया पड़ी। दरअसल उसका निर्बल शरीर देवता रूप कुंडलिनी के आवेश को सहन नहीं कर पाया होगा। इसीलिए कुंडलिनी योग के लिए उत्तम स्वास्थ्य का होना बहुत जरूरी है। योग की क्रिया स्वयं भी उत्तम स्वास्थ्य का निर्माण करती है। मेरे दादाजी पर भी देवता की छाया उतारी जाती थी। छाया या साया चित्र को भी कहते हैं। यिन-याँग गठजोड़ ही देवता है। उससे जो मन में कुंडलिनी चित्र बनता है, उसे ही देवता की छाया कहते हैं। जब ढोल की आवाज से देवता उनके अंदर नाचता था, तब उनकी साँसे एकदम से तेज हो जाती थीं। उनकी पीठ एकदम सीधी और कड़ी हो जाती थी, सिर भी सीधा, और वे अपने आसन पर ऊपर-नीचे की ओर जोर-जोर से हिलते थे। उस समय उनके दोनों हाथ अगले स्वधिष्ठान चक्र पर जुड़े हुए और मुट्ठीबंद होते थे। ऐसा लगता है कि उनकी कुंडलिनी ऊर्जा मूलाधार से पीठ से होते हुए ऊपर चढ़ रही होती थी। मैंने कभी उनसे पूछा नहीं, अगर मौका मिला तो जरूर पूछूंगा। उस समय कुछ पूछने पर वे हांफते हुए कुछ अस्पष्ट से शब्दों में बोलते थे, जिसे देवता की सच्ची आवाज समझा जाता था। उससे बहुत से काम सिद्ध किए जाते थे, और बहुत से विवादों को निपटाया जाता था। देवता के आदेश का पालन लोग तहेदिल से करते थे, क्योंकि वह आदेश हमेशा ही शुभ और सामाजिक होता था। 5-10 मिनट में देवता की छाया उतरने के बाद वे शांत, तनावमुक्त और प्रकाशमान जैसे दिखते थे। कई बार उसकी थकान के कारण वे दिन में

ही नींद की झपकी भी ले लेते थे। कई बार वह देवछाया थोड़ी देर के लिए और हल्की आती थी। कई बार ज्यादा देर के लिए और बहुत शक्तिशाली आती थी। कई बार नाममात्र की आती थी। कुछेक बार तो बिल्कुल भी नहीं आती थी। फिर कुछ दिनों बाद वह प्रक्रिया दुबारा करनी पड़ती थी, जिसे स्थानीय भाषा में नमाला कहते हैं। साल में इसे 1-2 बार करना पड़ता था, खासकर नई फसल के दौरान। कई बार तात्कालिक विवाद को मिटाने के लिए इमरजेंसी अर्थात आपात परिस्थिति में भी देवता को बुलाना पड़ता था। देव-छाया जितनी मजबूत आती थी, उसे उतना ही शुभ माना जाता था।

वैसे जिन्न अच्छे भी हो सकते हैं, जो किसीका नुकसान नहीं करते, फायदा ही करते हैं। यह उपरोक्तानुसार संस्कारों पर और जिन्न को हैंडल करने के तरीके पर निर्भर करता है। यदि कुंडलिनी जैसी दिव्य शक्ति हमेशा शैतान हुआ करती, तो जिन्न कभी अच्छे न हुआ करते। इसका मतलब है कि कुंडलिनी शक्ति के हैंडलर पर काफ़ी निर्भर करता है कि वह क्या गुल खिलाएगी। सलत या नमाज ही कुंडलिनी योग है। इसमें भी वज्रासन में घुटनों के बल बैठा जाता है। कुछ अल्लाह का ध्यान किया जाता है, जिससे स्वाभाविक है कि माथे पर आज्ञा चक्र क्रियाशील हो जाएगा। तब आगे को झुककर माथे को अर्थात उस पर स्थित आज्ञा चक्र को जमीन पर छुआया या रगड़ा जाता है। उससे अज्ञाचक्र पर कुंडलिनी या अल्लाह का ध्यान ज्यादा मज़बूत होकर शरीर में चारों तरफ एक ऊर्जा प्रवाह के रूप में घूमने लगता है। फिर पीठ को ऊपर उठाकर आदमी फिर से सीधा कर लेता है, और आँखें बंद रखता है। इससे वह घूमती हुई ऊर्जा बोतलनुमा शरीर में बंद होकर बाहर नहीं निकल पाती, क्योंकि आँख रूपी बोतल का ढक्कन भी बंद कर दिया जाता है। जरूरत पड़ने पर जब आदमी दुनियादारी में काम करने लगता है, तो वह कुण्डलीनिनुमा ध्यान बाहर आकर बाहरी दुनिया में दिखने लग जाता है, और उसे सहानुभूति देकर उसकी काम में मदद करता है, और उसे तनाव पैदा नहीं होने देता। फिर अगले सलत के समय ध्यान के बल से वह ध्यान चित्र फिर शरीर के अंदर घुस जाता है, जिसे वहाँ पूर्ववत फिर बंद कर दिया जाता है। आप समझ ही गए होंगे कि इसका क्या मतलब है। फिर भी मैं बता देता हूँ। सलत ही कुंडलिनी योग है। वज्रासन ही योगासन है। अज्ञाचक्र या माथा ही चिराग है। जमीन पर माथा रखना या आज्ञाचक्र के साथ मूलाधार चक्र का ध्यान ही चिराग को जमीन पर रगड़ना है। वैसे भी मूलाधार को जमीनी चक्र अर्थात जमीन से जोड़ने वाला चक्र कहा जाता है। दरअसल माथे को जमीन पर छुआने से आज्ञा चक्र और मुलाधार चक्र के बीच का परिपथ पूरा होने से दोनों आपस में जुड़ जाते हैं, मतलब यांग और यिन एक हो जाते हैं। उससे मन में अद्वैत और उससे प्रकाशमान कुंडलिनी चित्र का पैदा होना ही चिराग से चमकते जिन्न का निकलना है। पीठ और सिर का ऊपर की ओर बिल्कुल सीधा करके उसका शरीर में अंदर ही अंदर ध्यान करना ही उसको बोतल में भरना है। शरीर ही बोतल है। आँखों को बंद करना अर्थात इन्द्रियों के दरवाजों को बंद करना अर्थात इन्द्रियों का प्रत्याहार ही बोतल का मुँह ढक्कन लगाकर बंद करना है। ध्यान चित्र इन्द्रियों से ही बाहर निकलता है और बाहरी जगत की चीजों के ऊपर आरोपित हो जाता है। इसे बोतलनुमा शरीर में कैद रखा जाता है, अर्थात इसे चक्रों पर गोलगोल घुमाया जाता है, और जरूरत के अनुसार बाहर भी लाया जाता रहता है। बाहर आकर यह दुनियावी व्यवहारों व कामों में अद्वैतभाव और अनासक्ति भाव पैदा करता है, जिससे मोक्ष मिलता है। साथ में, भौतिक उपलब्धियां तो मिलती ही हैं। मोक्ष के प्राप्त होने को ही सबकुछ प्राप्त होना कह सकते है। इसीलिए कहते हैं कि जिन्न सबकुछ देता हैं, या मनचाही वस्तुएँ प्रदान करता है। पवित्र कुरान शरीफ में साफ लिखा है कि बिना धुएं की आग से जिन्न पैदा हुआ। हिन्दु धर्म भी तो यही कहता है कि जब यज्ञ की अग्नि चमकीली, भड़कीली और बिना धुएं की हो जाती है, तब उसमें डाली हुई आहुति से यज्ञ का देवता अर्थात कुंडलिनी प्रकट होकर उसे ग्रहण करती है, और तृप्त होती है। मैंने खुद ऐसा कई बार महसूस किया है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि जिन्न और कुंडलिनी एक ही चीज के दो नाम हैं। बुरे जिन्न से बचने के लिए अच्छे जिन्न को बढ़ावा देना चाहिए। अल्लाह या भगवान के ध्यान से और योग से अच्छा जिन्न साथ देता है, नहीं तो बुरा जिन्न हावी हो जाता है। मेरे साथ भी ऐसी ही

दुविधा होती थी। मेरे ऊपर दो किस्म के जिन्न हावी रहते थे। एक जिन्न तो देवतुल्य, ऋषितुल्य, वयोवृद्ध, तेजस्वी, अध्यात्मवादी, कर्मयोगी, और पुलिंग प्रकार का था। दूसरा जिन्न भी हालांकि भूतिया नहीं था, पर भड़कीला, अति भौतिकवादी, विज्ञानवादी, प्रगतिशील, खूबसूरत, जवान और स्त्रीलिंग प्रकार का था। उसमें एक ही कमी थी। वह कई बार भयानक क्रोध करता था, पर मन से साफ और मासूम था, किसी का बुरा नहीं करता था। मैंने दोनों किस्म के जिन्नों से भरपूर लाभ उठाया। दोनों ने मुझे भरपूर भौतिक समृद्धि के साथ जागृति उपलब्ध करवाई। समय और स्थान के अनुसार कभी मेरे अंदर पहले वाला जिन्न ज्यादा हावी हो जाता था, कभी दूसरे वाला। अब मेरी उम्र भी ज्यादा हो गई है, इसलिए मैं अब दूसरे वाले जिन्न का आवेश सहन नहीं कर पाता। इसलिए मुझे अब कुंडलिनी ध्यानयोग की सहायता से पहले वाले जिन्न को ज्यादा बलवान बना कर रखना पड़ता है। मेरा अनुभव इसी इस्लामिक मान्यता के अनुसार है कि लोगों की तरह ही जिन्न की जिंदगियां होती हैं। उनके लिंग, परिवार, स्वभाव आदि वैसे ही भिन्न-भिन्न होते हैं। उनकी उम्र होती है, शरीर की विविध अवस्थाएं होती हैं। वे वैसे ही पैदा होते हैं, बढ़ते हैं, और अंत में मर जाते हैं। मैंने दोनों जिन्नों को बढ़ते हुए महसूस किया, हालांकि धीमी रफ्तार से। अब तो मुझे लगता है कि पहले वाले जिन्न की उम्र पूरी होने वाली है। हालांकि मैं ऐसा नहीं चाहता। उसके बिना मुझे बुरा लगेगा। फिर मुझे किसी नए जिन्न से दोस्ती करनी पड़ेगी, जो आसान काम नहीं है। दोनों जिन्न मेरे सम्भोग से शक्ति प्राप्त करते थे। कुंडलिनी भी इसी तरह तांत्रिक सम्भोग से शक्ति प्राप्त करती है। कई बार तो वे खुद भी मेरे साथ यौनसंबंध बनाते थे। सीधा यौनसंबंध बनाते थे, ऐसा भी नहीं कह सकते, पर मुझे किसीसे यौनसंबंध बनाने के लिए प्रेरित करते थे, ताकि वे उससे शक्ति प्राप्त कर सकते। यदि यौन संबंध से यौन साथी को शक्ति न मिले पर उन जिन्नों को शक्ति मिले, तो यही कहा जाएगा कि जिन्नों से यौन संबंध बनाया, भौतिक यौनसाथी से नहीं। सामाजिक रूप में ऐसा कहते हुए संकोच और शर्म महसूस होती है, पर यह सत्य है। दूसरे वाले जिन्न से मुझे एकसाथ ही हर किस्म का रिश्ता महसूस होता था। एकबार तो पहले वाले जिन्न ने मुझे समलैंगिकता और दूसरे वाले जिन्न ने बलात्कार की तरफ भी धकेल दिया था, पर मैं बालबाल बच गया था। उस समय यौन शक्ति से छाए हुए वे मुझे मन की आँखों से बिल्कुल स्पष्ट महसूस होते थे, और कई दिनों तक मुझे आनंदित करते रहते थे। पहले वाला जिन्न जब मेरे अद्वैतपूर्ण जीवन, कर्मयोग और सम्भोग की शक्ति से अपने उत्कर्ष के चरम पर पहुंचा, तो मेरे मन में कुछ क्षणों के लिए जीवंत हो गया, जो कुंडलिनी जागरण कहलाया। दूसरे वाला जिन्न तो मेरे साथ काफी समय तक पत्नी की तरह भी रहा, उससे बच्चे भी हुए, फिर उसकी उम्र ज्यादा हो जाने से उसने मेरे साथ सम्भोग करना लगभग बंद ही कर दिया। कई बार तो ऐसा लगता था कि वे दोनों जिन्न पति-पत्नि या प्रेमी-प्रेमिका के रूप में थे, हालांकि तलाकशुदा की तरह एकदूसरे से नाराज जैसे लगते थे, और एकदूसरे की ज्यादतियों से बचाने के लिए मेरे पास बारीबारी से आते-जाते थे। इससे मैं संतुलित हो जाया करता था। यह सब मनोवैज्ञानिक अनुभव है, मन के अंदर है, बाहर भौतिक रूप से कुछ नहीं है। उन्होंने मुझसे कभी सम्पर्क नहीं किया। वे मेरे मन में ऐसे रहते थे जैसे किसी पुराने परिचित या दोस्त की याद मन में बसी रहती है। मुझे लगता है कि वे असली जिन्न नहीं थे, बल्कि जिन्न की छाया मात्र थे, अर्थात दर्पण में बने प्रतिबिम्ब की तरह। अगर असली होते, तो उनमें अपना अहंकार होता, जिससे वे मुझे परेशान भी कर सकते थे, और मेरी योगसाधना में विघ्न भी डाल सकते थे। इसका मतलब है कि जिन्न या देवता की छाया ही योगसाधना में मदद करती है, उनका असली रूप नहीं। इसलिए यही कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति में देवता की छाया प्रविष्ट हुई है, असली देवता नहीं। यह अनुभव भी इस्लामिक मान्यता के अनुसार ही है। हिन्दु मान्यता भी ऐसी ही है, क्योंकि चीज एक ही है, केवल नाम में अंतर हो सकता है। हिन्दू मान्यता के अनुसार भूत होते हैं। जैसा यह भौतिक लोक है, वैसा ही एक सूक्ष्म लोक है। जैसे जैसे लोग भौतिक लोक में होते हैं, बिल्कुल वैसे ही सूक्ष्म लोक में भी होते हैं। जैसे-जैसे क्रियाकलाप इस स्थूल भौतिक लोक में होते हैं, बिल्कुल वैसे-वैसे ही सूक्ष्म आध्यात्मिक लोक में भी होते हैं। एकसमान समारोह, मित्रता, वैर, रोजगार, पशु-पक्षी और अन्य सबकुछ बिल्कुल एक जैसा। उस सूक्ष्म लोक के निवासियों को ही भूत कहते हैं। वे आपस में टेलीपेथी से सम्पर्क बनाकर रखते हैं। वे सबको महसूस नहीं होते।

उन्हें या तो योगी महसूस कर सकते हैं, या फिर वे जिन पर उन भूतों का आवेश आ जाए। तांत्रिक योगी तो उन्हें वश में कर सकते हैं, पर साधारण आदमी को वे अपने वश में कर लेते हैं। योगी उन्हें वश में करके उन्हें योगसाधना के बल से देवता या कुंडलिनी में रूपान्तरित कर देते हैं। इसी को भूतसिद्धि कहते हैं। बुरे लोग उनसे नुकसान भी करवा सकते हैं।

यह भी लगता है कि अल्लादिन की कहानी शिवतंत्र या उस जैसी तांत्रिक मान्यता से निकली है। जिसने यह कहानी बनाई, वह गजब का ज्ञानी, तांत्रिक और जागृत व्यक्ति लगता है। सम्भवतः उसे यौन तंत्र को स्पष्ट रूप में सामने रखने में मृत्यु का भय रहा होगा, क्योंकि पुराने जमाने की तानाशाही व्यवस्था में, खासकर इस्लामिक व्यवस्था में क्या पता कौन कब इसका गलत मतलब समझ लेता, और जान का दुश्मन बन जाता। इसलिए उसने रूपक कथा के माध्यम से तंत्र को अप्रत्यक्ष रूप से लोगों के अवचेतन मन में डालने का प्रयास किया होगा, और आशा की होगी कि भविष्य में इसे डिकोड करके इसके हकदार लोग इससे लाभ उठाएंगे। एक प्रकार से उसने गुप्त गुफा में खजाने को सुरक्षित कर लिया, और रूपक कथा के रूप में उस ज्ञान -गुफा का नक्शा भूलभूलैया वाली पहेली के रूप में छोड़ दिया। फिल्मों में दिखाए जाने वाले ऐसे मिथकीय खोजी अभियान इसी रहस्यात्मक तंत्र विज्ञान को अभिव्यक्त करने वाली मनोवैज्ञानिक चेष्टा है। इसीलिए वैसी फिल्में बहुत लोकप्रिय होती हैं। वज्र पर जहाँ यौन संवेदना पैदा होती है, उस बिंदु को चिराग कहा गया है, क्योंकि वहाँ पर योनि-रुपी जमीन से रगड़ खाने पर उसमें संवेदना-रूपी प्रकाशमान ज्योति प्रज्वलित हो जाती है। उस प्रकाशमान ज्योति पर कुंडलिनी रूपी जिन्न पैदा हो जाता है। बोतल चिराग के साथ ही रखी होती है। इससे वह कुंडलिनी-जिन्न बोतल के अंदर प्रविष्ट हो जाता है। नाड़ी-छल्ला ही वह बोतल है, जो वज्रशिखा की सतह पर संवेदना-बिंदु से शुरु होकर मुलाधार से होता हुआ पीठ में ऊपर चढ़ता है, और आगे के नाड़ी चैनल से होता हुआ नीचे आकर फिर से उस संवेदना-बिंदु से जुड़ जाता है। वज्र का वीर्यनिकासी-द्वार ही उस बोतल का मुँह है। तांत्रिक विधि से वीर्यपतन को रोककर वीर्यशक्ति को ऊपर चढ़ाना ही जिन्न को बोतल में भरना है। वीर्यपात रोकने को ही बोतल के मुंह को ढक्कन से बंद करना कहा गया है। साँसों की शक्ति के दबाव से ही जिन्न बोतल के अंदर घूमता है। अंदर को जाने वाली सांस से वह बोतल के पिछले हिस्से से ऊपर चढ़ता है, और बाहर आने वाली सांस से बोतल की अगली दीवार को छूता हुआ नीचे उतरता है। अगर मूलाधार से लेकर सहसरार तक के पूरे शरीर को बोतल माना जाए, तो पीठ को बोतल की पिछली दीवार, और शरीर के आगे के हिस्से को बोतल की अगली दीवार कह सकते हैं। चक्रोँ को जोड़ने वाली मध्य रेखा को बोतल की दोनों मुख्य दीवारों की अंदरूनी सतह पर स्थित एक विशिष्ट राजमार्ग कह सकते हैं, जिस पर जिन्न दौड़ता है। चक्रोँ को जिन्न के विश्रामगृह कह सकते हैं। वज्र को बोतल की गर्दन कह सकते हैं। आश्चर्यजनक समानता रखने वाला रूपक है यह। इस बोतल-रूपक के सामने तो मुझे हिन्दुओं का नाग-रूपक भी फीका लग रहा है। पर नाग-रूपक इसलिए ज्यादा विशेष प्रभावशाली हो सकता है, क्योंकि नाग जीवित प्राणी और कुदरती है, उसका जमीन वाला चौड़, चौड़ा फन, दोनों को जोड़ने वाला बीच वाला पतला भाग, और कमर का गड्ढा बिल्कुल मानव-शरीर की बनावट की तरह है। जब जैसा रूपक उपयुक्त लगे, वैसे का ही ध्यान किया जा सकता है, कोई रोकटोक नहीं।

बोतल का ढक्कन खोलकर जिन्न को बाहर निकलने देने का मतलब है कि नियंत्रित और तांत्रिक तरीके से वीर्यपात किया। जिन्न के द्वारा 'क्या हुक्म मेरे आका' कहने का मतलब है, जिन्न या कुंडलिनी का बाहरी जगत में स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होना। हालांकि जिन्न मन में ही होता है, पर वीर्य शक्ति के साथ बाहर गया हुआ महसूस होता है। फिर जिन्न के द्वारा आदमी के सभी कामों में मदद करने का अर्थ है, जिन्न का सभी कामों के दौरान एक विश्वासपात्र मित्र के रूप में अनुभव होते रहना। इससे दुनिया में अद्वैत और अनासक्ति का भाव बना रहता है, जिससे भौतिक सुखों के साथ आध्यात्मिक मुक्ति भी मिलती है। कुण्डलिनी रूपी जिन्न को शरीररूपी बोतल के अंदर कुण्डलिनी-योग-ध्यान की खुराक से

लगातार पालते रहना पड़ता है। इससे वह शक्ति का संचय करता रहता है, और बाहर खुले में छोड़े जाने पर योगसाधक के बहुत से काम बनाता है। यह ऐसे ही है जैसे राजा लोग अपने अस्तबल में घोड़ों का पालन-पोषण बड़े समर्पण और प्यार से करवाते थे। उससे बलवान बने घोड़े जब बाहर खुले में निकाले जाते थे, तो बड़ी निष्ठा और समर्पण से राजा के काम करते और करवाते थे, शिकार करवाते थे, रथ खींचते थे, युद्ध में मदद करते थे, भ्रमण करवाते थे आदि।

पानी यिन है, और तनाव व भागदौड़ से भरा मनुष्य का तनमन याँग है। इसीलिए झील आदि के पास शांति मिलती है। वृक्ष का जड़ अर्थात अचेतन आकार यिन है, और उसमें जीवन याँग है। इसीलिए वृक्ष को देवता कहते हैं, और लोग अपने घरों के आसपास सुंदर वृक्ष लगाते हैं। मुलाधार यिन है, आज्ञा या सहस्रार चक्र यांग है। पत्थर आदि की चित्रविचित्र जड़ या मृत प्रतिमाऐं और मूर्तियां यिन है, और उनमें चेतन या जीवित देवता का ध्यान याँग है। यिनयांग की सहायता से सिद्ध होने वाला दुनियादारी वाला व्यावहारिक योग ही क्रियाशील कुंडलिनीयोग है। दूसरी ओर, कई बार बैठक वाले कुंडलिनी योगी की कुंडलिनी उम्रभर घुमती रहती है, पर वह जागृत नहीं हो पाती, और अगर होती है, तो बड़ी देर से होती है। इसीको इस तरह से कहा गया है कि गणेश ने ब्रह्मांड की परिक्रमा पहले कर ली। गणेश का विवाह कर दिया गया। उसको सिद्धि और बुद्धि नाम की दो कन्याएँ पत्नियों के रूप में प्रदान कर दी गईं। इनसे उसे क्षेम और लाभ नाम के दो पुत्र प्राप्त होते हैं। दरअसल यिन-यांग गठजोड़ दुनियादारी से सम्बंधित है। यह अनेक प्रकार के विरोधी गुणों वाले लोगों को साथ लेकर चलने की कला है। नेतृत्व की कला है। इससे प्रेमपूर्ण भौतिक सम्बंध बनते हैं, दुनिया में तरक्की मिलती है। नए-नए अनुभव मिलते हैं। इन्हीं दुनियावी उपलब्धियों को सिद्धि और बुद्धि कहा गया है। जबकि बैठक वाला कुंडलिनी योगी दुनिया से विरक्त की तरह रहता है। इससे उसे दुनियावी भौतिक लाभ नहीं मिलते। इसीको कार्तिकेय का अविवाहित होकर रहना बताया गया है। ऐसा उसने नारद मुनि की बातों में आकर नाराज होकर किया। नारद मुनि ने उसके कान भरे कि शिवपार्वती ने उसके साथ बहुत बड़ा अन्याय किया है, और उसे गणेश की तुलना में बहुत कम आंका है। इससे वह नाराज होकर अपने मातापिता के निवासस्थान कैलाश पर्वत को छोड़कर क्रौंच पर्वत को चला जाता है, और वहीँ स्थायी रूप से निवास करने लगता है। आज भी उत्तराखंड स्थित क्रौंच पर्वत पर कार्तिकेय का रमणीय मंदिर है। शिवपार्वती आज भी प्रेम के वशीभूत होकर साल में एकबार उससे मिलने आते हैं। तब वहाँ मेला लगता है। वास्तव में कुंडलिनी योगी का मन ही नारद मुनि है। जब वह देखता है कि तांत्रिक किस्म के शरीरविज्ञान-दार्शनिक लोग दुनिया में हर किस्म का सुख, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष एकसाथ प्राप्त कर रहे हैं, पर उसे न तो माया मिल रही है और न ही राम, तब वह अपनी तीव्र कुंडलिनी योगसाधना कम कर देता है। इस प्रकार से हम गणेश जैसे स्वभाव वाले लोगों को तांत्रिक कर्मयोगी भी कह सकते हैं। इसीलिए गणेश चतुर व्यापारियों का मुख्य देवता होता है। आपने भी अधिकांश व्यापार-प्रचारक वार्षिक कैलेंडरों पर गणेश का चित्र बना देखा ही होगा। और उनमें साथ में लिखा होता है, 'शुभ लाभ'। प्राचीन सभ्यताओं में इसीलिए देवीदेवताओं के प्रति भरपूर आस्था होती थी। पर बहुत से अब्रहामिक एकेश्वरवादियों ने उनका विरोध करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। आज भी आदिवासी जनजातियों में यह देवपूजन प्रथा विद्यमान है। हरेक कबीले का अपना खास देवता होता है। हिमालय के उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में मैंने खुद यह शक्तिशाली अद्वैत व कर्मयोग पैदा करने वाली प्रथा देखी है। हिमाचल का कुल्लू जिले का मलाणा गाँव तो इस मामले में विश्वविख्यात है। वहाँ सिर्फ देवता का प्रशासन काम करता है, किसी सरकारी या अन्य तंत्र का नहीं। उपरोक्तानुसार पत्थर आदि की चित्रविचित्र जड़ प्रतिमाऐं और मूर्तियां यिन है, और उनमें चेतन देवता का ध्यान याँग है। इस यिन -यांग के मिश्रण से ही सभी भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियाँ मिलती हैं, हालांकि मिलती हैं कुंडलिनी के माध्यम से ही, पर रास्ता कर्मयोग व दुनियादारी वाला है। मतलब कि बैठक वाला कुंडलिनी योगी ज्यादा समय दुनिया से दूर नहीं रह सकता। वह जल्दी ही हतोत्साहित होकर अपनी कुंडलिनी को सहस्रार से आज्ञा चक्र को उतार देता है। वहाँ वह बुद्धिपूर्वक भौतिक जीवन जीने लगता है, हालांकि यिन-यांग गठजोड़ अर्थात शिवपार्वती से दूर रहकर,

क्योंकि उसे दुनियादारी की आदत नहीं है। साथ में, वह ज्यादा ही आदर्शवादी बनता है। यही उसका शिवपार्वती अर्थात परमात्मा से नाराज होना है। दरअसल शिवपार्वती गठजोड़ ही असली परमात्मा हैं। अकेले शिव भी पूर्ण परमात्मा नहीं, और अकेली पार्वती भी नहीं। सहस्रार ही कैलाश और आज्ञाचक्र ही क्रौंच पर्वत है, जैसा कि एक पिछली पोस्ट में बताया गया है। शिव परमात्मा उसे अपनी तरफ आकर्षित करते रहते हैं, पुत्र-प्रेम के कारण। वैसे भी जीव शिव परमात्मा का पुत्र ही तो है। कई बार अल्प जागृति के रूप में उससे मिल भी लेते हैं। यही शिवपार्वती का प्रतिवर्ष उससे मिलने आना कहा गया है।

कुंडलिनी योग ही असली एकेश्वरवाद है, जो दुनिया के सभी धर्मों और सम्प्रदायों का मूल सारतत्त्व है

दोस्तो, मैं पिछली पोस्ट में जिन्न और कुंडलिनी की समतुल्यता के बारे में बात कर रहा था कि जब जिन्न मेरे साहसरार चक्र में जीवंत जैसा होकर मेरे से एकरूप हो गया, मतलब जब देखने वाला मैं और दिखने वाला जिन्न, दोनों अभेद हो गए, तब वही कुंडलिनी जागरण कहलाया। शास्त्रों में भी समाधि या कुंडलिनी जागरण की यही परिभाषा है।क्यों न हम जिन्न की बजाय फरिश्ता कहें, क्योंकि यह मुझे ज्यादा उपयुक्त लग रहा है। क्योंकि वह असली जिन्न न होकर उसका दर्पण-प्रतिबिम्ब था। मतलब उसमें अपनी स्वतंत्र इच्छा नहीं थी, वह ईश्वर की इच्छानुसार अच्छाई की तरफ ही चलता था। फरिश्ता भी ऐसा ही होता है। जिन्न का क्योंकि अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता है, इसलिए वह किसी भी दिशा में ले जा सकता है। इसे यूँ समझ सकते हैं कि जिन्न किसी संसारचक्र में भटकते हुए जीव या मनुष्य का मानसिक चित्र है, जैसे किसी आदमी की याद मन में बसी होती है। वह आदमी वर्तमान में कहीं जीवित अवस्था में भी हो सकता है, और मृत्यु के बाद की पारलौकिक प्रेत अवस्था में या किसी अन्य योनि में भी। इसका मतलब है कि वह जो इच्छा या कर्म करेगा, वह टेलीपेथी आदि के माध्यम से उसके चित्र तक प्रसारित हो जाएंगे, जो उसको मन में धारण करने वाले साधक को जरूर परेशान करेंगे। साथ में, उसकी याद के साथ उसके आसक्ति आदि दुर्गुण भी तो मन में बसे ही होंगे। साधक को अपनी दृढ इच्छाशक्ति से उन्हें दबाना पड़ता है। इसीलिए कहते हैं कि जिन्न को सही रास्ते पर लगाए रखने के लिए मेहनत करनी पड़ती है। पर इसके विपरीत फरिश्ता किसी ऐसे व्यक्ति का मानसिक चित्र होता है, जो यदि जीवित है, तो जीवन्मुक्त की तरह इच्छारहित होता है, और यदि मृत है, तो भी या तो मुक्त होता है, या किसी दिव्यलोक में होता है, किसी जीव-योनि में नहीं जन्मा होता है। साथ में, उसकी याद के साथ उसके अनासक्ति आदि दिव्य गुण भी मन में खुद ही बसे होते हैं। इसलिए फरिश्ता हमेशा तटस्थ और अछूता रहता है। इसलिए वह साधक की साधना में व्यवधान न डालकर साधना में एकप्रकार से मदद ही करता है। इसीलिए कहते हैं कि गुरु या आध्यात्मिक प्रबुद्ध या मुक्त व्यक्ति या देवता का ध्यान करना चाहिए। फिर कहते हैं कि फरिश्ता प्रकाश से बना होता है, जिन्न की तरह आग से नहीं। वैसे भी प्रकाश आग से ज्यादा दिव्य, शांत, सूक्ष्म, सतोगुण युक्त और तेजस्वी होता है। आसक्ति और अद्वैत जैसे आध्यात्मिक गुणों से भरा व्यक्ति पहले से ही सूक्ष्म होता है, इसलिए स्वाभाविक है कि उसका मानसिक चित्र तो और भी ज्यादा सूक्ष्म होगा। इसीलिए फ़रिश्ते को प्रकाश कहा है। दूसरी ओर, जिन्न ज्यादातर भड़कीले और सेक्सी लोगों के चित्र होते हैं। इसलिए वे ज्यादा स्थूल होते हैं, आग की तरह। इसीलिए दुनिया में सेक्सी लोगों का ज्यादा बोलबाला रहता है। दुनिया में फँसे लोगों को फ़रिश्ते बनने वाले साधु लोग कहाँ पसंद आने वाले। मुझे साधु और स्वादू एकसाथ प्राप्त हुए थे, इसलिए मैं साधु से ऊबा नहीं। स्वादू मतलब सेक्सी लोगों ने साधु के प्रति आकर्षण बना के रखा, क्योंकि सम्भवतः साधु

और स्वादू के बीच अच्छी आपसी ट्यूनिंग थी। यह ऐसे ही था जैसे चीनी के साथ कड़वी दवा भी मीठी लगने लगती है।इसीलिए तो मेरे मन में एक जिन्न, और एक फरिश्ता, दोनों एकसाथ स्थायी तौर पर बस गए, जैसा कि मैं पिछली पोस्ट में बता रहा था। यह एक अच्छी टेक्टिक साबित हो सकती है। जिन्न ज्यादातर प्रणय प्रेम वाली आग से बने होते हैं। जब असफल प्रेम संबंध आदि के कारण सैक्स की आग मन में लम्बे समय तक दबी रहती है, तब वह जिन्न बन जाती है , इसीलिए तो जिन्न सम्भोग के भूखे होते हैं। मुझे तो लगता है कि बिना धुएं की आग वज्र की यौन संवेदना को ही कहा गया है, क्योंकि वह आग की तरह प्रकाश और गर्मी से भरी होती है, और उसमें धुआँ भी नहीं होता। जिंग यौन-संवेदना की ऊर्जा को कहते हैं। हो सकता है कि जिंग से ही जिन्न शब्द बना हो। ये दोनों शब्द एक ही बिरादरी के हैं। एकसाथ कई मतलब भी हो सकते हैं इसके। जिन्न को अच्छा बनाना पड़ता है, पर फरिश्ता स्वभाव से ही अच्छा होता है। फरिश्ता जिन्न के बुरे स्वभाव पर लगाम लगा कर रखता है। अच्छे जिन्न और फरिश्ते के स्वभाव में ज्यादा अंतर नहीं होता है। अच्छा जिन्न साधना या संस्कार की कमी से बिगड़ भी सकता है, पर फरिश्ता नहीं बिगड़ता। सम्भोग से फरिश्ते भी शक्ति प्राप्त करते हैं, पर वे उस शक्ति से आदमी को कुंडलिनी जागरण की तरफ ले जाते हैं, जबकि जिन्न अधिकांशतः दुनियादारी की तरफ ले जाते हैं। साथ में मैं बता रहा था कि कैसे कुंडलिनी जागरण के बाद आदमी का रुझान लेखन की तरफ बढ़ता है। दरअसल लेखन भी एक कुंडलिनी योग ही है, एक साक्षीभाव योग या विपासना योग। लिखने से पुरानी बातें मानसपटल पर अनासक्ति के साथ उभर कर विलीन होने लगती हैं, जिससे अन्तःकरण स्वच्छ होता जाता है। कुंडलिनी योग में भी ऐसा ही होता है। कुंडलिनीजागरण या कुंडलिनी ध्यान की शक्ति से चित्रविचित्र नए-पुराने विचार मन में साक्षीभाव या अनासक्तिभाव से उभरते हुए इसी तरह विलीन होते रहते हैं। जब तक पुरानी घटनाओं को मन में पुनः न उभारा जाए, तब तक वे वैसी ही मन में दबी रहती हैं, और आदमी को आगे बढ़ने से रोकती हैं। मैं यह भी बता रहा था कि जिन्न आदि सूक्ष्म या आकाशीय प्राणी केवल मन में होते हैं, बाहर कहीं नहीं। इसका मतलब है कि दरअसल वे होते तो किसी भौतिक पुरुष या स्त्री के चित्ररूप ही हैं, पर उनसे पूरी तरह अलग होते हैं। आप अपना चेहरा दर्पण में देख लो। आप खुद कहोगे कि मैं यह नहीं हूँ। आदमी का असली रूप उसका मन होता है, चेहरा नहीं। आदमी अपने मस्तिष्क में बने उस मानसिक चित्र के साथ अपनी भावनाएं जोड़ देता है, अपना मन जोड़ देता है, अपनी मान्यताएं जोड़ देता है, अपनी धारणाएं जोड़ देता है। इसीलिए कहते हैं कि दुनिया हमें वैसी ही दिखती है, जैसी इसे हम देखना चाहते हैं, या जैसा हमारा अपना स्वभाव है, दुनिया का अपना कोई रूप नहीं। आप अपने गुरु का ध्यान वर्षों तक करो, उससे कुंडलिनी जागरण भी प्राप्त कर लो, फिर अगर उनसे अचानक मिलो, तो वे आपको पहचान भी नहीं पाएंगे। आपने गुरु के बाहरी रूप का ध्यान किया, उनके मन का नहीं। किसीके मन का ध्यान कोई नहीं कर सकता, क्योंकि वह दिखता नहीं। मेरे कॉलेज टाइम का एक नवयुवक एक लड़की को बहुत चाहता था। जब वह कई वर्षों बाद उससे मिला, तो उसने उसे पहचानने से भी इंकार कर दिया। वह इस गम को बर्दाश्त न कर सका, और उसने नजदीक बने पुल से नदी में छलांग लगाकर आत्महत्या कर ली। वैसे तो वह पहले भी आत्महत्या का प्रयास कर चुका था, अवसादग्रस्त की तरह था, और कुछ हद तक शराब की लत के अधीन भी था। दरअसल वह यौनप्रेम के वशीभूत होकर लड़की के बाहरी रूपरंग का ही ध्यान करता था, उसके मन अर्थात उसके असली स्वरूप का तो नहीं। अपने मन में बने उसके चित्र को उसने अपना स्वरूप दिया हुआ था। एकप्रकार से वह अपने से ही प्यार करता था। वस्तुतः हर कोई अपने से ही प्यार करता है, पर वह उसे किसी बाहरी व्यक्ति पर झूठमूठ ही आरोपित करता है, और फँसता है। कई चालाक लोग मीठी-मीठी बातें बनाकर इस झूठ को मनवा भी देते हैं, जिससे कई बार प्रेमिका उनके जाल में फँस भी जाती है। इसीलिए पतंजलि योग में उस चीज के चित्र को ध्यान का आलम्बन कहा है, जिसका मन में ध्यान किया जाता है। दरअसल ध्यान अपना ही होता है, इसीलिए मानसिक चित्र को ध्यान के लिए सहारा कहा है, असली ध्यान की वस्तु नहीं। इसीलिए ध्यान को आत्मानुसन्धान भी कहा जाता है, कुंडलिनी अनुसन्धान या जगत अनुसन्धान नहीं। दरअसल कुंडलिनी ध्यान या कुंडलिनी जागरण आत्मानुसन्धान का एक जरिया है, असली आत्मानुसन्धान

नहीं। आपने फिल्म मुन्नाभाई एमबीबीएस में भी देखा होगा कि मुन्नाभाई को मन में दिखने वाला गाँधी उसे वही बात बताता था जो बात उसको खुद को पता होती थी। जो उसे खुद पता नहीं होता था, उसे उसका गाँधी भी नहीं बता पाता था। दरअसल गाँधी के बारे में किताब पढ़ कर उसका मन गाँधी जैसा बन गया था, पर उसके मन ने उसे इस भ्रम में डाल दिया कि गाँधी खुद उसके अंदर बस गए हैं। ये बनावटी तरीका बढ़िया है कि सुबह-शाम एक विशिष्ट मानसिक चित्र का ध्यान कर लो, और जिंदगी मजे से जीते रहो। इससे सब कुछ किया या भोगा हुआ उस चित्र के द्वारा किया और भोगा हुआ माना जाएगा। आदमी खुद सब चीजों से अछूता रहेगा, अनासक्त रहेगा, जल में पड़े कमलपत्र की तरह। ऐसे ही जैसे मुन्नाभाई के लिए सबकुछ गाँधी कर रहा था, जबकि दरअसल वह खुद ही सबकुछ कर रहा था। यही दैनिक कुंडलिनी योग है। यही दैनिक पूजा-अराधना है। यही दैनिक संध्या-वंदन है। यह एक आश्चर्यजनक आध्यात्मिक मनोविज्ञान है, जो मुक्ति की ओर ले जाता है।

ईसाई धर्म में ये मान्यता है कि गिरे हुए फ़रिश्ते ने औरतों के साथ सम्भोग करके मानव जाति को आगे बढ़ाया। ऐसे बहुत से पुराने चित्र या शिलालेख हैं जिनमें राक्षस को औरत के साथ सम्भोगरत दिखाया गया है। इसीलिए पुराने समय में औरतों को ज्यादा सजधज कर खुले में बाहर घूमने की ज्यादा छूट नहीं होती थी। गिरा हुआ फरिश्ता दरअसल गिरा हुआ मन या गिरी हुई कुंडलिनी है, क्योंकि कुंडलिनी चित्र मन का प्रतिनिधि है। वही कुंडलिनी चित्र फरिश्ता है। कुंडलिनी कभी सहसरार में होती थी। आदमी की बदनीयती और बदमिजाज से वह नीचे गिरती रही, और सभी चक्रों को बेधते हुए मूलाधार चक्र रूपी अंधकूप में गिर गई। वहाँ से फिर ऊपर उठने के लिए वह सम्भोग का सहारा लेती है। फरिश्ते, शाश्वत फरिश्ते या आरकेंजल, और पवित्र आत्मा के बीच आपसी संबंध के बारे में भी लोगों के बीच भ्रम सा बना रहता है। दरअसल तीनों एक ही चीज है तत्त्वतः। एक ही शक्ति तत्त्व को समझाने के लिए तीन तत्वों में विभाजित किया गया है। पवित्र आत्मा को परमात्मा का अनादि सहचर और उससे अभिन्न माना गया है, जैसे सूर्यरश्मि सूर्य से अभिन्न है। शिव की शक्ति भी बिल्कुल ऐसी ही है। इसका मतलब कि अनादि शक्ति ही पवित्र आत्मा या हॉली स्पिरिट है। साधारण फरिश्ते को अस्थायी और नश्वर कहा गया है। लोगों के व्यक्तिगत आध्यात्मिक गुरु भी ऐसे ही होते हैं, जैसा मैंने अपने फरिश्ते बने गुरु के बारे में भी बताया है। वे सबके अलग-अलग हो सकते हैं, और अपने शिष्य तक ही सीमित रहते हैं। शाश्वत फ़रिश्ते या आरकेंजल हमारे शाश्वत वैदिक देवता हैं, जैसे गणेश, दुर्गा, शिव आदि। इनके ध्यानरूप मानसिक चित्र हर युग में लोगों को मुक्ति की तरफ ले जाते रहते हैं। मुझे लगता है कि बहुत से लोग इनमें मनमाना अंतर ढूंढ कर आपस में झगड़ा करते रहते हैं, और असली चीज से वँचित रह जाते हैं।

पिछली पोस्ट में मैं यह भी बता रहा था कि बहुईश्वरवादियों और एकेश्वरवादियों के बीच किस तरह वैरविरोध चलता रहता है। धर्म से इन विचारधाराओं का कोई लेनादेना नहीं है, क्योंकि ये किसी भी धर्म में हो सकती हैं। दरअसल ये व्यक्ति के मानसिक या आध्यात्मिक स्तर पर निर्भर करता है कि वह किस विचारधारा को मानता है। कोई व्यक्ति बहुईश्वरवादी धर्म से ताल्लुक रखता हुआ भी एकेश्वरवादी हो सकता है। इसी तरह कोई शख्स एकेश्वरवादी धर्म से ताल्लुक रखने पर भी बहुईश्वरवाद अर्थात द्वैतवाद से ग्रस्त हो सकता है। असली व अध्यात्म वैज्ञानिक विचारधारा तो एकेश्वरवादी ही है। कुंडलिनी योग भी एकेश्वरवादी ही है। कुंडलिनी योग एकाग्रता से प्राप्त होता है। एकाग्रता मतलब एकाग्र ध्यान का शाब्दिक अर्थ है, एक अग्र अर्थात एक चीज आगे, बाकि सब पीछे। वही सबसे आगे रहने वाली चीज ही कुंडलिनी है। दरअसल कोई भी धर्म बहुईश्वरवादी नहीं है, केवल भ्रम से ऐसा लगता है। कोई धार्मिक संप्रदाय यदि गणपति की आराधना करता है, तो केवल गणपति की ही करता है, किसी दूसरे देवता की नहीं। इसी तरह कोई शाक्त संप्रदाय यदि केवल दुर्गा की पूजा करता है, तो वह बहुईश्वरवाद कैसे हुआ। मतलब कि साम्प्रदायिक स्तर पर कोई भी धर्म बहुईश्वरवादी नहीं है। यह भी मैंने पिछली पोस्ट में बताया था कि कैसे देवमूर्ति आदि की पूजा से यिनयांग गठबंधन के बनने से मन की एकमात्र कुंडलिनी क्रियाशील हो जाती है। यदि कोई विविध प्रकार की देवमूर्तियों की पूजा भी करे, तो भी वह

बहुईश्वरवादी नहीं है, क्योंकि सभी से यिन-यांग गठबंधन बनता है, जिससे एकमात्र कुंडलिनी को ही बल मिलता है, अन्य किसी को नहीं। इसके विपरीत, एकेश्वरवादी धर्म को मानने वाला व्यक्ति यदि कुंडलिनी और योग को न माने, तो वह बहुईश्वरवाद या द्वैत से भरा हुआ व्यक्ति है। जब उसके मन में कोई एकमात्र चीज अर्थात कुंडलिनी स्थायी तौर पर हमेशा स्थिर नहीं रहेगी, तो स्वाभाविक है कि उसका मन विविधता से भरे हुए द्वैतपूर्ण संसार में भटका रहेगा। फिर ऐसे द्वैतपूर्ण व्यक्ति को एकेश्वरवादी कैसे माना जा सकता है। दरअसल कुंडलिनी ही वह ईश्वर है, जिसकी हम ध्यान के रूप में पूजा कर सकते हैं। वह खुद पूर्ण परब्रह्म ईश्वर तक ले जाती है। सीधे तौर पर तो हम निराकार ब्रह्म को न तो देख सकते हैं और न ही अनुभव कर सकते हैं, फिर उसकी पूजा कैसे की जा सकती है। अगर पूजा करने की कोशिश की जाए, तो कमोबेश कुंडलिनी ही उस पूजा को स्वीकार करने के लिए मन में प्रकट होने लगती है, हालांकि उतनी नहीं जितनी सीधे कुंडलिनी ध्यान से प्रकट होती है। फिर क्यों न सीधे ही कुंडलिनी ध्यान अर्थात कुंडलिनी योग किया जाए। यदि निराकार ईश्वर की पूजा करने वाला एकेश्वरवादी मन में पैदा हो रही एकमात्र कुंडलिनी का बलपूर्वक विरोध करेगा, तब तो मानसिक ऊर्जा के पास विविधता से भरे संसार के रूप में उजागर होने के सिवाय कोई चारा नहीं बचेगा। मतलब कि ब्रह्म अर्थात एकेश्वर उपासक का मन द्वैत से भरे संसार से भर जाएगा। फिर वह एकेश्वरवादी कहाँ रहा। इसीलिए कहते हैं कि जैसा दावा किया जाता है या जैसा दिखता है, हमेशा वैसा नहीं होता, बल्कि कई बार बिल्कुल विपरीत होता है। सच्चाई को जानने के लिए मनोवैज्ञानिक खोजबीन करनी पड़ती है।

जो शक्ति शरीर के अंदर है, वही बाहर भी है। अंदर भी वह शिव से मिलना चाहती है इसलिए पीठ से होकर ऊपर चढ़ती है। वैसे तो वह अव्यक्त अर्थात निराकार है पर खुद को अभिव्यक्त करने के लिए मन के संसार का निर्माण करती है। कुंडलिनी चित्र उस मन का सबसे प्रभावशाली अंश होता है। शक्ति उसीके रूप में जागृत होकर शिव से एकाकार होती है। शक्ति या ऊर्जा का अपना कोई रूप नहीं होता। वह किसी संवेदना के रूप में ही अनुभव हो सकती है। संवेदनाओं में भी मानसिक चित्र में सबसे अधिक संवेदना छुपी होती है, उनमें भी व्यक्तिविशेष के चित्रों में, उनमें भी चिरपरिचित के चित्रों में, और उनमें भी गुरु या देव या पूर्वज के चित्र में सबसे अधिक संवेदना छिपी होती है। वैसे सैद्धांतिक रूप से देव -छाया में सबसे अधिक संवेदना छुपी होती है, अर्थात देवछाया के रूप में शक्ति सर्वाधिक अभिव्यक्त होकर सबसे आसानी से जागृत हो सकती है। देव मतलब अद्वैत, और देवछाया मतलब अद्वैत भाव की सहायता से मन में बनने वाला पवित्र व स्थायी चित्र। इससे जाहिर होता है कि जागृति के लिए सबसे जरूरी दो चीजें हैं, शक्ति और देवछाया। देवछाया को हम कुंडलिनी चित्र या संक्षेप में कुंडलिनी या पवित्र भूत या जिन्न या फरिश्ता भी कह सकते हैं, जैसा कि पिछली पोस्ट में बताया गया है। बाहर भी वह शक्ति इसी तरह विविध स्थूल संसार का निर्माण करती है। उस संसार में कुछ विशेष क्षेत्र भी होते हैं, जैसे भारत देश, उसमें भी हरिद्वार या काशी, या अन्य विशेष व सुन्दर पर्यटन स्थल आदि। उन विशेष क्षेत्रों के रूप में शक्ति सबसे ज्यादा अभिव्यक्त होती है। तभी तो वैसे क्षेत्रों में जागृति की सम्भावना ज्यादा होती है। इसीलिए आदमी ऐसे सुन्दर क्षेत्रों के निर्माण में लगा रहता है, जहाँ उसका मन प्रफुल्लित होकर चरम रूप में अभिव्यक्त हो जाए। मन की या कुंडलिनी शक्ति की चरम अभिव्यक्ति को ही तो कुंडलिनी जागरण कहते हैं। वैसे तो प्रकृति या समष्टि शक्ति भी ऐसे सुन्दर क्षेत्रों के निर्माण में लगी रहती है, पर जीव विशेषकर मनुष्य के रूप में व्यष्टि शक्ति इसे तेजी प्रदान करने और उसमें चार चाँद लगाने में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पर आजकल आदमी प्रकृति के साथ जरूरत से ज्यादा छेड़छाड़ करके उसके कार्य में बाधा डाल रहा है, जो उसके अस्तित्व के लिए ठीक नहीं है।

व्यष्टि और समष्टि शक्ति में अभिन्नता का मतलब है कि शरीर के अंदर शक्ति साधना से आदमी कुछ हद तक बाहरी स्थूल शक्ति पर नियंत्रण हासिल कर सकता है। उदाहरण के लिए, कल्पना करो कि कोई आदमी बाहरी बुरी शक्ति के प्रभाव में आकर किसी दुर्घटना का शिकार होने वाला होता है।

आदमी को इसका आभास हो जाता है और वह कुंडलिनी का ध्यान करते हुए अतिरिक्त सतर्क हो जाता है। कुंडलिनी के ध्यान से उसके मन का अंधेरा छंट जाता है, जिससे प्रभावित होकर बाहरी शक्ति का अंधेरा भी कुछ हद तक छंट जाता है, जिससे वह बाहर भी उसे बचाने के लिए विशेष प्रयास करती है, जैसे बचने के लिए सुरक्षित जगह या सामान मिल जाना। यह कुछ हद तक ही होता है, इसलिए केवल इसके सहारे भी नहीं रहा जा सकता, पर यह कुछ न कुछ मदद जरूर करती है। यह बहुत दूर से या प्रार्थना से भी हो सकता है, क्योंकि शक्ति सर्वव्यापी है। होता क्या है कि किसी विपत्ति में फंसे व्यक्ति को मारने आई बुरी या काली शक्ति उसके परिचित व्यक्ति को देशांतर में भी महसूस हो सकती है। वह यदि कुंडलिनी ध्यान से उसे शांत कर दे, तो वह उस विपत्ति में पड़े व्यक्ति के लिए शांत हो सकती है। सम्भवतः यही प्रार्थना का रहस्य है।

जिसको शरीर में अपनी इच्छानुसार शक्ति को घुमाना आ गया, लगता है उसे बहुत कुछ आ गया। अशिक्षित लोग उसके लिए यौन क्रीड़ा का इस्तेमाल करते थे। इससे संवेदना रूपी शक्ति के शरीर के निचले हिस्सों में महसूस होने से, उस शक्ति को बल देने के लिए मस्तिष्क की शक्ति आगे से होते हुए नीचे उतरती थी, जिससे मस्तिष्क भी हल्का हो जाता था, और नीचे के सारे चक्र भी शक्ति से तृप्त हो जाते थे, जिससे पूरा शरीर तृप्त हो जाता था। हालांकि उन्हें कम और अल्पकालिक लाभ मिलता था, क्योंकि वे केवल संवेदना से जुड़े द्वैत से भरे संसार को ही अनुभव करते थे, उससे जुड़ी कुंडलिनी को नहीं, क्योंकि उनके मन में कोई स्थाई कुंडलिनी चित्र नहीं होता था। इससे उन्हें संवेदना वाले मूलाधार से जुड़े अंगों पर तो संवेदना के रूप में शक्ति महसूस होती थी, पर बीच वाले चक्रोँ पर नहीं। जैसे कि अनाहत चक्र, मणिपुर चक्र आदि पर। ऐसा इसलिए होता था क्योंकि अधिकांशतः इन बीच वाले चक्रोँ पर तो कुंडलिनी चित्र ही शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है, इन पर संवेदना नहीं होती, और न ही द्वैतपूर्ण संसार। द्वैतपूर्ण संसार तो केवल मस्तिष्क में ही रहता है। कुंडलिनी चित्र ही चक्रोँ पर मांसपेशी की सिकुड़न पैदा करता है, जिससे हल्की सी संवेदना पैदा होती है। कुंडलिनी योगी ने इस प्रक्रिया को कृत्रिम, वैज्ञानिक और ज्यादा प्रभावशाली बनाया। उसने सिद्धासन या अर्धसिद्धासन के दौरान पैर की ऐड़ी से मुलाधार चक्र को दबा कर वहाँ बनावटी संवेदना पैदा की। साथ में उसने संवेदना के ऊपर कुंडलिनी चित्र को आरोपित किया, ताकि शक्ति को खींचने के लिए अधिक आकर्षण बने, और कम संवेदना पैदा होने पर भी कुंडलिनी चित्र के माध्यम से शक्ति को आकर्षित किया जा सके। बाकि कुंडलिनी से मिलने वाले मुक्तिलाभ को तो सब जानते ही हैं। इसीलिए कहते हैं कि योग से तन-मन भी स्वस्थ रहता है, और आत्मा भी।

शक्ति का कोई स्थायी आधार या आश्रय भी जरूर होना चाहिए। यह किसी कला, विद्या, रुचि या हॉबी आदि के रूप में हो सकता है। जैसे मेरी शक्ति का आधार लेखन और कविता रचना है। इससे मेरी व्यर्थ में नष्ट होने वाली शक्ति लेखन और कविता निर्माण में व्यय हो जाती है। एकबार किसी आदमी ने मेरा नुकसान कर दिया। उससे मेरे अंदर उससे लड़ने के लिए एक शक्ति से भरा जोश पैदा हो गया। फिर मैंने बुद्धि से निर्णय लिया कि लड़ाई से कोई लाभ नहीं, नुकसान ही है। मेरे अंदर जो शक्ति पैदा हुई थी, उसे मैंने कविता रचना की ओर मोड़ दिया, जिससे एक सुंदर सी कविता बन कर तैयार हो गई। मतलब कि मैंने शक्ति को रूपांतरित या दिग्दर्शित किया। शिवपुराण में भी एक कथा ऐसी ही आती है। इंद्र के द्वारा किए अपमान से जब शिव बहुत ज्यादा क्रोधित हो गए, तो वे उसे भस्म करने को आतुर हो गए। फिर ब्रह्मा आदि देवों ने शिव को बड़ी मुश्किल से मनाया। पर शिव का गुस्सा शांत ही नहीं हो रहा था। इसलिए देवताओं ने शिव के गुस्से को माथे से बाहर निकाला और उसे समुद्र में डलवा दिया, जिससे जलंधर नाम का दैत्य पैदा हुआ। जलंधर कथा को हम अगली पोस्ट में रहस्योदघाटित करेंगे। काश कि युक्रेन, रूस और नाटो की शक्ति को भी ऐसा ही दिग्दर्शन मिलता। मूलाधार चक्र शक्ति का सबसे बड़ा सिंक या अवशोषक या आकर्षणकर्ता होता है। कुंडलिनी योग में इसीलिए तो ऐड़ी को मूलाधार चक्र पर रखा जाता है। दरअसल ऐड़ी के दबाव से बनी संवेदना से मस्तिष्क की शक्ति नीचे

उतरते हुए सभी चक्रोँ में बराबर बंट जाती है, पर खिंचाव तो मुलाधार ने ही पैदा किया न। यह ऐसे ही है कि जैसे छत की टंकी से सबसे निचली मंजिल पर पानी पहुंचाने से बीच वाली मंजिलों में भी पानी खुद ही पहुंच जाता है। यदि किसी बीच की मंजिल को ही पानी दिया जाए, तो उससे नीचे की मंजिलें बिना पानी के रह जाएंगी। यौन योग से तन-मन की अतिरिक्त शक्ति या तनावहीनता मूलाधार को मिल रहे वज्र के अतिरिक्त सहयोग से प्राप्त होती है। मूलाधार पर शक्ति सबसे ज्यादा अव्यक्त या अनभिव्यक्त रूप में रहती है, घुप्प अँधेरे की तरह। इसीलिए तो ऐसी अन्धकारपूर्ण मानसिक अवस्था में आदमी का मन सम्भोग की तरफ भागता है। सम्भोग का स्थान मूलाधार है। इसीलिए कहते हैं कि शक्ति का मूल निवासस्थान मूलाधार है। आदमी सबसे ज्यादा अनभिव्यक्त या शिथिल अवस्था में अपने घर पर होता है। काम धंधे के लिए बाहर निकलने पर उसकी अभिव्यक्ति बढ़ती जाती है। कुंडलिनी भी इसी तरह अभिव्यक्त होने के लिए अपने घर मूलाधार से बाहर निकलना चाहती है। जल्दी से जल्दी अधिकतम अभिव्यक्ति के लिए वह सम्भोग का सहारा लेती है। सम्भोग से वह सीधी आज्ञा चक्र और सहसरार चक्र में पहुंच जाती है। अन्यथा सामान्य लौकिक रीति से सभी चक्रोँ को क्रमवार भेदते हुए धीरेधीरे ऊपर चढ़ते हुए ज्यादा से ज्यादा अभिव्यक्त होती जाती है। बेशक चढ़ती तो वह पीठ से ही है, पर पीठ के हरेक चक्र की शक्ति आगे वाले संबंधित मुख्य चक्र तक भी रिसती रहती है। सहसरार पर वह सबसे ज्यादा अभिव्यक्त हो जाती है। वहाँ भी अभिव्यक्ति के चरम को छूने पर वह जागृत होकर शिव में मिल जाती है। मनुष्य ही शक्ति की इस चरम अभिव्यक्ति को प्राप्त कर सकता है। अन्य प्राणी अलग -अलग स्तर तक ही शक्ति को अभिव्यक्त कर सकते हैं, पूर्ण अभिव्यक्ति को छोड़कर। इस तरह से ऊर्जा या शक्ति के अनगिनत स्तर हैं। जो जीव या योनि इस विकास श्रृंखला में जितने ज्यादा निचले पायदान पर है, उसमें शक्ति की अभिव्यक्ति उतनी ही कम है। भूतप्रेत का भी अपना एक विशिष्ट ऊर्जा स्तर होता है, इसीलिए वह भी एक जीवयोनि है। इसी तरह कीड़ों मकोड़ों का ऊर्जा स्तर भी बहुत नीचे होता है। हालांकि इनमें उतनी ही शक्ति होती है, जितनी किसी मनुष्य, देवता या भगवान में होती है, बेशक वह अभिव्यक्त नहीं होती। मतलब कि वे भी अपनी अभिव्यक्ति बढ़ाते हुए कभी न कभी शिव तक जरूर पहुंचेंगे। इसीलिए तो कहते हैं कि सभी को समान समझते हुए सभी में अपनी आत्मा के दर्शन करने चाहिए। इस विचार क्षेत्र से जो आश्चर्यजनक बात निकलती है, वह यह है कि जिन निर्जीव चीजों को हम निर्जीव कहते हैं, वे भी जीवित हैं, उनमें शक्ति की अभिव्यक्ति सबसे कम है। इसीलिए हिंदू धर्म में हर चीज की पूजा की जाती है, यहां तक कि पत्थर, नदी, पहाड़ की भी। दुनिया की कुछ अन्य संस्कृतियों में भी जैसे कि विलुप्तप्राय प्राचीन सैल्टिक संस्कृति में ऐसी ही प्रकृति-पूजन की मान्यता है। भगवान शिव ने भी इसीलिए भूतों को अपने बराबर का दर्जा देकर उन्हें अपना गण बनाया है। ‘अहिंसा परमो धर्मः’, यह प्रसिद्ध उक्ति भी इसी सिद्धांत से बनी है। नाजायज जीवहिंसा का समर्थन दुनिया के किसी भी धर्म में नहीं किया गया है।

अब तो पुष्प खिलने दो, अब तो सूरज उगने दो~कुंडलिनी रूपकात्मक आध्यात्मिक कविता

अब तो पुष्प खिलने दो

अब तो सूरज उगने दो।

भौंरा प्यासा घूम रहा

हाथी पगला झूम रहा।

पक्षी दाना चौंच में लेके

मुँह बच्चे का चूम रहा।

उठ अंगड़ाई भरभर के अब

नन्हें को भी जगने दो।

अब तो पुष्प--

युगों युगों तक घुटन में जीता

बंद कली बन रहता था।

अपना असली रूप न पाकर

पवनवेग सँग बहता था।

मिट्टी खाद भरे पानी सँग

अब तो शक्ति जगने दो।

अब तो पुष्प ---

लाखों बार उगा था पाकर

उपजाऊ मिट्टी काया।

कंटीले झाड़ों ने रोका या

पेड़ों ने बन छाया।

खिलते खिलते तोड़ ले गया

जिसके भी मन को भाया।

हाथी जैसे अभिमानी ने

बहुत दफा तोड़ा खाया।

अब तो इसको बेझिझकी से

अपनी मंजिल भजने दो।

अब तो पुष्प--

अबकी बार न खिल पाया तो

देर बहुत हो जाएगी।

मानव के हठधर्म से धरती

न जीवन दे पाएगी।

करो या मरो भाव से इसको

अपने काम में लगने दो।

अब तो पुष्प --

मौका मिला अगर फिर भी तो

युगों का होगा इंत-जार।

धीमी गति बहुत खिलने की

एक नहीं पंखुड़ी हजार।

प्रतिस्पर्धा भी बहुत है क्योंकि

पूरी सृष्टि खुला बजार।

बीज असीमित पुष्प असीमित

चढ़ते मंदिर और मजार।

पाखण्डों ढोंगों से इसको

सच की ओर भगने दो।

अब तो पुष्प खिलने दो

अब तो सूरज उगने दो।

कुंडलिनी ही सांख्य दर्शन का पुरुष है, जिसका समाधि रूपी कुंडलिनी जागरण के द्वारा पूर्ण व प्रकृति से पृथक रूप में अनुभव ही योग का मुख्य ध्येय है

दोस्तो, पिछली पोस्ट में मैं कुंडलिनी के बारे में कुछ दुर्लभ रहस्य साझा कर रहा था। गुरु आदि अपने देह स्वरूप में जितने ज्यादा जीवंत और आध्यात्मिक होते हैं, कुंडलिनी के रूप में उनका मानसिक रूप भी उतना ही ज्यादा मजबूत होता है। यहाँ तक कि वह आंतरिक मानसिक रूप इतना मजबूत होता है कि उसके आगे दूसरे मानसिक रूप या विचार तो फीके पड़ते ही हैं, पर साथ में सारे बाहरी भौतिक रूप भी फीके पड़ जाते हैं। कृष्ण और राम ऐसे ही कुंडलिनी पुरुष थे, इसीलिए उन्हें अवतार माना जाता है। उनके कुंडलिनी रूप अर्थात ध्यान रूप से अनगिनत लोग संसारसागर से तर गए। युगों बीत गए, पर आज भी वे असरदार हैं। वैसे तो कुंडलिनी पुरुष में सभी मानवीय और आध्यात्मिक गुण होने चाहिए, पर निःस्वार्थ भाव, निरहंकारता, और उदारता इनमें सबसे महत्वपूर्ण गुण प्रतीत होते हैं। आप खुद ही सोचो कि अगर कोई अपने स्वार्थ, अहंकार और संकीर्णता के भाव को जरा भी प्रदर्शित करता है, तो उससे बनी-बनाई दोस्ती भी बिगड़ जाती है, प्रेम गया तेल लेने। और जहाँ प्रेम नहीं, वहाँ कुंडलिनी भी नहीं, क्योंकि कुंडलिनी प्रेमपूर्ण मानसिक चिंतन के आश्रित ही तो है। मैं एक संयुक्त और सामाजिक परिवार में पला-बढ़ा। चारों ओर प्रेमपूर्ण व्यवहार का बोलबाला होता था। थोड़ी-बहुत खटपट तो तब भी होती थी, पर तब वह गौण और निंदनीय होती थी, आजकल की तरह मुख्य और प्रशंसनीय नहीं। आज तो अगर कोई किसी के बुरे व्यवहार के बारे में शिकायत भी करे, तो भी उसे ही किनारे लगाया जाता है, उसके साथ ज्यादा से ज्यादा दिखावे की सहानुभूति प्रदर्शित करके। प्रश्नकर्ता पर ही प्रश्नचिन्ह लगाया जाता है। इसलिए चुप ही रहना पड़ता है। उस समय तो बुरा वर्ताव करने वालों की समाज के द्वारा खटिया खड़ी करके रख दी जाती थी। उस समय ज्यादातर लोगों में निःस्वार्थता और उदारता भरी होती थी। आँगन में आया हुआ कोई भी आदमी हो या जानवर, भूखा-प्यासा नहीं जाता था। परिचितों या रिश्तेदारों के बीच एक-दुसरे के परिवारों और घरों में स्थायी तौर पर बस जाने का रिवाज़ आम होता था, क्योंकि एकदूसरों के ऊपर विश्वास होता था, छोटामोटा धोखा खाते रहने के बाद भी। आजकल तो लोगों के पास मेहमानों के लिए, और यहाँ तक कि अपने परिवार के लिए भी समय नहीं है। उस समय अपनों से ज्यादा दूसरों को सम्मान व सुविधाएं देने का प्रयास किया जाता था। आज तो परिवार के असली सदस्य को भी यह महसूस नहीं होता कि वह उस परिवार का सदस्य है।

पिछली पोस्ट के अनुसार, कुंडलिनी को मूलाधार चक्र में इसीलिए सोया हुआ कहते हैं, क्योंकि वह वहाँ अनभिव्यक्त होती है, नष्टभूत नहीं। आदमी नींद में अनभिव्यक्त रहता है, नष्टभूत नहीं। वह सुबह होने पर फिर जाग जाता है। जिस चीज का अस्तित्व है, वह कभी नष्ट नहीं हो सकती, केवल अनभिव्यक्त हो सकती है। समय आने पर वह अभिव्यक्त भी जरूर होगी, क्योंकि अनभिव्यक्ति से अभिव्यक्ति के बीच में रूप बदलते रहना प्रकृति का स्वभाव है। चक्र नाम भी ग्रहीय कक्षाओं से पड़ा है, ऐसा लगता है मुझे। जैसे सौरमंडल में ग्रहों की या परमाणु के अंदर इलेक्ट्रोनों की अलगलग गोलाकार कक्षाएं अलगलग ऊर्जा स्तरों को दर्शाती हैं, उसी तरह अलग-अलग कुंडलिनी चक्र भी कुंडलिनी अर्थात मन की अभिव्यक्ति रूपी ऊर्जा के अलगलग स्तरों को दर्शाते हैं। चक्र का मतलब ही पहिए के जैसा गोल घेरा होता है। कुंडलिनी के आगे से पीछे के चक्र को और पीछे से आगे के चक्र को

जाते रहने को कुंडलिनी का गोलाकार घेरे में घूमना भी कह सकते हैं। यह ऐसे ही है जैसे इंजन के पिस्टन की आगे-पीछे की गति करैंक शाफ़्ट से जुड़े फ्लाइ व्हील की गोलाकार गति में बदल जाती है।

मैं यह भी बता रहा था कि कैसे हरेक जीव में, यहाँ तक कि घोरतम अन्धकारमय योनियों और अवस्थाओं में भी उसी तरह परमात्मा बसा होता है, जैसे एक छोटे से बीज में विशाल वृक्ष छिपा होता है। बेशक उन अवस्थाओं में परमात्मा सर्वाधिक अव्यक्त या अनभिव्यक्त होता है, पर पूर्णतः नहीं। इसीलिए वैदिक सांख्य दर्शन में घोरतम मूल प्रकृति को अव्यक्त या प्रधान भी कहते हैं। इसे भी परमात्मा की तरह अनादि और अनंत कहा गया है। यही शक्ति या पवित्र भूत है। यहीं से सभी जीवों की आत्मा आती है। इसीलिए तो यदि सभी जीवात्माएं एकसाथ भी मुक्त हो जाएं, तो भी नए जीव पैदा होते ही रहेंगे, क्योंकि उनकी जीवात्माओं का स्रोत मूल प्रकृति तो अविनाशी है। मुक्ति के बाद जीवात्मा फिर कभी भी मूल प्रकृति की तरफ वापिस नहीं लौटता। वह उसकी पकड़ से हमेशा के लिए छूट जाता है, क्योंकि वह परमात्मा से एकाकार हो जाता है। ऐसा शास्त्रों का कहना है। मेरा अपना छोटा सा अनुभव भी यही कहता है। मुझे सपने में केवल दस सेकंड की आत्मज्ञान जैसी अनुभूति की झलक मिली थी। उसने मुझे लम्बे समय तक दुनिया से अलगथलग सा मतलब अनासक्त बना कर रखा। मुझे पूरी तरह वापिस आने में लगभग दस साल लग गए। तो सोचिए, जब सपने में दस सेकंड के लिए परमात्मा से एकाकार जैसे होने पर (वह भी पूरी तरह से एकाकार नहीं) आदमी दुनिया के चंगुल से छूटने के करीब पहुंच जाता है, तब जो परमात्मा अनादि काल से अपने पूर्ण स्वरूप में स्थित है, वह कैसे इसके चंगुल में फंस सकता है। जीवित अवस्था में ऐसी पूर्ण अवस्था को लाखों में एक-आध लोग ही प्राप्त कर पाते होंगे, आज के भौतिक युग में तो इतने भी नहीं लगते मुझे। कुंडलिनी जागरण और पूर्ण अवस्था में तो जमीन और आसमान का फर्क है। कुंडलिनी जागरण तो सिर्फ एक शुरुवात भर है मुक्तियात्रा की। सबसे पहले जो जीवात्मा बनी, वो कहाँ से आई? यह यक्ष प्रश्न बहुत से लोग उठाते रहते हैं। उपरोक्तानुसार ऐसा भी नहीं कह सकते कि वह परमात्मा से आई। और ऐसा भी नहीं कह सकते कि वह पहले थी ही नहीं, क्योंकि जो पदार्थ असल में है ही नहीं, वह पैदा नहीं हो सकता। कोई भी वस्तु कभी पैदा नहीं हो सकती, और न ही कभी नष्ट हो सकती है, सिर्फ रूप ही बदल सकती है। विज्ञान भी तो इसी भारतीय दर्शन की पुष्टि करता है। विज्ञान में इसे द्रव्यमान और ऊर्जा के संरक्षण का सिद्धांत कहते हैं, अर्थात प्रिंसिपल ऑफ़ मास एनर्जी कंजर्वेशन। मतलब कि जो चीज हमें नष्ट होती हुई सी लगती है, वह नष्ट न होकर पहले दृश्य ऊर्जा में और फिर अदृश्य ऊर्जा या डार्क एनर्जी में रूपांतरित हो जाती है। इसी सिद्धांत से परमाणु बम बना है, जिसकी धमकी रूस बारबार युक्रेन और नाटो के खिलाफ दे रहा है। शून्य का भी अपना अस्तित्व है। इसी शून्य को विज्ञान में काली ऊर्जा अर्थात डार्क एनर्जी कहते हैं। इसलिए यही मानना पड़ेगा कि शून्यरूप मूल प्रकृति से ही पहली जीवात्मा आई। इससे प्रकृति का अनादि और अनंत रूप खुद ही सिद्ध हो जाता है। अद्वैत वेदांत दर्शन के अनुसार तो मूल प्रकृति भी परमात्मा से भिन्न नहीं है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, जैसा मैं पिछली पोस्टों में बता रहा था। अब मैं यह बताता हूँ कि 'पवित्र भूत' यह नाम मूल प्रकृति को क्यों दिया गया है। दरअसल यह परम अव्यक्त है, मतलब कि इसमें सब कुछ पूरी तरह से और बराबर मात्रा में अव्यक्त है। इसलिए यह बच्चे या परमात्मा की तरह निष्पक्ष हुई, जिसके लिए सब कुछ बराबर है। इसीलिए इसे सांख्य दर्शन के अनुसार समगुणावस्था भी कहते हैं। यानि कि इसमें स्थूल प्रकृति के सभी गुण या स्वभाव बराबर मात्रा में हैं, हालांकि अव्यक्त रूप में। मतलब कि अगर इससे कभी कुछ व्यक्त होएगा, तो सब कुछ बराबर मात्रा में होएगा, मतलब पूरी सृष्टि इससे अभिव्यक्त होएगी। सृष्टि में कुल मिलाकर सबकुछ बराबर ही होता है, प्लस और माईनस बराबर होते हैं। है तो यह भूत की तरह अन्धकारमय ही, पर है पवित्र। जबकि साधारण भूत में बुरे काम अव्यक्त रूप में ज्यादा छिपे होते हैं। इसलिए वे दूसरों का नुकसान करते हैं, और व्यक्त होने पर या जन्म लेने पर बुरे कर्म करते हैं। साधारण भूत के अँधेरे में ज्यादातर बुरे काम ही छिपे होते हैं, जबकि पवित्र भूत के अँधेरे में सम्पूर्ण सृष्टि छिपी होती है। हालांकि साधारण भूत के रूप में अच्छे काम भी छिपे हो सकते हैं, पर वे परमात्मा की तरह सम या बराबर या निष्पक्ष या

निर्लिप्त नहीं होते। उनका झुकाव किसी विशेष कर्म या प्रवृत्ति की तरफ ज्यादा होता है। इसीलिए कहते हैं कि पवित्र भूत परमात्मा की तरफ ले जाता है। यह स्वाभाविक ही है क्योंकि दोनों में उपरोक्तानुसार बहुत सी समानताएं हैं। खासकर दोनों परिवर्तनरहित, अद्वैत रूप और अनासक्त हैं। यह पुस्तक शरीरविज्ञान दर्शन में बहुत अच्छे से दिखाया गया है। यही अद्वैत तंत्र है, जो सबसे जल्दी फल देता है। तांत्रिक अद्वैतभाव के साथ पंचमकारों का सेवन करते हैं। इससे वे मूल प्रकृति की तरह अव्यक्त बन जाते हैं। फिर यौनयोग की शक्ति से एकदम से उनकी कुंडलिनी सहस्रार में प्रविष्ट हो जाती है। ऐसा इसलिए, क्योंकि उनके मन में किसी विशेष वस्तु की चाह नहीं थी। यदि ऐसा होता तो उनकी शक्ति उस विशेष वस्तु की अभिव्यक्ति पर अटक जाती, मतलब किसी विशेष चक्र पर अटक जाती। हरेक चक्र विशेष पदार्थों व भावों का प्रतिनिधित्व करता है। जैसे कि मुलाधार चक्र सुरक्षा आदि, मणिपुर चक्र खाद्य आदि, अनाहत चक्र सामाजिक भावनात्मक संबंध आदि, विशुद्धि चक्र वाणी-व्यवहार आदि, आज्ञा चक्र बुद्धि या चतुराई आदि से जुड़े पदार्थों और भावों का प्रतिनिधित्व करता है। सहस्रार चक्र सर्वसमभाव या अद्वैत का प्रतिनिधित्व करता है। इसी वजह से ही विशेष पदार्थ या भाव से जुड़ी आसक्ति के कारण कुंडलिनी उससे संबंधित चक्र पर अटक जाती है। जिस तरह मन से उस आसक्ति को नष्ट करके उससे संबंधित चक्र खुल जाता है, और कुंडलिनी को आगे निकलने का रास्ता दे देता है, उसी तरह हठयोग क्रियाओं से उस संबंधित चक्र को खोलने से उससे जुड़ी आसक्ति खुद ही नष्ट हो जाती है। इस तरह से अद्वैत साधना और कुंडलिनी योग साधना एकदूसरे की अनुपूरक हैं। मैं एक पुस्तक में पढ़ रहा था कि एक आदमी अपने शरीर की मालिश करके अपने चक्रोँ को अर्थात मन की गांठों को खोल रहा था। वह हड्डी तक को छूती हुई गहरी तेल की मालिश करता था। दरअसल मन की आसक्तियाँ या गांठें चक्रोँ से होते हुए शरीर के विभिन्न हिस्सों में जमा हो जाती हैं। जब मालिश से उन्हें खोला जाता है, तो चक्र भी खुल जाते हैं, क्योंकि वे चक्रोँ से जुड़ी होती हैं। ऐसा ही भारी व्यायाम जैसे कि कठिन परिश्रम या कार्डीएक या साईकलिंग से भी होता है। ऐसा ही कुंडलिनी योग से भी सबसे अच्छे और वैज्ञानिक तरीके से होता है। पूरे शरीर के आसनों से चक्रोँ की मालिश तो होती ही है, साथ में सभी सुदूरस्थ नसों और नाड़ियों की मालिश भी हो जाती है, जिससे उनमें फँसी आसक्ति की गांठेँ खुल जाती हैं। मूल प्रकृति के उपरोक्त वर्णन से प्रथमदृष्टया साफ दिख रहा है कि मूल प्रकृति या मूल शक्ति से ज्यादा साधारण, व्यावहारिक, व्याख्यात्मक, जानदार और सारगर्भित शब्द पवित्र भूत या पवित्र आत्मा प्रतीत होता है।

सांख्य दर्शन में दो शाश्वत तत्त्व हैं, प्रकृति और पुरुष। इनके संयोग से जीव बनता है, जैसे वह रज और शुक्र के संयोग से बनता है। इसमें अंधकारमय या रज या यिन या जड़ भाग प्रकृति है, और प्रकाश या शुक्र या यांग या चेतन भाग पुरुष है। सभी जीवों को पुरुष इस जुड़े हुए रूप में ही महसूस होता है, शुद्ध या बिना जुड़े या मूलरूप में नहीं। मतलब उसने कभी मूल प्रकृति को तो शुद्ध रूप में अनुभव किया था, क्योंकि कभी उसने अपनी जीवनयात्रा वहीं से शुरु की थी। उस समय पुरषोत्तम रूपी परमात्मा से उसमें पुरुष रूपी बीज पड़ा था। इसीलिए परमात्मा को वीर्यबीज डालने वाला पिता और प्रकृति को सृष्टि की योनिरूप माता कहा गया है। पर एकबार जीवनयात्रा को शुरु करने के बाद वह शुद्ध मूल प्रकृति को कभी अनुभव नहीं कर पाया, क्योंकि फिर हमेशा उसमें पुरुष का अंश विद्यमान रहा, कभी कम तो कभी ज्यादा। शुद्ध पुरुष को उसने कभी भी महसूस किया ही नहीं था। उसको महसूस करके ही जीव की मुक्ति की शुरुआत होती है। कुंडलिनी रूपी पुरुष को शुद्ध रूप में अनुभव करने के लिए किए जाने वाले अभ्यास का नाम ही कुंडलिनी योग है। अभ्यास करते हुए एक समय ऐसा आता है जब कुंडलिनी का ध्यान इतना प्रगाढ़ हो जाता है कि आदमी अपने आप को कुंडलिनी के साथ पूरी तरह एकाकार महसूस करता है, अतीव आनंद व अद्वैत के साथ। यही समाधि है। यही कुंडलिनी जागरण है। यही शुद्ध पुरुष का अनुभव है। यही प्रकृति पुरुष का विवेक है। इसे विवेकख्याति भी कहते हैं। मतलब कि प्रकृति और पुरुष के बीच का अंतर और उनका गठजोड़ अच्छे से समझ आ जाता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि कुंडलिनीजागरण के अतिरिक्त आदमी का हरेक अनुभव प्रकृति और पुरुष के

मिश्रण से बना होता है। आदमी का अपना रूप प्रकृति होता है, और अनुभव का रूप पुरुष होता है। इसीलिए उन अनुभवों में द्वैत भाव होता है, मतलब आदमी को अनुभव के साथ अपनी एकता महसूस नहीं होती। उसे लगता है कि वह एक दर्शक की तरह अपने से अलग अनुभव दृश्यों को अनुभव कर रहा है। पर कुंडलिनी जागरण के समय आदमी को अनुभव का रूप अपना ही रूप लगता है, अपने से जरा भी अलग नहीं, मतलब पूर्ण अद्वैत भाव होता है। उसे लगता है कि वह बेशक दर्शक है, पर दृश्य अनुभव से अलग नहीं, और अपने को ही दृश्य अनुभव के रूप में महसूस कर रहा है। इसका मतलब हुआ कि आदमी ने शुद्ध पुरुष अर्थात आत्मा का अनुभव किया। खैर ये तो थ्योरेटीकल बातें हैं, जो सांख्य दर्शन का निर्माण करती हैं। इसका प्रेक्टिकल रूप तो समाधि का अनुभव है, जो योगदर्शन का निर्माण करता है। योग सांख्य दर्शन को वैज्ञानिक प्रयोग से प्रमाणित करता है।

फिर मैं कह रहा था कि रूपक या रहस्यात्मक रूप में जो बात कही जाती है वह स्पष्ट बात से कहीं ज्यादा प्रभावशाली होती है, क्योंकि वह सीधे अवचेतन मन में बैठकर संस्कार बन जाती है। इसलिए मैं कभी नहीं चाहता था कि हिन्दु शास्त्रों और पुराणों का वैज्ञानिक रहस्योदघाटन करूँ। पर जब मैंने देखा कि तथाकथित छद्म हिन्दू या धर्मनिरपेक्षतावादी या आधुनिकतावादी, और अन्य हिन्दुविरोधी मानसिकता वाले लोग लगातार दुष्प्रचार करते हुए हिंदु धर्म को नष्ट करने पर ही उतारू हो गए हैं, तब मुझे ऐसा करना पड़ा। यह विशेषतः उन्हीं का मुँह बंद करने के लिए है। ऐसा तभी होगा, जब वे हिन्दु दर्शन के विज्ञान को समझकर उससे लाभ उठाएंगे। यदि अच्छी भावना के साथ उनका रहस्योद्घाटन न किया जाए तो हिन्दुविरोधी लोग बुरी भावना के साथ उनका रहस्य उजागर करेंगे, या झूठा रहस्योद्घाटन करेंगे। जैसे आजकल ज्ञानवापी मस्जिद में मिले शिवलिंग के बारे में किया जा रहा है। वैसे दरअसल न तो मैंने ऐसा कभी सोचा और न ही कुछ ऐसा किया। सब कुछ खुद ही होता गया जरूरत के अनुसार। यह मैं प्रकृति की सोच और उसके कर्म को दर्शा रहा हूँ। इसलिए इसे मेरा नहीं, प्रकृति का योगदान समझा जाए तो ही उचित है। अगर कोई मुझे पढ़ने के लिए देगा, तो मैं तो उसी रहस्यात्मक मूलरूप को पढ़ना पसंद करूंगा। इसी तरह किसी की अच्छी रचना को पढ़ना हो या उसे पसंद करना हो, तो उसमें मुख्यतः माँ शक्ति का योगदान देखना चाहिए, रचनाकार का नहीं। कई लोग अच्छी रचनाओं को इसलिए नहीं पढ़ते या इसलिए पसंद नहीं करते, क्योंकि वे उसे केवल रचनाकार की कृति मानते हैं, और कई बार तो उनका रचनाकार के प्रति पूर्वाग्रह भी होता है। यदि वे रचना को प्रकृति माता की कृति मानें, तो वे भी उस रचना से लाभ उठा सकते हैं, और रचनाकार का हौंसला भी बढ़ा सकते हैं। मैं यह नहीं कह रहा कि आदमी हर किसी रचना पर ध्यान दे। पर यदि असल में उसे रचना अच्छी लग रही है, तो उसे मन मसोस कर नहीं रहना चाहिए, रचना से पूरा लाभ उठाना चाहिए। इससे रचनाकार को भी अच्छा लगेगा। आजकल मैं फेसबुक और व्हाट्सएप पर ऐसी गुटबंदी अक्सर देखता हूँ जब लोग रचना को न देखकर उस गुट को या व्यक्ति को देखते हैं, जहाँ से साहित्यिक आदि रचना आई है। अपने गुट या बड़बोले आदमी से आई छींक पर भी ढेर सारी प्रतिक्रियाएं मिलती हैं, जबकि अगर विरोधी गुट का आदमी या ज्यादातर शांत-मौन रहने वाला व्यक्ति जन्नत से महफ़िल भी उतार दे, तब भी कोई प्रतिक्रिया नहीं मिलती, बेशक मन में लड्डू फूट रहे हों। यह अलग बात है कि असली लेखक प्रतिक्रिया से अपेक्षा नहीं रखता, पर सच्ची प्रतिक्रिया से पाठक को ही अतिरिक्त लाभ मिलता है। ऋषियों-फकीरों ने बहुत पहले ही आदमी की इस कमी को भांप लिया था, इसलिए उन्होंने युगों पहले ही इस बारे यह दोहा बनाकर चेता दिया था, "मोल करो तलवार का, पड़ी रहने दो म्यान"। आदमी को नीरक्षीर ग्राही होना चाहिए। जैसे हँस पानी मिले दूध में से केवल दूध ही पीता है, इसी तरह आदमी को भी अच्छी चीज हर जगह से ग्रहण कर लेनी चाहिए। कई लोग स्वार्थवश रचना को पढ़ते हैं। कइयों का मकसद समाज में अपना दबदबा कायम करना होता है। कई लोग इसलिए किसीकी रचना पढ़ते हैं, ताकि बदले में वह भी उनकी रचनाएं पढ़े। मुझे तो वैसे पाठक सबसे अच्छे लगते हैं जो निस्वार्थ भाव से रचना का आकलन करते हैं। वैसे भी मुझे लेखकों से अच्छे पाठक लगते हैं। लेखक में अहंकार पैदा हो सकता है, पर पाठक में नहीं। इसीलिए रचना का लाभ

लेखक से ज्यादा पाठक को मिलता है। रचना को पढ़ने और पसंद करने से पाठक को भी उत्कृष्ट रचना बनाने की प्रेरणा मिलती है। मैं बहुत सी उत्कृष्ट किताबें, कविताएं पढ़ा करता था, और उन्हें पसंद भी करा करता था। इससे क्या हुआ कि मुझे भी रचना निर्माण की शक्ति मिलती रही, जिससे मेरी रचनाओं में निरंतर सुधार होता रहा। अब मैं अपने पाठकों में बहुत से भावी उत्कृष्ट रचनाकार देखता हूँ। यह परम्परा निरंतर चलती रहती है, और समाज जागृति की ओर कदम दर कदम बढ़ता रहता है।

इसी तरह पिछले लेख में बात चली थी कि बेशक योग के दौरान कुंडलिनी चित्र का ध्यान किया जा रहा हो, पर असल में वह उस चित्र या प्रतिबिम्ब का या उसको बनाने वाले बिम्ब का नहीं होता, बल्कि साधक द्वारा अपने रूप का ध्यान हो रहा होता है। किसी के मन के जो भी चित्र या भाव हैं, वे सब मिलकर उस आदमी का अपना रूप या मन बनाते हैं। कुंडलिनी चित्र को नियमित ध्यान से सबसे मज़बूत बनाया जाता है, ताकि वह पूरे मन का नेता बन सके। भीड़ को नेता के माध्यम से ही नियंत्रित किया जा सकता है, सीधे तौर पर नहीं। मन को आप एक दरी समझ लो। विचारों और भावों को आप उस पर चिपकी धूल समझ लो। डंडे को आप कुंडलिनी चित्र समझ लो। डंडे से दरी को जोरजोर से पीटने को आप कुंडलिनी ध्यानयोग समझ लो। उससे जो धूल के कण बाहर झड़ते हैं, उन्हें आप मन में दबे हुए चेतन और अवचेतन किस्म के विचार और भाव समझ लो। बहुत गहराई से चिपके कणों को अवचेतन किस्म के विचार समझ लो। ऊपर-ऊपर से हल्के तौर पर चिपके कणों को चेतन किस्म के सतही विचार समझ लो। धूल के कण पहले बाहर निकलते हुए दिखते हैं, फिर खुले वायुमंडल में विलीन हो जाते हैं। इसी तरह मन के दबे विचार पहले महसूस होते हैं, फिर ऐसा लगता है कि कहीं शून्य में विलीन हो गए। आसपास में जैसे अधिक गति से वायु के चलने से धूल के कण ज्यादा मात्रा में बाहर निकलकर खुले गगन में गायब हो जाते हैं, उसी तरह लम्बी और गहरी साँसें लेने से मन के दबे विचार ज्यादा मात्रा में बाहर निकलकर आत्मा रूपी खुले आकाश में विलीन हो जाते हैं। यही साक्षीभाव या विपासना है। इस तरह से आत्मा की सफाई होती जाती है, और वह निर्मल से निर्मल होती रहती है। इसीको आत्मा का ध्यान कहा है, कुंडलिनी की सहायता से। जैसे मध्यम, एकसार व एक दिशा में चलने वाली हवा की गति से दरी के धूलकण ज्यादा अच्छी तरह से बाहर निकलकर गायब हो जाते हैं, वैसे ही इसी तरह की सांसों से मन के विचार ज्यादा अच्छी तरह से गायब होते हैं। जैसे हल्की हवा चलने से धूलकण दुबारा दरी पर बैठ जाते हैं, उसी तरह ठीक से सांस न लेने पर विचारों का कचरा पुनः मन पर बैठ जाता है। जैसे दरी को झाड़ने के बाद डंडे को हटा देते हैं, उसी तरह मन के पूरी तरह से साफ होने के बाद कुंडलिनी चित्र भी खुद ही गायब होने लगता है। यह अलग बात है कि नियमित योगसाधना से उसे हमेशा जिंदा रखा जाता है, ताकि मन पर लगातार जमने वाली विचारों की धूल साफ होती रहे। यह ऐसे ही है जैसे प्रतिदिन सुबह-शाम डंडे से दरी को झाड़ा जाता रहता है, और दिन में डंडे को साइड में रखा जाता है। पवित्र कुंडलिनी चित्र पिछली पोस्ट में दर्शाया गया वही फरिश्ता है, जिसे इस्लाम में सच्चा मुसलमान माना जाता है। अन्य मानसिक चित्र काफ़िर जिन्न भी हो सकते हैं, जो अल्लाह से दूर ले जाते हैं।

पिछले लेख में यह बात भी चली थी कि कुंडलिनी को एकदम से मूलाधार से सहस्रार को उठाने के लिए लोग सम्भोग की ओर आकर्षित होते हैं। पर वे उसके लिए पर्याप्त समय व शक्ति नहीं दे पाते, जिससे लाभ कम और कई बार तो नुकसान भी हो जाता है, जैसे वीर्यशक्ति का बहिर्गमन, अनचाहा गर्भ, यौन संक्रमण या प्रॉस्टेट आदि की समस्या। सम्भोग जीवन का सबसे सुखद और निर्णायक काम है। उसके लिए रात्रि का वह बचा-खुचा समय रखा गया है, जिस समय उसमें किसी भी कार्य को करने की शक्ति नहीं बची रहती, और जिस समय आदमी बेहोशी जैसी अवस्था में होता है। यह तो सम्भोग की दिव्यता है कि यह उस हालत में भी आदमी को तरोताज़ा कर देने का पर्याप्त प्रयास करता है। तब सोचो कि पहले से ही तरोताज़ा होने पर यह कितनी ज्यादा दिव्यता और कुंडलिनी शक्ति देता होगा। शास्त्रों में भी इसका वर्णन है। एक ऋषि ने एकबार अपनी कामातुर पत्नि के साथ संध्या के समय सम्भोग किया था,

जिससे उसके गर्भ से दो भयानक व शक्तिशाली राक्षसों का जन्म हुआ था। यह उसी सम्भोग शक्ति से हुआ था। यह अलग बात है कि किसी वजह से वे सम्भोग शक्ति को कुंडलिनी देव को नहीं दे पाए, जिससे वह खुद ही उसके विपरीत स्वभाव वाले राक्षस को मिली। अगर कुंडलिनी देव को वह शक्ति मिलती तो सम्भवतः दो देवों का जन्म होता। मतलब कि उन्होंने सम्भोग को यौनयोग की तरह नहीं किया। सम्भवतः इसीलिए शास्त्रों में गैरवक्त में सम्भोग को वर्जित किया गया है। इतना तो इससे प्रमाणित हो ही गया है कि दिन के समय किए सम्भोग में बहुत शक्ति होती है। जिस शक्ति से राक्षस पैदा हो सकता है, उससे देवता भी पैदा हो सकता है। राक्षस सम्भवतः रूपक की तरह आसक्ति से भरी दुनियादारी को कहा गया है। देवता अर्थात कुंडलिनी फिर अनासक्ति व अद्वैत से भरी दुनियादारी हुई। आप इड़ा और पिंगला को दो राक्षस कह सकते हैं। सुषुम्ना चैनल को एकल देवता माना जा सकता है। यदि इड़ा और पिंगला की शक्ति आसक्तिपूर्ण सांसारिक भोगों के बजाय सुषुम्ना को हस्तांतरित कर दी जाए तो इड़ा और पिंगला को भी दो देवता कहा जा सकता है। इस तरह समाज के द्वारा सम्भोग को नजरन्दाज करने का मतलब है कि इसको सबसे फालतू और गैरज़रूरी काम माना गया है, जबकि सच्चाई यह है कि जीवन की सभी तरक्कियों और मुक्ति का रास्ता इसीसे होकर जाता है। दुनियादारी के बंधनों के लिए अच्छे से अच्छे समय चिन्हित किए जाते हैं, और इस शक्तिजागरण पैदा करने वाली क्रिया के लिए वह समय दिया जाता है, जब आदमी हर जगह से थकहार कर बैठ जाता है। मेरा एक हमउम्र जैसा गांव का चाचा बता रहा था कि वह जब एकबार जंगल के बीच बने रास्ते से गुजर रहा था, तो उस रास्ते के ऊपर कुछ स्थानीय महिलाएं पशुओं के लिए घास काट रही थीं। उनमें से एक महिला बाकियों को सुना रही थी कि एक तो पूरे दिनभर काम करके थक कर घर जाएं और ऊपर से वे रात को बेलन जैसे सरका दें। सभी भुक्तभोगी साथी महिलाओं ने उसकी दुख भरी दास्तान का अनुमोदन किया। अजीब विडंबना है। नारी जाति का कितना बड़ा अपमान है यह, और उसे इसे इस बात की भनक नहीं। उल्टा महिला अधिकार वाले केस कर दें ऐसी तथ्यपूर्ण बातों को लेकर। मेरा एक यूएसए का ब्लॉग मित्र भी यही अनुभवसिद्ध बात कर रहा था कि एक बार में ही लगातार काफी
देर तक वीर्यनिरोधक सम्भोग करते हुए ही एक ऐसा थरेशहोल्ड या सीमाबिंदु आता है, जब मूलाधार की कुंडलिनी ऊर्जा पीठ से ऊपर चढ़ती हुई पूरे शरीर को तरोताज़ा और जागरण की ओर रूपांतरित करने लगती है। हालांकि कई बार यह ऊपर की ओर चढ़ने वाली और रूपान्तरण करने वाली ऊर्जा उस समय महसूस नहीं होती, पर एक-दो दिन बाद महसूस होने लगती है, विशेषकर कुंडलिनी योग के साथ। दरअसल यह सीधी सम्भोग की ऊर्जा नहीं होती, जैसी कि आम आदमी गलतफहमी से सोचते हैं, पर उसके रूपान्तरण से बनी आध्यात्मिक या कुंडलिनी ऊर्जा होती है। इसलिए इसके लिए हम आम बोलचाल का सम्भोग शब्द भी इस्तेमाल नहीं कर सकते। यौनयोग ज्यादा उपयुक्त शब्द लगता है। ऐसा समझ लो कि इसके लिए सभी कामधंधे छोड़कर पूर्णतः एकांत में (यहाँ तक कि इसकी कभी किसीको कानोंकान खबर न लगे, क्योंकि यौनकुंठित लोगों की इस पर बड़ी बुरी नजर लगती है, वैसे भी इसे सामाजिक नहीं कहा जा सकता, इसीलिए इसको गुह्य या गुप्त विद्या कहते हैं), बिना किसी विघ्न या व्यवधान के, समर्पित किए गए दिन के प्रातःकालीन या अन्य समय की तरोताज़ा तन-मन की अवस्था में 3-4 घंटे काफी है, इस जागरण-प्रारम्भ के लिए जरूरी सीमाबिंदु को प्राप्त करने के लिए। किसी के पास शक्ति और समय हो तो बीच-बीच में नींद की झपकियां लेते हुए जितने लम्बे समय तक चाहे कर सकता है। दुनिया में प्रेम और सुख से ज्यादा जरूरी भला क्या कामधंधा हो सकता है। पर ऐसी बातें किसीको बताना नहीं मांगता। सेक्स-कुंठित समाज में सेक्स की बात करने वाला व्यक्ति हंसी का पात्र

बनता है। हाहाहा। । लगता है इसी यौन कुंठा के कारण ही लोगों को पर्याप्त यौन संतुष्टि नहीं मिल रही है, जिससे समाज में महिला उत्पीड़न, व्यभिचार और बलात्कार के मामले बढ़ रहे हैं। मुझे तो लगता है कि समाज के सभी झगड़ों और समस्याओं के मूल में यही कारण है। वैसे भी बीच-2 में कुंडलिनी को यौन योग से पुनारवेशित या रिचार्ज करते रहना पड़ता है, नहीं तो यह उबाऊ या अल्प प्रभावी सा लगने लगता है। ओशो महाराज ठीक कहते थे कि सम्भोग के बारे में कभी पर्याप्त शोध हुए ही नहीं हैँ। समाज आज के तथाकथित आधुनिक युग में भी इतना उन्मुक्त नहीं हुआ है कि कोई कह दे

कि वह कुछ दिनों के सम्भोग के लिए भ्रमण या आऊटिंग पर जा रहा है या काम से छुट्टी ले रहा है। आजकल तो कर्मोन्माद है हर जगह। काम, काम और बस काम। सम्भोग को तो केवल संतान पैदा करने वाली मशीनी कार्यवाही भर मान लिया गया है, लगता है। साथ में इसको फालतू और सबसे ओछे काम की तरह मान लिया गया है। परिणाम, जनसंख्या विस्फोट। ऐसी मानसिकता के साथ किए सम्भोग से जो जनसंख्या बनेगी, उसकी गुणवत्ता पर भी प्रश्नचिन्ह तो लगेगा ही। व्यक्तिगत जीवन और मुक्तिपथ का बोध ही नहीं है। इसी अंधे कर्मोन्माद से ही तो दुर्घटनाएं और युद्ध हो रहे हैं, जिनसे आम बेगुनाह लोग मारे जा रहे हैं। रूस-यूक्रेन युद्ध को ही देख लो। क्या इसी के लिए दिनरात जीतोड़ मेहनत करके इतना विकास किया था। जिस अंधे काम से सदबुद्धि ही नष्ट हो जाए, उस काम से क्या लाभ। अभी चार-पांच दिन पहले दिल्ली के अवैध कारखाने में आग लगने से बीस से ज्यादा लोग जल कर मर गए और इतने ही लोग लापता हो गए। माना कि प्रशासन की लापरवाही है, पर आम जनता की भी कम नहीं है। हालांकि मासूम लोग ग़रीबी और घनी जनसंख्या से मजबूर हैं खतरे के नीचे जीवनबसर करने के लिए। सबसे ज्यादा दोषी तो वे बड़े लोग हैं, जो ज्यादा मुनाफे के लिए ऐसा अवैध काम कर रहे हैं। एक नवयुवती बालिका की चीखें यह कहते हुए कि अगर उसकी लापता बहिन नहीं मिली तो वह अपनी माँ और अन्य बहन के साथ सामूहिक आत्महत्या कर लेगी, दिल को चीर देती है। पहले भी ऐसी घटनाएं बहुत हुई हैं, पर उनसे ठीक सबक नहीं लिया, ऐसा लगता है। बस विकास, विकास और विकास। अगर जनसंख्या को नियंत्रित नहीं किया तो चाहे जितना मर्जी विकास कर लो, सब थोड़ा पड़ जाएगा। विकास भी ऐसा कि आजादी को मिले सत्तर साल से ज्यादा समय हो गया, पर बच्चों के स्कूल बैग का वजन घटने की बजाय बढ़ रहा है। एक दिन में अपने बेटे का स्कूल बैग पीठ पर लेकर उसको बाईक पर स्कूल छोड़ने गया। बैग इतना भारी लगा मुझे कि मेरे से संतुलन बिगड़ गया, और जैसे ही बाईक रोकी, वैसे ही बाईक के साथ हम दोनों एक तरफ को गिर गए। बेटे ने बैग पकड़ा हुआ था, इसलिए वह भी उसके साथ एकतरफ को झूल गया। संतुलन से संबंधित ज्यादातर बाईक की दुर्घटनाएं पीछे बैठने वाले के कारण होती हैं, इसलिए उसे ही पीछे बैठाएं, जिसे बाईक पर बैठना आता हो, या बैठना सिखा दें। हालांकि वहाँ जमीन भी समतल न होते हुए थोड़ी तिरछी थी। दरअसल आजकल के आधुनिक मोटरसाइकलों में न्यूट्रल गियर दूसरे और पहले गियर के बीच में आता है, इससे धोखा लगता है। मैंने डॉउनशिफ्ट किया तो जीरो गियर लग गया। इससे बाईक ने रेस नहीं ली। इससे संतुलन बिगड़ गया। गनीमत यह रही कि चोट नहीं लगी और एक स्कूल बस पर्याप्त दूरी पर चल रही थी बहुत धीरे से, क्योंकि वहाँ मोड़ था और ट्रेफिक का रश था। हालांकि उसने मौके को भाम्पते हुए पहले ही बस रोक दी थी। स्कूल वालों को बच्चों की किताबें स्कूल में ही रखवाई रखनी चाहिए। यहाँ ट्रेफिक नियमों की अनदेखी भी अक्सर होती रहती है। मेरी पत्नि की एक मित्र की मित्र जो विदेश में भी जाके रहती है कह रही थी कि यहाँ की ड्राइविंग तो बड़ी विचित्र और क्रन्तिकारी या जानलेवा जैसी है। पर मुझे तो लगता है कि यहाँ के ड्राइवर बड़े सेंसिबल हैं, इसीलिए तो मूलभूत सुविधाओं के अभाव में और इतनी ज्यादा जनसंख्या होने के बावजूद भी अपेक्षाकृत कम सड़क दुर्घटनाएं होती हैं। फिर भी यहाँ रोड पर चलने वाले को काफ़ी अतिरिक्त सावधानी बरतनी पड़ती है। भगवान बचाए। ऐसा ही विकास काशी विश्वनाथ मंदिर में हुआ सत्तर सालों में। आज भी वहाँ मुस्लिम आक्रमणकारियों के द्वारा जो मंदिर गिराकर मस्जिद बनाई गई, उसका शिवलिंग उस मस्जिद के वजूखाने तलाब में एक सर्वे के द्वारा मिलना बताया जा रहा है। अयोध्या को तो अपना राम मंदिर वापिस मिल गया, पर उन हजारों मंदिरों का क्या होगा जिनको तोड़कर मस्जिदें बनाई गईं। क़ुतुब मीनार में भी बहुत से मंदिरों के साक्ष्य मिले हैं। जिस ताजमहल को दुनिया के अजूबों में जगह मिली है, वह भी तेजोमहालय नाम का शिव मंदिर था, जिसकी पुष्टि बहुत से ऐतिहासिक साक्ष्य करते हुए बताए जा रहे हैं। मथुरा के मुख्य श्रीकृष्ण मंदिर की भी यही कहानी है।

कुंडलिनी जागरण से आत्मा की पारलौकिक परमावस्था का पता नहीं चलता

मित्रो, मैं कुछ दिन पहले रिलेक्स होने के लिए इस कड़ी गर्मी में दिन की धूप में छतरी लेकर बाहर निकला। चारों तरफ गलियों की सड़कों का जाल था, पर छायादार पेड़ कम थे। जहाँ थे, वहाँ उनके नीचे चबूतरे नहीं बने थे बैठने के लिए। पूरी कॉलोनी में तीन-चार जगह चबूतरे वाले पेड़ थे। मैं बारी-बारी से हर चबूतरे पर बैठता रहा, और आसपास से आ रही कोयल की संगीतमयी आवाज का आनंद लेता रहा। गाय और बैल मेरे पास आ-जा रहे थे, क्योंकि उनको पता था कि मैं उनके लिए आटे की पिन्नियां लाया था। अच्छा है, अगर सैरसपाटे के साथ कुछ गौसेवा भी होती रहे। एक छोटे चबूतरे पर पेड़ से सटा हुआ एक पत्थर था। मैं उसपे बैठा तो मेरा खुद ही एक ऐसा आसन लग गया, जिसमें मेरा स्वाधिष्ठान चक्र पेड़ को मजबूती से छू रहा था, और पीठ पेड़ के साथ सीधी और छाती के पीछे पीठ की हड्डी पेड़ से सटी हुई थी। इससे मेरे मन में वर्षों पुरानी रंगबिरंगी भावनाएं उमड़ने लगीं। बेशक पुरानी घटनाओं के दृश्य मेरे सामने नहीं थे, पर उनसे जुड़ी भावनाएँ बिल्कुल जीवंत और ताज़ा थीं। ऐसा लग रहा था जैसे कि वे भावनाएं सत्य हों और उस अनुभव के समय वर्तमान में ही बनी हों। यहाँ तक कि अपने असली घटनाकाल में भी वे भावनाएँ उतनी सूक्ष्म और प्रत्यक्ष रूप में अनुभव नहीं हुई थीं, जितनी उस स्मरणकाल में अनुभव हो रही थीं। भावनाओं के साथ आनंद तो रहता ही है। असल में भावनाएँ ही घटनाओं का सार या चेतन आत्मा होती है। भावना के बिना तो घटना निष्प्राण और निर्जीव होती है। सम्भवतः स्वाधिष्ठान चक्र को इसीलिए इमोशनल बेगेज या भावनाओं का थैला भी कहते हैं। वैसे तो सभी चक्रों के साथ विचारात्मक भावनाएँ जुड़ी होती हैं। स्वाधिष्ठान चक्र से इसलिए ज्यादा जुड़ी होती हैं, क्योंकि सम्भोग सबसे बड़ा अनुभव है, और उसी अनुभव के लिए आदमी अन्य सभी अनुभव हासिल करता है। मतलब कि सम्भोग का अनुभव हरेक अनुभव पर हावी होता है। विज्ञान भी इस बात को मानता है कि सम्भोग ही जीवन के हरेक पहलू के विकास के लिए मूल प्रेरक शक्ति है। क्योंकि स्वाधिष्ठान चक्र सम्भोग का केंद्र है, इसलिए स्वाभाविक है कि उससे सभी भावनाएं जुड़ी होंगी।

किसी भी चीज में रहस्य इसलिए लगता है, क्योंकि हम उसे समझ नहीं पाते, नहीं तो कुछ भी रहस्य नहीं है। जो कुछ समझ आ जाता है, वह विज्ञान ही लगता है। पूरी सृष्टि हाथ पे रखे आंवले की तरह सरल और प्रत्यक्ष है, यदि लोग योग विज्ञान के नजरिए से इसे समझें, अन्यथा इसके झमेलों का कोई अंत नहीं है।

मूलाधार को ग्राउंडिंग चक्र इसलिए कहते हैं क्योंकि वह मस्तिष्क को ऐसे ही अपने से जोड़ता है, जैसे पेड़ की जड़ पेड़ को अपने से जोड़कर रखती है। मूल का शाब्दिक अर्थ ही जड़ होता है। जैसे जड़ मिट्टी के सहयोग से अपनी ऊर्जा पैदा करके पेड़ को पोषण भी देती है और खुद भी पेड़ के पत्तों से अतिरिक्त ऊर्जा को अपनी ओर नीचे खींचकर खुद भी मजबूत बनती है, उसी तरह मूलाधार भी सम्भोग से अपनी ऊर्जा पैदा करके मस्तिष्क को ऊर्जा की आपूर्ति भी करता है, और मस्तिष्क में निर्मित फालतू विचारों की ऊर्जा को अपनी तरफ नीचे खींचकर खुद भी ताकतवर बनता है।

फिर एक दिन मैं फिर से उसी पुरानी झील के किनारे गया। एक पेड़ की छाँव में बैठ गया। मुझे अपनी सेहत भी ठीक नहीं लग रही थी, और मैं थका हुआ सा महसूस कर रहा था। लग रहा था कि जुकाम के वायरस का हमला हो रहा था मेरे ऊपर, क्योंकि एकदम से मौसम बदला था। अचानक भारी बारिश से भीषण गर्मी के बीच में एकदम से कड़ाके की ठंड पड़ी थी। उससे स्वाभाविक है कि मन भी कुछ बोझिल सा था। सोचा कि वहाँ शांति मिल जाए। गंगापुत्र भीष्म पितामह भी इसी तरह गंगा नदी के

किनारे जाया करते थे शांति के लिए। मुझे तो लगता है कि यह एक रूपक कथा है। क्योंकि भीष्म पितामह आजीवन ब्रह्मचारी थे, इसलिए स्वाभाविक है कि उनकी यौन ऊर्जा बाहर की ओर बर्बाद न होकर पीठ की सुषुम्ना नाड़ी से ऊपर चढ़ती थी। इसे ही ही भीष्म पितामह का बारम्बार गंगा के पास जाना कहा गया है। गंगा नदी सुषुम्ना नाड़ी को कहा जाता है। क्योंकि सुषुम्ना नाड़ी अपनी ऊर्जा रूपी दुग्ध से बालक रूपी कुंडलिनी-मन का पोषण-विकास करती है, इसीलिए गंगारूपी सुषुम्ना को माँ कहा गया है। थोड़ी देर बाद मैं मीठी और ताज़ा हवा की लम्बी सांस लेते हुए उस पर ध्यान देने लगा। इससे पुराने भावनात्मक विचार मन में ऐसे उमड़ने लगे, जैसे तेज हवा चलने पर आसमान में धूल उमड़ आती है। अगर आदमी धूल को देखने लगे, तो उसका दम जैसा घुटता है, और मन उदास हो जाता है। यदि उस पर ध्यान न देकर केवल हवा को महसूस करे, तो वह प्रसन्नचित हो जाता है। मैंने भी उन विचारों की धूल पर ध्यान देना बंद कर दिया, और सांसों पर ध्यान देने लगा। विचार तो तब भी थे, पर तब परेशान नहीं कर रहे थे। सांस और विचार हमेशा साथ रहते हैं। आप उन्हें अलग नहीं कर सकते, ऐसे ही जैसे हवा और धूल साथ रहते हैं। हवा है, तो धूल भी है, और धूल है तो हवा भी है। अगर आप धूल हटाने के लिए दीवार आदि लगा दो, तो वहाँ हवा भी नहीं आएगी। इसी तरह यदि आप बलपूर्वक विचारों को दबाएंगे, तो सांस भी दब जाएगी। और ये आप जानते ही हैँ कि सांस ही जीवन है। इसलिए विचारों को दबाना नहीं है, उनसे ध्यान हटाकर सांसों पर केंद्रित करना है। विचारों को आतेजाते रहने दो। जैसे धूल के कण थोड़ी देर उड़ने के बाद एकदूसरे से जुड़कर या नमी आदि से भारी होकर नीचे बैठने लगते हैँ, उसी तरह विचार भी श्रृंखलाबद्ध होकर मन के धरातल में गायब हो जाते हैं। बस यह करना है कि उन विचारों की धूल को ध्यान रूपी छेड़ा नहीं देना है। बाहर के विविध दृश्य नजारे और आवाजें मन के धरातल को मजबूत करते हैँ, जिससे फालतू विचार उसपे लैंड करते रह सकें। इसीलिए लोग ऐसे कुदरती नजारों की तरफ भागते हैं। जैसे धूल का कुछ हिस्सा आसमान में दूर गायब हो जाता है और बाकि ज्यादातर हिस्सा फिर से उसी जमीं पर बैठता है, इसी तरह विचारों के उमड़ने से उनका थोड़ा हिस्सा ही गायब होता है, बाकि बड़ा हिस्सा पुनः उसी मन के धरातल पर बैठ जाता है। इसीलिए तो एक ही किस्म के विचार लम्बे समय तक बारबार उमड़ते रहते हैं, बहुत समय बाद ही पूरी तरह गायब हो पाते हैं। बारीक़ धूल जैसे हल्के विचार जल्दी गायब हो जाते हैं, पर मोटी धूल जैसे आसक्ति से भरे स्थूल विचार ज्यादा समय लेते हैं। इसीलिए यह नहीं समझना चाहिए कि एकबार के साक्षीभाव से विचार गायब होकर मन निर्मल हो जाएगा। लम्बे समय तक साधना करनी पड़ती है। आसान खेल नहीं है। इसलिए जिसे जल्दी हो और जो इंतजार न कर सके, उसे साधना करने से पहले सोच लेना चाहिए। वैसे भी मुझे लगता है कि यह दुनिया से कुछ दूरी बनाने वाली साधना उन्हीं लोगों के लिए योग्य है, जो अपनी कुंडलिनी को जागृत कर चुके हैं, या जो दुनिया के लगभग सभी अनुभवों को हासिल कर चुके हैं। आम लोग तो इससे गुमराह भी हो सकते हैं। आम लोगों के लिए तो व्यावहारिक कर्मयोग ही सर्वोत्तम है। हालांकि जो लोग एकसाथ विविध साधना मार्गों पर चलने की सामर्थ्य और योग्यता रखते हैं, उनके लिए ऐसी कोई पाबंदी नहीं। थोड़ी ही देर में मेरा शरीर खुद ही भिन्न-भिन्न सिटिंग पोज बनाने लगा, ताकि कुंडलिनी ऊर्जा को मूलाधार चक्र से ऊपर चढ़ने में आसानी हो। स्वतोभूत योगासनों को मैंने पहली बार ढंग से महसूस किया, हालांकि घर में बिस्तर पर रिलेक्स होते हुए मेरे आसन लगते ही रहते हैं, ख़ासकर शाम के 5-6 बजे के बीच। सम्भवतः ऐसा दिनभर की थकान को दूर करने के लिए होता है, संध्या का ऊर्जावर्धक प्रभाव भी होता है साथ में। तो लगभग सुबह के थकानरहित समय में झील के निकट मेरी कुंडलिनी ऊर्जा का उछालें मारने का मतलब था कि मेरी थकान काम के बोझ से नहीं हुई थी, बल्कि किसी आसन्न रोग की वजह से थी। वह उसका एडवांस में इलाज करने के लिए आई थी। कुंडलिनी ऊर्जा इंटेलिजेंट होती है, इसलिए सब समझती है। विचारों के प्रति साक्षीभाव के साथ कुछ देर तक लम्बी और गहरी साँसे लेने से कुंडलिनी ऊर्जा को ऊपर चढ़ाने वाला दबाव तैयार हो गया था। जूते के सोल की पिछली नोक की हल्की चुभन से मूलाधार चक्र आर्गेस्मिक आनंदमयी संवेदना के साथ बहुत उत्तेजित हुआ, जिससे कुंडलिनी ऊर्जा उफनती नदी की तरह ऊपर चढ़ने लगी। विभिन्न चक्रोँ के साथ इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों में आर्गेस्मिक

आनंदमयी संवेदना महसूस होने लगी। ऐसा लग रहा था कि जैसे कुंडलिनी ऊर्जा से पूरा शरीर रिचार्ज हो रहा था। साँसें भी आर्गेस्मिक आनंद से भर गई थीं। कुंडलिनी के साथ आगे के आज्ञा चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र और वज्र शिखा के संयुक्त ध्यान से ऊर्जा आगे से नीचे के हिस्से में उतरकर सभी चक्रों के साथ पूरे शरीर को शक्तियुक्त कर रही थी। दरअसल आमधारणा के विपरीत मूलाधार चक्र में अपनी ऊर्जा नहीं होती, बल्कि उसे संभोग से ऊर्जा मिलती है। मूलाधार को रिचार्ज किए बगैर ही अधिकांश लोग वहाँ से ऊर्जा उठाने का प्रयास उम्रभर करते रहते हैं, पर कम ही सफल हो पाते हैं। सूखे कुएँ में टुलु पम्प चलाने से क्या लाभ। मूलाधार के पूरी तरह डिस्चार्ज होने के बाद यौन अंगों, विशेषकर प्रॉस्टेट का दबाव बहुत कम या गायब हो जाता है। उससे फिर से मन सम्भोग की तरफ आकर्षित हो जाता है, जिससे मूलाधार फिर से रिचार्ज हो जाता है। वैसे तो योग आधारित साँसों से भी मूलाधार चक्र शक्ति से आवेशित हो जाता है, जो संन्यासियों के लिए एक वरदान की तरह ही है। चाय से प्रॉस्टेट समस्या बढ़ती है, ऐसा कहते हैं। दरअसल चाय से मस्तिष्क में रक्तसंचार का दबाव बढ़ जाता है, इसीलिए तो चाय पीने से सुहाने विचारों के साथ फील गुड महसूस होता है। इसका मतलब है कि फिर यौन अंगों से ऊर्जा को ऊपर चढ़ाने वाला चुसाव नहीं बनेगा। इससे कुंडलिनी ऊर्जा घूमेगी नहीं, जिससे यौन अंगों समेत पूरे शरीर के रोगी होने की सम्भावना बढ़ेगी। उच्च रक्तचाप से भी ऐसी ही सैद्धांतिक वजह से प्रॉस्टेट की समस्या बढ़ती है। ऐसा भी लगता है कि प्रॉस्टेट की इन्फेलेमेशन या उत्तेजना भी इसके बढ़ने की वजह हो सकती है। स्वास्थ्य वैज्ञानिक भी ऐसा ही अंदेशा जता रहे हैं। जरूरत से ज्यादा तांत्रिक सम्भोग से प्रॉस्टेट उत्तेजित हो सकती है। तांत्रिक वीर्यरोधन से एक चुसाव भी पैदा हो सकता है जिससे संक्रमित योनि का गंदा स्राव प्रॉस्टेट तक भी पहुंच सकता है, जिससे प्रोस्टेट में इन्फेलेमेशन और संक्रमण पैदा हो सकता है। इसे एंटीबायोटिक से ठीक करना भी थोड़ा मुश्किल हो सकता है। इसीलिए खूब पानी पीने को कहा जाता है, ताकि गंदा स्राव मूत्रनाल से बाहर धुल जाए। योनि-स्वास्थ्य का भी भरपूर ध्यान रखा जाना चाहिए। वैसे आजकल प्रोस्टेट की हर समस्या का इलाज है, प्रोस्टेट कैंसर का भी, यदि समय रहते जाँच में लाया जाए। क्योंकि पुराने जमाने में ऐसी सुविधाएं नहीं थीं, इसीलिए तंत्र विद्या को गुप्त रखा जाता था। इस ब्लॉग की एक पुरानी पोस्ट में कबूतर बने अग्निदेव को दिए माता पार्वती के श्राप को जो दिखाया गया है, जिसमें वे उसे उसके द्वारा किए घृणित कार्य की सजा के रूप में उसे लगातार जलन महसूस करने का शाप देती हैं, वह सम्भवतः प्रॉस्टेट के संबंध में ही है। योगी इस जलन की ऊर्जा को कुंडलिनी को देने के लिए पूर्ण सिद्धासन लगाते हैं। इसमें एक पाँव की एड़ी से मूलाधार पर दबाव लगता है, और दूसरे पाँव की एड़ी से आगे के स्वाधिष्ठान चक्र पर। इसलिए यह अर्ध सिद्धासन से बेहतर है क्योंकि अर्धसिद्धासन में दूसरा पैर भी जमीन पर होने से स्वाधिष्ठान पर नुकीला जैसा संवेदनात्मक और आर्गेस्मिक दबाव नहीं लगता। इससे स्वाधिष्ठान की ऊर्जा बाहर नहीं निकल पाती। कुंडलिनी ऊर्जा के घूमते रहने से यह यौनता-आधारित सिलसिला चलता रहता है, और आदमी का विकास होता रहता है। हालांकि यह सिलसिला साधारण आदमी में भी चलता है, पर उसमें इसका मुख्य लक्ष्य द्वैतपूर्ण दुनियादारी से संबंधित ही होता है। जबकि कुंडलिनी योगी का लक्ष्य कुंडलिनी युक्त अद्वैतपूर्ण जीवनयापन होता है। साधारण आदमी में बिना किसी प्रयास के ऊर्जा चढ़ती है, इसलिए यह प्रक्रिया धीमी और हल्की होती है। जबकि कुंडलिनी योगी अपनी इच्छानुसार ऊर्जा को चढ़ा सकता है, क्योंकि अभ्यास से उसे ऊर्जा नाड़ियों का और उन्हें नियंत्रित करने का अच्छा ज्ञान होता है, जिससे शक्ति उसके वश में आ जाती है। तांत्रिक योगी तो इससे भी एक कदम आगे होता है। इसीलिए तांत्रिकों पर सामूहिक यौन शोषण के आरोप भी लगते रहते हैं। वे कठोर तांत्रिक साधना से शक्ति को इतना ज्यादा वश में कर लेते हैं कि वे कभी सम्भोग से थकते ही नहीं। ऐसा ही मामला एक मेरे सुनने में भी आया था कि एक हिमालयी क्षेत्र में मैदानी भूभाग से आए तांत्रिक के पास असली यौन आनंद की प्राप्ति के लिए महिलाओं की पंक्ति लगी होती थी। कुछ लोगों ने हकीकत जानकर उसे पीटा भी, फिर पता नहीं क्या हुआ। तांत्रिकों के साथ यह बहुत बड़ा धोखा होता है। आम लोग उनके कुंडलिनी अनुभव को नहीं देखते, बल्कि उनकी साधना के अंगभूत घृणित खानपान और आचार-विचार को देखते हैं। वे आम नहीं खाते,पेड़ गिनते हैं। इससे वे उनका अपमान कर बैठते हैं, जिससे उनकी तांत्रिक कुंडलिनी वैसे लोगों

के पीछे पड़ जाती है, और उनका नुकसान करती है। इसी को देवता का खोट लगना, श्राप लगना, बुरी नजर लगना आदि कहा जाता है। इसीलिए तांत्रिक साधना को, विशेषकर उससे जुड़े तथाकथित कुत्सित आचारों-विचारों को गुप्त रखा जाता था। साधारण लोक परिस्थिति में भी तो लोग तांत्रिक विधियों का प्रयोग करते ही हैं, पर वे साधारण सम्भोग चाहते हैं, यौन योग नहीं। शराब से शबाब हासिल करना हो या मांसभक्षण से यौनसुख को बढ़ाना हो, सब में यही सिद्धांत काम करता है। ऐसी चीजों से दिमाग़ के विचार शांत होने से दिमाग़ में एक वैक्यूम पैदा हो जाता है, जो मूलाधार से ऊर्जा को ऊपर चूसता है। इससे आगे के चैनल से ऊर्जा नीचे आ जाती है। इससे ऊर्जा घूमने लगती है, जिससे सभी अंगों के साथ मूलाधार से जुड़े अंग भी पुनः सक्रिय और क्रियाशील हो जाते हैं। मुझे तो लगता है कि बीयर पीने से जो पेशाब खुल कर आता है, वह इससे यौनांगों का दबाव कम होने से ही आता है, न कि इसमें मौजूद पानी से, जैसा अधिकांश लोग समझते हैं। सीधे पानी पीने से तो पेशाब इतना नहीं खुलता, चाहे जितना मर्जी पानी पी लो। अल्कोहल का प्रभाव मिटने पर पुनः दबाव बन जाए, यह अलग बात है। अब कोई यह न समझ ले कि अल्कोहल से कुंडलिनी ऊर्जा को घूमने में मदद मिलती है, इसलिए यह स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है। हाहाहा। टेस्टॉस्टिरोन होर्मोन ब्लॉकर से इसलिए प्रॉस्टेट दबाव कम होता है, क्योंकि उससे इस होर्मोन की यौनाँग प्रेरक शक्ति क्षीण हो जाती है। इसके विपरीत, बहुत से आदर्शवादी पुरुष अपनी स्त्री को संतुष्ट नहीं कर पाते। मुझे मेरा एक दोस्त बता रहा था कि एक आदर्शवादी और संत प्रकार के उच्च सरकारी प्रोफेसर की पत्नि जो खुद भी एक सरकारी उच्च अधिकारी थी, उसने अपने कार्यालय से संबंधित एक बहुत मामूली से अविवाहित नवयुवक कर्मचारी से अवैध संबंध बना रखे थे। जब उन्हें इस बात का पता पुख्ता तौर पर चला, तो उनको इतना ज्यादा भावनात्मक सदमा लगा कि वे बेचारे सब कुछ यहीं छोड़कर विदेश चले गए, क्योंकि उन्हें पता चल गया था कि एक औरत को जब अश्लीलता का चस्का लग जाए तो उसे उससे पीछे हटाना बहुत मुश्किल है, हालांकि असम्भव नहीं है। हालांकि एक औरत के लिए व उसके अवैध प्रेमी के लिए ऐसा करना बहुत नुकसानदायक हो सकता है, विशेषकर यदि उसका असली प्रेमी या पति सिद्ध प्रेमयोगी हो। शिवपुराण के अनुसार जब शिव और पार्वती का विवाह हो रहा था, तो ब्रह्मा उस विवाह में पुरोहित की भूमिका निभा रहे थे। शिवपार्वती से पूजन करवाते समय ब्रह्मा की नजर पार्वती के पैर के नख पर पड़ गई। उसे वे मोहित होकर देखते ही रहे और पार्वती पर कमासक्त हो गए। इससे उनका वीर्यपात हो गया। शिव को इस बात का पता चल गया। इससे शिव इतने ज्यादा क्रोधित हुए कि प्रलय मचाने को तैयार हो गए। बड़ी मुश्किल से देवताओं ने उन्हें मनाया, फिर भी उन्होंने ब्रह्मा को भयंकर श्राप दे ही दिया। प्रलय तो टल गई पर ब्रह्मा की बहुत बड़ी दुर्गति हुई। यदि पार्वती के मन में भी विकार पैदा हुआ होता, और वह ब्रह्मा के ऊपर कमासक्त हुई होती, तो उसे भी शिव की कुंडलिनी शक्ति दंड देती। यदि वह शिव की अतिनिकट संगति के कारण उस दंड से अप्रभावित रहती, तो उस दंड का प्रभाव उससे जुड़े कमजोर मन वाले उसके नजदीकी संबंधियों पर पड़ता, जैसे उसकी होने वाली संतानेँ आदि। ऐसा सब शिव की इच्छा के बिना होता, क्योंकि कौन अपनी पत्नि को दंड देना चाहता है। दरअसल कुंडलिनी खुद ही सबकुछ करती है। यदि ऐसा कुत्सित कुकर्म अनजाने में हो जाए तो इसका प्रायश्चित यही है कि दोनों अवैध प्रेमी मन से एकदूसरे को भाई-बहिन समझें और यदि कभी अपनेआप मुलाक़ात हो जाए, तो एक दूसरे को भाई-बहिन कह कर सम्बोधित करें, और सच्चे मन से कुंडलिनी से माफी मांगे, ऐसा मुझे लगता है। जो हुआ, सो हुआ, उसे भूल जाएं। आगे के लिए सुधार किया जा सकता है। मेरे उपरोक्त ऊर्जा-उफान से मुझे ये लाभ मिला कि एकदम से मुझे छीकें शुरु हो गईं, और नाक से पानी बहने लगा, जिससे जुकाम का वायरस दो दिन में ही गायब हो गया। गले तक तो वह लगभग पहुंच ही नहीं पाया। दरअसल वह कुंडलिनी ऊर्जा वायरस के खिलाफ इसी सुरक्षा चक्र को मजबूती देने के लिए उमड़ रही थी। इसी तरह एकबार कई दिनों से मैं किसी कारणवश भावनात्मक रूप से चोटिल अवस्था में था। शरीरविज्ञान दर्शन की भावना से कुंडलिनी मुझे स्वस्थ भी कर रही थी, पर कामचलाऊ रूप में ही। फिर एक दिन तांत्रिक कुंडलिनी योग की शक्ति से कुंडलिनी ऊर्जा लगातार मेरे दिल पर गिरने लगी। मैं मूलाधार, स्वाधिष्ठान और आज्ञा चक्र और नासिकाग्र के साथ छाती के बाईं ओर

स्थित दिल पर भी ध्यान करने लगा। इससे दोनों कुंडलिनी चैनल भी महसूस हो रहे थे, और साथ में उससे दिल की ओर जाती हुई ऊर्जा भी और फिर पुनः नीचे उसी केंद्रीय चैनल में उसे जुड़ते हुए महसूस कर रहा था। यह सिलसिला काफी देर तक चलता रहा, जिससे मेरी यौन कुंडलिनी ऊर्जा से मेरा दिल बिल्कुल स्वस्थ हो गया। बाद में यह मेरे व्यवहार में एकाएक परिवर्तन से और लोगों के मेरे प्रति सकारात्मक व्यवहार से भी सिद्ध हो गया।

चलो, फिर से अध्यात्म की तरफ लौटते हैं। वैसे अध्यात्म भी दुनियादारी के बीच ही पल्लवित-पुष्पित होता है, उससे अलग रहकर नहीं, ऐसे ही जैसे सुंदर फूल काँटों के बीच ही उगते हैं। कांटे ही फूलों की शत्रुओं से रक्षा करते हैं। मैं पिछली पोस्ट में जो प्रकृति-पुरुष विवेक के बारे में बात कर रहा था, उसे अपने समझने के लिए थोड़ा विस्तार दे रहा हूँ, क्योंकि कई बार मैं यहाँ अटक जाता हूँ। चाहें तो पाठक भी इसे समझ कर फायदा उठा सकते हैं। वैसे है यह पूरी थ्योरी ही, प्रेक्टिकल से बिल्कुल अलग। हाँ, थ्योरी को समझ कर आदमी प्रेक्टिकल की ओर प्रेरित हो सकता है। जब कुछ क्षणों के लिए मुझे कुंडलिनी-पुरुष अपनी आत्मा से पूर्णतः जुड़ा हुआ महसूस हुआ, मतलब कि जब मैं प्रकृति से मुक्त पुरुष बन गया था, तब ऐसा नहीं था कि उस समय प्रकृति रूपी विचार और दृश्य अनुभव नहीं हो रहे थे। वे अनुभव हो रहे थे, और साथ में कुंडलिनी चित्र भी, क्योंकि वह भी तो एक विचार ही तो है। पर वे मुझे मुझ पुरुष के अंदर और उससे अविभक्त ऐसे महसूस हो रहे थे, जैसे समुद्र में लहरें होती हैं। इसका मतलब है कि वे उस समय प्रकृति रूप नहीं थे, क्योंकि उनकी पुरुष रूप आत्मा से अलग अपनी कोई सत्ता नहीं थी। आम साधारण जीवन में तो प्रकृति की अपनी अलग सत्ता महसूस होती है, हालांकि ऐसा मिथ्या होता है पर भ्रम से सत्य लगता है। दुनियादारी झूठ और भ्रम पर ही टिकी है। दरअसल कुंडलिनी चित्र अर्थात मन पुरुष और प्रकृति के मेल से बना होता है। जब वह निरंतर ध्यान से अज्ञानावृत आत्मा से एकाकार हो जाता है, तब वह शुद्ध अर्थात पूर्ण पुरुष बन पाता है। मतलब कि तब ही वह प्रकृति के बंधन से छूट पाता है। पूर्ण और शुद्ध पुरुष का असली अनुभव परमानंद स्वरूप जैसा होता है। इससे स्वाभाविक है कि उसके पूर्ण अनुभव के साथ भी तो मन के विचार चित्र तो उभरेंगे ही। पर तब वे ऐसे मिथ्या या आभासी महसूस होंगें जैसे चूने के ढेर में खींची लकीरें। मतलब उनकी सत्ता नहीं होगी, केवल पुरुष की सत्ता होगी। इसीलिए तो उस कुंडलिनी जागरण के चंद क्षणों में परमानंद के साथ सब कुछ पूरी तरह एक सा ही महसूस होता है, सबकुछ अद्वैत। जीवित मनुष्य में आनंद के साथ मन के विचार बंधे होते हैं। आनंद के साथ विचार आएंगे ही आएंगे। इस तरह से पूर्ण निर्विचार अवस्था के साथ आत्मरूप का अनुभव असम्भव के समान ही है जीवित अवस्था में। वैसे साधना की वह सर्वोच्च अवस्था होती है। वहाँ तक असंख्य आत्मज्ञानियों में केवल एक-आध ही पहुंच पाता है। उसीके पारलौकिक अनुभव को वेदों में लिखा गया है, जिसे आप्तवचन कहते हैं। उस पर विश्वास करने के इलावा पूर्ण मुक्त आत्मा की पारलौकिक अवस्था को जानने का कोई तरीका नहीं है। ऐसा नहीं है कि कुंडलिनी जागरण के बाद आदमी इस परमावस्था को प्राप्त नहीं कर सकता। वह कर सकता है, पर जानबूझकर नहीं करता। इसकी मुख्य वजह है परमावस्था का अव्यवहारिक होना। यह अवस्था संन्यास की तरह होती है। इस अवस्था में आदमी प्रतिस्पर्धात्मक दुनिया में भौतिक रूप से पिछड़ जाता है। यहाँ तक कि खाने के भी लाले पड़ सकते हैं। अभी मानव समाज इतना विकसित नहीं हुआ है कि इस अवस्था के योग्य उम्मीदवारों के भरणपोषण और सुरक्षा का उत्तरदायित्व संभाल सके। सम्भवतः प्राचीन भारत में कोई ऐसी कार्यप्रणाली विकसित कर ली गई थी, तभी तो उस समय संन्यासी बाबाओं का बोलबाला हुआ करता था। पर आज के तथाकथित आधुनिक भारत में ऐसे बाबाओं की हालत बहुत दयनीय प्रतीत होती है। प्राचीन भारत में समाज का, विशेषकर समाज के उच्च वर्ग का पूरा जोर कुंडलिनी जागरण के ऊपर होता था। यह सही भी है, क्योंकि कुंडलिनी ही जीवविकास की अंतिम और सर्वोत्तम ऊंचाई है। हिन्दुओं की अनेकों कुंडलिनी योग आधारित परम्पराओं में उपनयन संस्कार में पहनाए जाने वाले जनेऊ अर्थात यग्योपवीत के पीछे भी कुंडलिनी सिद्धांत ही काम करता है। इसे ब्रह्मसूत्र भी कहते हैं। इसका मतलब है ब्रह्म अर्थात कुंडलिनी की याद दिलाने वाला धागा। कई लोग

कहते हैं कि यह बाईं बाजू की तरफ फिसल कर काम के बीच में अजीब सा व्यवधान पैदा करता है। सम्भवतः यह अंधे कर्मवाद से बचाने का एक तरीका हो। यह भी लगता है कि इससे यह शरीर के बाएं भाग को अतिरिक्त बल देकर इड़ा और पिंगला नाड़ियों को संतुलित करता है, क्योंकि बिना जनेऊ की साधारण परिस्थिति में आदमी का ज्यादा झुकाव दाईं तरफ ही होता है। इसे शौच के समय तब तक दाएं कान पर लटका कर रखा जाता है, जब तक आदमी शौच से निवृत होकर जल से पवित्र न हो जाए। इसके दो मुख्य लाभ हैं। एक तो यह कि शौच-स्नान आदि के समय क्रियाशील रहने वाले मूलाधार चक्र की शक्तिशाली ऊर्जा कुंडलिनी को लगती रहती है, और दूसरा यह कि आदमी की अपवित्र अवस्था का पता अन्य लोगों को लगता रहता है। इससे एक फायदा यह होता है कि इससे शौच के माध्यम से फैलने वाले संक्रामक रोगों से बचाव होता है, और दूसरा यह कि शौच जाने वाले आदमी की शक्तिशाली कुंडलिनी ऊर्जा का लाभ उसके साथ उसके नजदीकी लोगों को भी मिलता है, क्योंकि इससे वे उस ऊर्जा का गलत मतलब निकालने से होने वाले अपने नुकसान से बचे रह कर कुंडलिनी लाभ प्राप्त करते हैं। इसी तरह कमर के आसपास बाँधी जाने वाली मेखला से नाभि चक्र और स्वाधिष्ठान चक्र स्वस्थ रहते हैं, जिससे पाचन सामान्य बना रहता है, और प्रॉस्टेट जैसी समस्याओं से भी बचाव होता है। यह अलग बात है कि क्रूर और अत्याचारी मुगल हमलावर औरंगजेब जनेऊ के कुंडलिनी विज्ञान को न समझते हुए प्रतिदिन तब खाना खाता था, जब तथाकथित काफ़िर लोगों के गले से सवा मन जनेऊ उतरवा लेता था। अफ़सोस की बात कि आज के वैज्ञानिक और लोकतान्त्रिक युग में भी विशेष वर्ग के लोग उसे अपना रोल मॉडल समझते हैं।

कुंडलिनी जागरण को वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करने वाले शारीरिक चिह्न या मार्कर की खोज से ही असली आध्यात्मिक सामाजिक युग की शुरुआत हो सकती है

दोस्तो, मैं पिछले हफ्ते की पोस्ट में बता रहा था कि कैसे जनेऊ आदमी की कुंडलिनी को संतुलित और मजबूत करता है। विभिन्न कामों के बीच में इसके बाएं बाजू की तरफ खिसकते रहने से आदमी का ध्यान इस पर जाता रहता है, और कई बार वह इसे सीधा करने का प्रयास भी करता है। इससे उसका ध्यान खुद ही कुंडलिनी की तरफ जाता रहता है, क्योंकि जनेऊ कुंडलिनी और ब्रह्म का प्रतीक ही तो है। शौच के समय इसे दाएं कान पर इसलिए लटकाया जाता है, क्योंकि उस समय इड़ा नाड़ी का प्रभाव ज्यादा होता है। इसके शरीर के दाएं तरफ आने से मस्तिष्क के बाएं हिस्से अर्थात पिंगला नाड़ी को बल मिलता है। शौच की क्रिया को भी अक्सर स्त्रीप्रधान कहा जाता है, और इड़ा नाड़ी भी स्त्री प्रधान ही होती है। इसको संतुलित करने के लिए पुरुषप्रधान पिंगला नाड़ी को सक्रिय करना पड़ता है, जो मस्तिष्क के बाएं हिस्से में होती है। जनेऊ को दाएं कान पर टांगने से यह काम हो जाता है। शौच के दौरान साफसफाई में भी बाएं हाथ का प्रयोग ज्यादा होता है, जिससे भी दाएं मस्तिष्क में स्थित इड़ा नाड़ी को बल मिलता है। वैसे तो शरीर के दाएं अंग ज्यादा क्रियाशील होते हैँ, जैसे कि दायां हाथ, दायां पैर ज्यादा मजबूत होते हैं। ये मस्तिष्क के पिंगला प्रधान बाएं हिस्से से नियंत्रित होते हैं। मस्तिष्क का यह पिंगला प्रधान बायां हिस्सा इसके इड़ा प्रधान दाएं हिस्से से ज्यादा मजबूत होता है आमतौर पर। जनेऊ के शरीर के बाएं हिस्से की तरफ खिसकते रहने से यह अप्रत्यक्ष तौर पर मस्तिष्क के दाएं हिस्से को मजबूती देता है। सीधी सी बात के तौर पर इसे यूँ समझो जैसा कि पिछली पोस्ट में बताया गया था कि शौच के समय कुंडलिनी ऊर्जा का स्रोत मूलाधार सक्रिय रहता है। उसकी ऊर्जा कुंडलिनी को तभी मिल सकती है, यदि इड़ा और पिंगला नाड़ी समान रूप से बह रही हों। इसके लिए शरीर के बाएं भाग का बल जनेऊ धागे से खींच कर दाएं कान तक और अंततः दाएं मस्तिष्क तक पहुंचाया जाता है। इससे आमतौर पर शिथिल रहने वाला दायां मस्तिष्क मज़बूत हो जाता है। इससे मस्तिष्क के दोनों भाग संतुलित होने से आध्यात्मिक अद्वैत भाव बना रहता है। वैसे भी उपरोक्तानुसार कुंडलिनी या ब्रह्म का प्रतीक होने से जनेऊ लगातार कुंडलिनी का स्मरण बना कर रखता ही है। अगर किसी कारणवश जनेऊ को शौच के समय कान पर रखना भूल जाओ, तो बाएं हाथ के अंगूठे से दाहिने कान को स्पर्श करने को कहा गया है, मतलब एकबार दाहिने कान को पकड़ने को कहा गया है। इससे बाएं शरीर को भी शक्ति मिलती है और दाएं मस्तिष्क को भी, क्योंकि बाएं शरीर की इड़ा नाड़ी दाएं मस्तिष्क में प्रविष्ट होती है। वैसे भी दायाँ कान दाएं मस्तिष्क के निकट ही है। इससे दाएं मस्तिष्क को दो तरफ से शक्ति मिलती है, जिससे वह बाएं मस्तिष्क के बराबर हो जाता है। यह अद्‌भुत प्रयोगात्मक आध्यात्मिक मनोविज्ञान है। मेरे यूनिवर्सिटी के एक प्रोफेसर मुझे अपनी नजरों में एक बेहतरीन संतुलित व्यक्ति मानते थे, एक बार तो उन्होंने एक परीक्षा के दौरान ऐसा कहा भी था। सम्भवतः वे मेरे अंदर के प्रथम अर्थात स्वप्नकालिक क्षणिक जागरण के प्रभाव को भांप गए थे। सम्भवतः मेरे जनेऊ का भी मेरे संतुलित व्यक्तित्व में बहुत बड़ा हाथ हो। वैसे पढ़ाई पूरी करने के बाद एकबार मैंने इसके बाईं बाजू की तरफ खिसकने को काम में रुकावट डालने वाला समझ कर कुछ समय के लिए इसे पहनना छोड़ भी दिया था, पर अब समझ में आया कि वैसा काम में रुकावट डालने के लिए नहीं था, अपितु नाड़ियों को संतुलित करने के लिए था। कोई यदि इसे लम्बा रखकर पेंट के अंदर से टाइटली डाल के रखे, तब यह

बाईं बाजू की तरफ न खिसकते हुए भी लाभ ही पहुंचाता है, क्योंकि बाएं कंधे पर टंगा होने के कारण फिर भी इसका झुकाव बाईं तरफ को ही होता है।

कुंडलिनी जागरण से परोक्ष रूप से लाभ मिलता है, प्रत्यक्ष रूप से नहीं

पिछली पोस्ट में बताए गए कुंडलिनी जागरण रूपी प्रकृति-पुरुष विवेक से मुझे कोई सीधा लाभ मिलता नहीं दिखता। इससे केवल यह अप्रत्यक्ष लाभ मिलता है कि पूर्ण व प्रकृतिमुक्त शुद्ध पुरुष के अनुभव से प्रकृति-पुरुष के मिश्रण रूपी जगत के प्रति इसी तरह आसक्ति नष्ट हो जाती है, जैसे सूर्य के सामने दीपक फीका पड़ जाता है। जैसे शुद्ध चीनी खा लेने के बाद कुछ देर तक चीनी-मिश्रित चाय में मिठास नहीं लगती, उसी तरह शुद्ध पुरुष के अनुभव के बाद कुछ वर्षो तक पुरुष-मिश्रित जगत से रुचि हट जाती है। इससे आदमी के व्यवहार में सुधार होता है, और वह प्रकृति से मुक्ति की तरफ कदम दर कदम आगे बढ़ने लगता है। मुक्ति तो उसे इस तरह की मुक्त जीवनपद्धति से लम्बा जीवन जीने के बाद ही मिलती है, एकदम नहीं। तो फिर कुंडलिनी जागरण का इंतजार ही क्यों किया जाए, क्यों न सीधे ही मुक्त लोगों की तरह जीवन जिया जाए। मुक्त जीवन जीने में वेद-पुराण या शरीरविज्ञान दर्शन पुस्तक बहुत मदद करते हैं।आदमी चाहे तो अपने ऐशोआराम का दायरा बढ़ा कर कुंडलिनी जागरण के बाद भी ऐसे मुक्त व्यवहार को नकार सकता है, क्योंकि आदमी को हमेशा स्वतंत्र इच्छा मिली हुई है, बाध्यता नहीं। यह ऐसे ही है जैसे वह चाय में ज्यादा चीनी घोलकर चीनी खाने के बाद भी चाय की मिठास हासिल कर सकता है। ऐसा करने से तो उसे भी आम जागृतिरहित आदमी की तरह कोई लाभ नहीं मिलेगा। कोई बुद्धिमान आदमी चाहे तो ऐशोआराम के बीच भी उसकी तरफ मन से अरुचि बनाए रखकर या बनावटी रुचि पैदा करके कुंडलिनी जागरण के बिना ही उससे मिलने वाले लाभ को प्राप्त कर सकता है। यह ऐसे ही है जैसे कोई व्यक्ति व्यायाम आदि से या चाय में कृत्रिम स्वीटनर डालकर नुकसानदायक चीनी से दूरी बना कर रख सकता है।

दूसरों के भीतर कुण्डलिनी प्रकाश दिखना चाहिए, उसका जनक नहीं

पिछली पोस्ट के अनुसार, लोग तांत्रिकों के आहार-विहार को देखते हैं, उनकी कुंडलिनी को नहीं। इससे वे गलतफहमी में उनका अपमान कर बैठते हैं, और दुख भोगते हैं। भगवान शिव का अपमान भी प्रजापति दक्ष ने इसी गलतफहमी में पड़कर किया था। इसी ब्लॉग की एक पोस्ट में मैंने दक्ष द्वारा शिव के अपमान और परिणामस्वरूप शिव के गणों द्वारा दक्ष यज्ञ के विध्वन्स की कथा रहस्योदघाटित की थी। कई लोगों को लग सकता है कि यह वैबसाईट हिन्दुप्रचारक है। पर दरअसल ऐसा नहीं है। यह वैबसाईट कुंडलिनी प्रचारक है। जिस किसी भी प्रसंग में कुंडलिनी दिखती है, चाहे वह किसी भी धर्म या संस्कृति से संबंधित क्यों न हो, यह वैबसाईट उसे उठा लेती है। अब क्योंकि सबसे ज्यादा कुंडलिनी-प्रसंग हिन्दु धर्म में ही हैं, इसीलिए यह वैबसाईट हिन्दु रंग से रंगी लगती है।

कुंडलिनी योगी चंचलता योगी की स्तरोन्नता से भी बनता है

इस हफ्ते मुझे एक और अंतरदृष्टि मिली। एक दिन एक आदमी मुझे परेशान जैसे कर रहा था। ऊँची-ऊँची बहस किए जा रहा था। अपनी दादागिरी जैसी दिखा रहा था। मुझे जरूरत से ज्यादा प्रभावित और मेनीपुलेट करने की कोशिश कर रहा था। स्वाभाविक था कि उसका वह व्यवहार व उसके जवाब

में मेरा व्यवहार आसक्ति और द्वैत पैदा करने वाला था। हालांकि मैं शरीरविज्ञान दर्शन के स्मरण से आसक्ति और द्वैत को बढ़ने से रोक रहा था। वह दोपहर के भोजन का समय था। उससे वार्तालाप के कारण मेरा लंच का समय और दिनों की अपेक्षा आगे बढ़ रहा था, जिससे मुझे भूख भी लग रही थी। फिर वह चला गया, जिससे मुझे लंच करने का मौका मिल गया। शाम को मैं रोजमर्रा के योगाभ्यास की तरह कुंडलिनी योग करते समय अपने शरीर के चक्रोँ का नीचे की तरफ जाते हुए बारी-बारी से ध्यान कर रहा था। जब मैं मणिपुर चक्र में पहुंच कर वहाँ कुंडलिनी ध्यान करने लगा, तब दिन में बहस करने वाले उस आदमी से संबंधित घटनाएं मेरे मानस पटल पर आने लगीं। क्योंकि नाभि में स्थित मणिपुर चक्र भूख और भोजन से संबंधित होता है, इसीलिए उस आदमी से जुड़ी घटनाएं उसमें कैद हो गईं या कहो उसके साथ जुड़ गईं, क्योंकि उससे बहस करते समय मुझे भूख लगी थी। क्योंकि यह सिद्धांत है कि मन में पुरानी घटना के शुद्ध मानसिक रूप में स्पष्ट रूप में उभरने से उस घटना का बीज ही खत्म हो जाता है, और मन साफ हो जाता है, इसलिए उसके बाद मैंने मन का हल्कापन महसूस किया। प्रायश्चित और पश्चाताप को इसीलिए किसी भी पाप की सबसे बड़ी सजा कहा जाता है, क्योंकि इनसे पुरानी पाप की घटनाएं शुद्ध मानसिक रूप में उभर आती हैं, जिससे उन बुरे कर्मों का बीज ही नष्ट हो जाता है। जब कर्म का नामोनिशान ही नहीं रहेगा, तो उससे फल कैसे मिलेगा। जब पेड़ का बीज ही जल कर राख हो गया, तो कैसे उससे पेड़ उगेगा, और कैसे उस पर फल लगेगा। इसी तरह हरेक कर्म किसी न किसी चक्र से बंध जाता है। उस कर्म के समय आदमी में जिस चक्र का गुण ज्यादा प्रभावी हो, वह कर्म उसी चक्र में सबसे ज्यादा बंधता है। वैसे तो हमेशा ही आदमी में सभी चक्रोँ के गुण विद्यमान होते हैं, पर किसी एक विशेष चक्र का गुण सबसे ज्यादा प्रभावी होता है। भावनात्मक अवस्था में अनाहत चक्र ज्यादा प्रभावी होता है। यौन उत्तेजना या रोमांस में स्वाधिष्ठान चक्र ज्यादा प्रभावी होता है। मूढ़ता में मूलाधार, मधुर बोलचाल के समय विशुद्धि, बौद्धिक अवस्था में अज्ञाचक्र और ज्ञान या अद्वैत भाव की अवस्था में सहस्रार चक्र ज्यादा प्रभावी होता है। इसीलिए योग करते समय बारीबारी से सभी चक्रोँ पर कुंडलिनी ध्यान किया जाता है ताकि सबमें बंधे हुए विविध प्रकार के आसक्तिपूर्ण कर्मों के संस्कार मिट सकें। मेरा आजतक का अधिकांश जीवन रोमांस और यौन उत्तेजना के साथ बीता है, ऐसा मुझे लगता है, इसलिए मेरे अधिकांश कर्म स्वाधिष्ठान चक्र से बंधे हैं। सम्भवतः इसीलिए मुझे स्वाधिष्ठान चक्र पर कुंडलिनी ध्यान से सबसे ज्यादा राहत मिलती है। आसक्ति के कारण ही चक्र ब्लॉक हो जाते हैं, क्योंकि कुंडलिनी ऊर्जा उन पर एकत्रित होती रहती है, और ढंग से घूम नहीं पाती। तभी तो आपने देखा होगा कि जो लोग चुस्त और चंचल होते हैं, वे हरफनमौला जैसे होते हैं। हरफनमौला वे इसीलिए होते हैं क्योंकि वे किसी भी विषय से ज्यादा देर चिपके नहीं रहते, जिससे किसी भी विषय के प्रति उनमें आसक्ति पैदा नहीं होती। वे लगातार विषय बदलते रहते हैं, इसलिए वे चंचल लगते हैं। वैसे चंचलता को अध्यात्म की राह में रोड़ा माना जाता है, पर तंत्र में तो चंचलता का गुण मुझे सहायक लगता है। ऐसा लगता है कि तंत्र के प्रति कभी इतनी घृणा पैदा हुई होगी आम जनमानस में कि इससे जुड़े सभी विषयों को घृणित और अध्यात्मविरोधी माना गया। इसी चंचलता से उत्पन्न अनासक्ति से कुंडलिनी ऊर्जा के घूमते रहने से ही चंचल व्यक्ति ऊर्जावान लगता है। स्त्री स्वभाव होने के कारण चंचलता भी मुझे तंत्र के पंचमकारों का अंश ही लगती है। बौद्ध दर्शन का क्षणिकवाद भी तो चंचलता का प्रतीक ही है। मतलब कि सब कुछ क्षण भर में नष्ट हो जाता है, इसलिए किसी से मन न लगाओ। बात भी सही और वैज्ञानिक है, क्योंकि हरेक क्षण के बाद सब कुछ बदल जाता है, बेशक स्थूल नजर से वैसा न लगे। इसलिए किसी चीज से चिपके रहना मूर्खता ही लगती है। पर तार्किक लोग पूछेंगे कि फिर बुद्धिस्ट लोग ध्यान के बल से एक ही कुंडलिनी से क्यों चिपके रहते हैं उम्रभर। तो इसका जवाब है कि कुंडलिनी के इलावा अन्य सभी कुछ से अपनी चिपकाहट छुड़ाने के लिए ही वे कुंडलिनी से चिपके रहते हैं। गोंद सारा कुंडलिनी को चिपकाने में खर्च हो जाता है, बाकि दुनिया को चिपकाने के लिए बचता ही नहीं। पूर्णावस्था प्राप्त होने पर तो कुंडलिनी से भी चिपकाहट खुद ही छूट जाती है। इसीलिए मैं चंचलता को भी योग ही मानता हुँ, अनासक्ति योग। चंचलता योग भी कुंडलिनी योग की तरफ ले जाता है। जब आदमी कभी ऐसी अवस्था में पहुंचता है कि वह चंचलता योग को जारी नहीं रख पाता है, तब वह खुद ही कुंडलिनी

योग की तरफ झुक जाता है। उसे अनासक्ति का चस्का लगा होता है, जो उसे चंचलता योग की बजाय कुंडलिनी योग से मिलने लगती है। चंचलता के साथ जब शरीरविज्ञान दर्शन जैसी अद्वैत भावना का तड़का लगता है, तब वह चंचलता योग बन जाती है। हैरानी नहीं होनी चाहिए यदि मैं कहूँ कि मैं चंचलता योगी से स्तरोन्नत होकर कुंडलिनी योगी बना। चंचलता योग को कर्मयोग का पर्यायवाची शब्द भी कह सकते हैं क्योंकि दोनों में कोई विशेष भेद नहीं है। कई बार कुंडलिनी योगी को डिमोट होकर फिर से चंचलता योगी भी बनना पड़ता है। यहाँ तक कि जागृत व्यक्ति की डिमोशन भी हो जाती है, बेशक दिखावे के लिए या दुनियादारी के पेचीदे धंधे चलाने के लिए ही सही। प्राचीन भारत में जागृत लोगों को अधिकांशतः संन्यासी बना दिया जाता था। सम्भवतः यह इसलिए किया जाता था ताकि हर कोई अपने को जागृत बताकर मुफ्त की सामाजिक सुरक्षाएं प्राप्त न करता। संन्यास के सारे सुखों को छोड़ने के भय से संभावित ठग अपनी जागृति का झूठा दावा पेश करने से पहले सौ बार सोचता। इसलिए मैं वैसी सुरक्षाओं को अपूर्ण मानता हूँ। क्या लाभ ऐसी सुरक्षाओं का जिसमें आदमी खुलकर सुख ही न भोग सके, यहाँ तक कि सम्भोग सुख भी। मैं तो ओशो महाराज वाले सम्पन्न संन्यास को बेहतरीन मानता हूँ, जिसमें वे सभी सुख सबसे बढ़कर भोगते थे, वह भी संन्यासी रहते हुए। सुना है कि उनके पास बेहतरीन कारों का जखीरा होता था स्वयं के ऐशोआराम के लिए। हालांकि मुझे उनकी अधिकांश प्रवचन शैली वैज्ञानिक या व्यावहारिक कम और दार्शनिक ज्यादा लगती है। वे छोटीछोटी बातों को भी जरूरत से ज्यादा गहराई और बोरियत की हद तक ले जाते थे। यह अलग बात है कि फिर भी उनके प्रवचन मनमोहक या सममोहक जैसे लगते थे कुछ देर के लिए। मैं खुद भी उनकी एक पुस्तक से उच्च आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर प्रेरित हुआ हूँ। उस पुस्तक का नाम था, तंत्र, अ सुप्रीम अंडरस्टेंडिंग। हालांकि उसे पढ़ कर ऐसा लगा कि छोटी सी बात समझने के लिए बहुत समय लगा और बहुत विस्तृत या सजावटी लेख पढ़ना पड़ा। दरअसल उनकी शैली ही ऐसी है। उनकी रचनाएं इतनी ज्यादा व्यापक और विस्तृत हैं कि उनमें से अपने काम की चीज ढूंढना उतना ही मुश्किल है, जितना भूसे में सुई ढूंढना है। यह मेरी अपनी सीमित सोच है। हो सकता है कि यह गलत हो। आज के व्यस्त युग में इतना समय किसके पास है। फिर भी उनके विस्तार में जो जीवंतता, व्याव्हारिकता और सार्थकता है, वह अन्य विस्तारों में दृष्टिगोचर नहीं होती। मैं अगली पोस्ट में इस पर थोड़ा और प्रकाश डालूंगा। सभी जागृत लोगों को विज्ञान ही ऐसा सम्पन्न संन्यास उपलब्ध करा सकता है। शरीर या मस्तिष्क में जागृति को सिद्ध करने वाला चिन्ह या मार्कर जरूर होता होगा, जिसे विज्ञान से पकड़ा जा सके। फिर वैसे मार्कर वाले को जागृत पुरुष की उपाधि और उससे जुड़ी सर्वश्रेष्ठ सुविधाएं वैसे ही दी जाएंगी, जैसे आज डॉक्टरेट की परीक्षा पास करने वाले आदमी को दी जाती हैं। फिर सभी लोग जागृति की प्राप्ति के लिए प्रेरित होंगे जिससे सही में आध्यात्मिक समाज का उदय होगा।

मैदानी क्षेत्रों में तंत्रयोग निर्मित मुलाधार में कुंडलिनी शक्ति का दबाव पहाड़ों में सहस्रार की तरफ ऊपर चढ़कर कम हो जाता है

जिन पंचमकारों की ऊर्जा से आदमी कुंडलिनी जागरण के करीब पहुंचता है, वे कुंडलिनी जागरण में बाधक भी हो सकते हैं तांत्रिक कुंडलिनी सम्भोग को छोड़कर। दरअसल कुंडलिनी जागरण सत्वगुण की चरमावस्था से ही मिलता है। कुंडलिनी सम्भोग ही सत्वगुण को बढ़ाता है, अन्य सभी मकार रजोगुण और तमोगुण को ज्यादा बढ़ाते हैं। सतोगुण से ही कुंडलिनी सहस्रार में रहती है, और वहीं पर जागरण होता है, अन्य चक्रौं पर नहीं। दरअसल सतोगुण से आदमी का शरीर सुस्त व ढीला व थकाथका सा रहता है। हालांकि मन और शरीर में भरपूर जोश और तेज महसूस होता है। पर वह दिखावे का ज्यादा होता है। मन और शरीर पर काम का जरा सा बोझ डालने पर भी शरीर में कंपन जैसा महसूस होता है। आनंद बना रहता है, क्योंकि सहस्रार में कुंडलिनी क्रियाशीलता बनी रहती है। यदि तमोगुण या रजोगुण

का आश्रय लेकर जबरदस्ती बोझ बढ़ाया जाए, तो कुंडलिनी सहस्रार से नीचे उतर जाती है, जिससे आदमी की दिव्यता भी कम हो जाती है। फिर दुबारा से कुंडलिनी को सहस्रार में क्रियाशील करने के लिए कुछ दिनों तक समर्पित तांत्रिक योगाभ्यास करना पड़ता है। यदि साधारण योगाभ्यास किया जाए तो बहुत दिन या महीने लग सकते हैं। गुणों के संतुलित प्रयोग से तो कुंडलिनी पुरे शरीर में समान रूप से घूमती है, पर सहस्रार में उसे क्रियाशील करने के लिए सतोगुण की अधिकता चाहिए। ऐसा समझ लो कि तीनों गुणों के संतुलन से आदमी नदी में तैरता रह पाता है, और सतोगुण की अधिकता में बीचबीच में पानी में डुबकी लगाता रहता है। डुबकी तभी लगा पाएगा जब तैर रहा होगा। शांत सतोगुण से जो ऊर्जा की बचत होती है, वह कुंडलिनी को सहस्रार में बनाए रखने के काम आती है। ऊर्जा की बचत के लिए लोग साधना के लिए एकांत निवास ढूंढते हैं। गाँव देहात या पहाड़ों में इतना ज्यादा शारीरिक श्रम करना पड़ता है कि वीर्य शक्ति को ऊपर चढ़ाने के लिए ऊर्जा ही नहीं बचती। इसीलिए वहाँ तांत्रिक सम्भोग का कम बोलबाला होता है। हालांकि पहाड़ और मैदान का मिश्रण तंत्र के लिए सर्वोत्तम है। पहाड़ की प्राकृतिक शक्ति प्राप्त करने से तरोताज़ा आदमी मैदान में अच्छे से तांत्रिक योगाभ्यास कर पाता है। बाद में उस मैदानी अभ्यास के पहाड़ में ही कुंडलिनी जागरण के रूप में फलीभुत होने की ज्यादा सम्भावना होती है, क्योंकि वहाँ के विविध मनमोहक प्राकृतिक नज़ारे कुंडलिनी जागरण के लिए चिंगारी का काम करते हैं। मैदानी क्षेत्रों में तंत्रयोग निर्मित मूलाधार और स्वाधिष्ठान चक्रों से जुड़े अंगों में कुंडलिनी शक्ति का दबाव पहाड़ों में सहस्रार की तरफ ऊपर चढ़कर कम हो जाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि पहाड़ों की गगनचुम्बी पर्वतश्रृंखलाएं कुंडलिनी को ऊपर की ओर खींचती हैं। पहाड़ों में गुरुत्वाकर्षण कम होने से भी कुंडलिनी शक्ति मूलाधार से ऊपर उठती रहती है, जबकि मैदानों में गुरुत्व बल अधिक होने से वह मूलाधार के गड्ढे में गिरते रहने की चेष्टा करती है। दरअसल कुंडलिनी शक्ति सूक्ष्म रूप में उस खून में ही तो रहती है, जो नीचे की ओर बहता है। सम्भवतः जगद्गुरु आदि शंकराचार्य ने पहाड़ों के इसी दिव्यगुण के कारण इन्हें चार धाम यात्रा में प्रमुखता से शामिल किया था। इसी वजह से पहाड़ पर्यटकों से भरे रहते हैं। सम्पन्न लोग तो एक घर पहाड़ में और एक घर मैदान में बनाते हैं। सम्भवतः भारत को इसीलिए कुंडलिनी राष्ट्र कहा जाता है, क्योंकि यहाँ मैदानों और पहाड़ों का अच्छा और अनुकूल अनुपात है। सादे आहारविहार वाले तो इस वजह से शक्ति अवशोषक सम्भोग को ही घृणित मानने लगते हैं। इसी वजह से तंत्र का विकास पंजाब जैसे अनुकूल भौतिक परिवेशों में ज्यादा हुआ। इसी तरह बड़े शहरों में आराम तो मिलता है, पर शांति नहीं। इससे ऊर्जा की बर्बादी होती है। इसीलिए छोटे, अच्छी तरह से प्लानड और शांत, सुविधाजनक, मनोरम व अनुकूल पर्यावरण वाले स्थानों पर स्थित, विशेषकर झील आदि विशाल जलराशि युक्त स्थानों पर स्थित शहर तंत्रयोग के लिए सर्वोत्तम हैं। राजोगुण और तमोगुण से शरीर की क्रियाशीलता पर विराम ही नहीं लगता, जिससे ऊर्जा उस पर खर्च हो जाती है, और कुंडलिनी को सहस्रार में बनाए रखने के लिए कम पड़ जाती है। बेशक दूसरे चक्रों पर कुंडलिनी भरपूर चमकती है, पर वहाँ जागरण नहीं होता। सम्भवतः यह अलग बात है कि एक निपुण तांत्रिक सभी पंचमकारों के साथ भी सत्त्वगुण बनाए रख सकता है। जब कुंडलिनी सहस्रार में क्रियाशील होती है तो खुद ही सतोगुण वाली चीजों की तरफ रुझान बढ़ जाता है, और रजोगुण या तमोगुण वाली चीजों के प्रति अरुचि पैदा हो जाती है। यह अलग बात है कि कुंडलिनी को सहस्रार के साथ सभी चक्रों में क्रियाशील करने के लिए तीनों गुणों की संतुलित अवस्था के साथ पर्याप्त ऊर्जा की उपलब्धता की महती भूमिका है। हालांकि कुंडलिनी जागरण सतोगुण की प्रचुरता वाली अवस्था में ही प्राप्त होता है।

कुंडलिनी तंत्र आधारित संभोग योग और ओशो~एक सच जो अधूरा समझा गया

मित्रो, मैं पिछली पोस्ट में ओशो महाराज के सम्मान में उनकी दार्शनिक रचनाओं पर प्रकाश डाल रहा था। वे अपनी दार्शनिक कौशलता से अपनी रचनाओं को सार्थक विस्तार देते थे। सार्थक मतलब उनसे मन की उलझनें दूर होती थीं। इसके विपरीत, कई लोगों द्वारा कई जगह निरर्थक विस्तार भी किया जाता है, जिससे मन की उलझनें सुलझने की बजाय बढ़ती हैं। इसी तरह सार्थक विस्तार कई रहस्यों को अपने अंदर छुपा कर रखते हैं, ताकि वे अयोग्य व्यक्ति को आसानी से उपलब्ध न हो सकें, पर योग्य व्यक्ति उन्हें अच्छी तरह समझ सकें। पुराणों की शैली भी इसी तरह की सार्थक विस्तारवाद की होती है। विस्तृत कथाओं के बीच में किस्मकिस्म के रहस्य उजागर किए गए होते हैं, जो ज्ञानचक्षु को खोलते रहते हैं। सबसे ज्यादा कारगर लेख बड़े लेख ही होते हैं। बड़े लेखों में दुर्लभ ज्ञान इसी तरह छिपा होता है, जैसे मिट्टी से भरी विस्तृत खदान में सोना। गूगल भी इस बात को समझता है, इसीलिए बड़े लेखों को ज्यादा तवज्जो देता है। अधिकांश लोग विशेषतः जो जल्दबाजी से भरे होते हैं, वे बड़े लेखों के अंदर छिपे हुए दिव्य ज्ञान से वँचित रह जाते हैं। मेरे हाल ही के पिछले कुछ लेख बहुत बड़े-बड़े थे, यहाँ तक कि एक तो आठ हजार के करीब शब्दों से भरा लेख था। इतने शब्दों से बहुत सी लघु पुस्तिकाएँ बनना शुरु हो जाती हैं। उन लेखों को लिखकर मुझे सबसे ज्यादा संतुष्टि मिली, क्योंकि उनमें वैसे उत्कृष्ट ज्ञान की और रहस्योद्घाटनों की झलक दिखी मुझे, जो बहुत कम दिखाई देती है। उनसे मुझे कई नई अंतःदृष्टियां भी मिलीं। हालांकि मुझे लगता है कि सम्भवतः उसे कम ही पाठक पूरा पढ़ पाए होंगे, समय की कमी के कारण। वैसे लेखक की मानसिकता पूरा लेख पढ़कर ही अच्छे से पकड़ में आती है। मैं एक पुस्तक लेखक ज्यादा हुँ, ब्लॉग लेखक कम। इसीलिए मेरी सभी ब्लॉग पोस्टें आपस में जुड़ी हुई सी लगती हैं। पिछली ब्लॉग पोस्ट की कमी अगली पोस्ट में पूरी कर लेता हुँ। इस तरह श्रृंखला में बंधी पोस्टें पुस्तक के रूप में भी संकलित की जाती रहती हैं। यह पुस्तक लिखने का अच्छा तरीका है, क्योंकि आज के व्यस्त युग में कोई आदमी एक बैठक में तो पुस्तक नहीं लिख सकता। साथ में, इन पोस्टों को बहुत सोचसमझ कर, बारबार निरिक्षण करने के बाद, पूर्ण विस्तार के साथ, और व्याकरण के अनुसार शुद्ध रूप में लिखा जाता है, ताकि पाठकों को कमेंट करने की जरूरत ही न पड़े। इसीलिए तो मेरे ब्लॉग में कमेंट होते ही नहीं, केवल पाठक ही होते हैं। अगर कमेंट होते हैं, तो तारीफ के ही होते हैं।

हहा । पुस्तक में भी कमेंट सेक्शन नहीं होता। पुस्तक रूप में सम्भवतः वे बड़ी ब्लॉग पोस्टें काफी पसंद की गईं, जिसका पता बुक डाउनलोड रिपोर्ट में इजाफे से चला। किसी लेखक की सम्पूर्ण मानसिकता का पूरा पता उसकी सभी रचनाओं को पढ़कर चलता है। क्योंकि किसी में कुछ विशेष होता है, तो किसी में कुछ। अगर किसी एक रचना में कमी रह गई हो, तो लेखक उसे अपनी दूसरी रचना में पूरी कर देता है। अधूरी रचनाएं पढ़ने से रचनाकार के प्रति गलतफहमी पैदा हो सकती है। लिटल नॉलेज इज ए डेंजरस थिंग। इसमें कोई संदेह नहीं कि ओशो की सभी रचनाएं पढ़कर कोई भी व्यक्ति महामानव बन सकता है। ओशो की रचनाएं बहुत ज्यादा हैं, मेरी रचनाएं तो उनके मुकाबले बहुत कम हैं। मेरी सभी रचनाएं भी अगर कोई पढ़ ले, तो भी वह इनाम का पात्र बन जाए, ओशो की सभी रचनाएं पढ़ना तो दूर की बात है। हालांकि यह अलग बात है कि ओशो जैसे महान अवतारी पुरुष के आगे मैं कहीं भी नहीं ठहरता। महान लोगों को समझना भी कई बार कैसे कठिन हो जाता है, इसका मैं एक उदाहरण देता हुँ। मैं जब किशोरावस्था में था तो कई अय्याश किस्म के लोगों से, मुख्यतः कॉलेज टाइम में इस तरह से ओशो के सम्भोग-योग को सुना करता था, जैसे कि वे बड़ी ख़ुशी और उत्साह से अपनी बुराइयों को ढकने की कोशिश कर रहे हों। कुछ-कुछ मज़ाकिया लहजा भी होता था उनका सुनाने का। हालांकि वे लोग उसे शुद्ध सम्भोग मानकर चलते थे, योग का तो उसमें नामोनिशान नहीं दिखता था। इसलिए मुझे ओशो द्वारा प्रदत्त शिक्षा पर संदेह होता था। क्योंकि उस समय मैं कुंवारा

था, और सम्भोग के अनुभव से अपरिचित था। हाँ, कुछ रहस्यमयी सच्चाई उसमें जरूर झलकती थी मुझे। इसकी वजह थी, उस समय के आसपास मुझे शुद्ध प्रेमयोग से क्षणिक आत्म जागृति का प्राप्त होना, बेशक स्वप्नकाल में ही सही। पर वह इतनी मज़बूत थी जिसने मुझे एक झटके में पूरी तरह से रूपातंरित करके आध्यात्मिक पथ पर लगभग पूरी तरह से धकेल दिया था। इसकी एक वजह यह भी रही होगी कि बाल्यकाल जैसी अवस्था के कारण मेरा मस्तिष्क तरोताज़ा व संवेदनशील था उस समय, इसलिए बहुत रिसप्टेिव था रूपातंरण के लिए। मेरा शुद्ध मानसिक प्रेमयोग बेशक सम्भोग से नहीं बना था, पर सम्भोग की मानसिकता और लालसा उसके आधार में जरूर थी, जैसी कि पुरुष-स्त्री के हरेक प्रेम के संबंध में अक्सर होता ही है। इसमें विशेष बात यह थी कि सम्भवतः सम्भोग की सूक्ष्म मानसिकता और लालसा दोनों पक्षो में बराबर और बढ़चढ़ कर थी, मतलब वह एकतरफा प्यार की तरह नहीं था, ऐसा लगता है मुझे। हालांकि सबकुछ मन के अदृश्य आकर्षण से ही था, स्थूल रूप में कुछ भी नहीं था, कोई बोलचाल नहीं थी, कोई व्यक्तिगत मेलमिलाप नहीं था, सबकुछ लोगों या छात्रों के समूह तक ही सीमित था। यह अलग बात है कि स्त्रीपक्ष से ही प्रेम से भरी और नादानी या बचपने जैसे से भरी हुई पहलें हुआ करती थीं, शुद्ध मित्रता या प्रेम का संबंध बनाने के लिए। देवीमाता की विशेष कृपा से मुझे तो जैसे प्रेम के क्षेत्र में पीएचडी ही मिल गई थी, ऐसा लगता था मुझे, क्योंकि मुख्यतः वह वही प्रेम लगता था मुझे, जिससे मेरे सहस्रार का कमल खिल जैसा उठा था अंत में, क्योंकि यही सृष्टि की सबसे बड़ी उपलब्धि है। इसके लिए और भी बहुत सी अनुकूल वजहें रही थीं, पर वे प्रेम को परवान चढ़ाकर ही रंग ला सकी थीं, सीधे तौर पर नहीं, ऐसा लगता है मुझे। क्योंकि शरीरीक सम्भोग से न सही पर मानसिक या सूक्ष्म या अव्यक्त सम्भोग जैसे सुख से मुझे वह समाधि मिली थी, इसलिए मुझे ओशो से अपना अदृश्य संबंध भी महसूस होता था, बेशक दार्शनिक स्तर का ही सही। हालांकि मैंने उनकी शिक्षाओं को कभी ढंग से पढ़ा नहीं था। सम्भवतः मैं इसीलिए स्थूल सम्भोग से समाधि को नकारता था, बेशक बाहरबाहर से ही सही, क्योंकि अपने मन में ऐसी सम्भावना मुझे लगती भी थी। जब भी ओशो के व वामपंथी तांत्रिकों के अनुसार सम्भोग योग आदि के बारे में या कोई भी रोमांटिक किस्सा सुनता, तो मैं आनंद से भरी हुई समाधि में खोने लगता, कुंडलिनी मेरे सहस्रार में जोरों से चमकने लगती, मेरा रोमरोम खिल उठता और मेरे शरीर में कंपन जैसा होने लगता व सिर में भारीपन जैसा आ जाता। सम्भवतः मेरे मुलाधार पर बनी यौन ऊर्जा के ऊपर चढ़ने से ऐसा होता था। मेरी पीठ सीधी हो जाती, मेरे मुख पर लाली आ जाती, सांस तेज जैसी चलने लगती और मानसिक प्रेमिका का मनमोहक व समाधि चित्र जैसे जीवंत सा होकर मेरे सामने हँसता हुआ नाचने-गाने सा लगता, जिसे वश में करने के लिए कई बार उन वृद्ध आध्यात्मिक पुरुष का मानसिक चित्र भी जीवंत हो जाता। यह अलग बात है कि अनेक वर्षों के बाद पूर्ण समाधि या कुंडलिनी जागरण की झलक वाला अनुभव मुझे उन्ही पुरुष के मानसिक चित्र के यौनयोग सहायित कुण्डलिनीयोग के माध्यम से ध्यान से मिला, प्रेमिका के मानसिक चित्र से नहीं। साथ वाले छात्र या लोग उसे अन्यथा न समझे, इसके लिए मैं सम्भोग योग की वार्ता को बंद करवाने की कोशिश करता, या वे मुझे असहज जानकर खुद ही बंद कर देते, या मैं उनसे दूर हो जाने की कोशिश करता। सब उससे कुछ हैरान जैसे होते और सम्भवतः मुझे नपुंसक जैसा समझते। वैवाहिक जीवन में भी लम्बे समय तक मैं सम्भोग-समाधि का रहस्य समझ नहीं पाया, हालांकि स्वाभाविक रूप से मैं उसकी तरफ जा रहा था क्योंकि कुदरतन हर कोई पूर्णता की तरफ बढ़ता है, पर यह पता नहीं था कि यही समाधि है, और यह सम्भोग से सबसे शीघ्रता से मिलती है। मतलब कि जैसे एक अंधा आदमी हाथी को छू तो पा रहा था, पर उसे यह पता नहीं था कि वह हाथी था। एकबार मैंने अख़बार में ओशो के सम्भोग-समाधि से संबंधित एक लेख को पढ़ा, तो मैं झुंझला गया। खिसियानी बिल्ली खम्बा नोचे वाली बात हुई। मैं अपने शुद्ध प्रेमयोग पर गर्वित जैसा होते हुए एक पिता समान वृद्ध व्यक्ति के सामने उस लेख का खंडन करने लगा। उन्होंने बड़े गुस्से में भड़कते हुए एक ही बात कही, वह ठीक कहता है। उस समय तो कुछ समझ नहीं आया पर अब लगता है कि वे ओशो जैसे महान व्यक्तित्व के कथन का खंडन भी नहीं कर पा रहे थे, और उसे समझ भी नहीं पा रहे थे। साथ में लोकलाज के डर से उसपर कुछ बोल भी नहीं पा रहे। खैर, समय बीतता गया, और मेरे अनुभव का

दायरा बढ़ता गया। बहुत वर्षों के बाद की बात है। मानो किसी दैवीय शक्ति से आधिभोतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक, तीनों तापों से तपे हुए मुझ राहगीर को एक सरोवर के निकट उपजे वटवृक्ष की छाया तले जैसे स्थान पर लगभग 2-3 वर्ष विश्राम का मौका मिला। उस सकारात्मक विश्राम से शक्ति अर्जित करके मैं इंटरनेट पर तंत्र से संबंधित लेख और पुस्तकें पढ़ने लगा। लगभग 10-15 वर्षों से शरीरविज्ञान दर्शन के साथ जीवनयापन करने से तंत्र की तरफ मेरा झुकाव पहले से ही बना हुआ था। मतलब कि बारूद तैयार था, उसे सिर्फ चिंगारी की जरूरत थी। साथ में, बहुत से कुंडलिनी संबंधी ऑनलाइन वार्ता मंचों में भी शामिल होने लगा। वैज्ञानिक व खोजी स्वभाव तो मेरा पहले से था ही। इसलिए यौनतंत्र की सहायता से कुंडलिनी को खोजने की इच्छा हुई, जो कुछ हद तक सफल भी हो गई। तब मैं ओशो के उपरोक्त वैश्विक महावक्य को लगभग पूरी तरह समझ पाया। एक युगपुरुष को पूरी तरह तो कौन समझ सकता है, इसीलिए साथ में लगभग शब्द जोड़ रहा हुँ। यह अलग बात है कि सम्भोग योग कोई आधुनिक या मध्य युग की खोज नहीं है। शिवपुराण में भी इसका बेहतरीन उल्लेख मिलता है। वहाँ इसे रहस्यात्मक तरीके से लिखा गया है, जैसे अग्निदेव का कबूतर बनकर शिवतेज को धारण करना, उस तेज को सात ऋषिपत्नियों के द्वारा ग्रहण करना, ऋषिपत्नियों के द्वारा उसे हिमालय को देना, हिमालय के द्वारा उसे गंगा में उड़ेलना, गंगा के किनारे पर उगे सरकंडों पर उससे बालक कार्तिकेय का जन्म होना आदि। इस आख्यान को इसी ब्लॉग की एक पोस्ट में विस्तार से रहस्योद्‌घाटित भी किया गया है। **इससे स्पष्ट हो जाता है कि** देश**कालातीत भगवान शिव ही संभोग योग के जनक हैं, कोई पार्थिव व्यक्ति नहीं। जहाँ तक मेरे सीमित ज्ञानचक्षु देख पा रहे हैं, मुझे नहीं लगता कि प्रिय ओशो महाराज ने संभोग योग के वर्णन के दौरान भगवान शिव की इस कथा का हवाला देते हुए इसका श्रेय उन्हें दिया हो। अगर इसकी जानकारी किसी को हो तो कृपया मुझे बताए ताकि मेरे ज्ञान में भी वृद्धि हो सके। सम्भवतः इसी वजह से वे कुछ व्यर्थ के विवादों से भी घिरे रहे। होता क्या है कि जब अपने कथन का श्रेय किसी अन्य को, गुरु को या उच्चाधिकारी को या देवता को या ईश्वर को, या यहाँ तक कि काल्पनिक नाम को दिया जाता है, तो एक तो उससे अनावश्यक अहंकार पैदा नहीं होता, और दूसरा लोगों की गलतफहमी से अनावश्यक बवाल या विवाद भी पैदा नहीं होता। इसीलिए हरेक मंत्र के शुरु में ॐ लगाया जाता है, जिसका मतलब है कि यह कथन ईश्वर का है, मेरा नहीं। मैं भी शुरु से कहता आया हूँ कि इस बारे में मेरा कथन अपना नहीं है। मैं तो वही कह रहा हूँ जो पहले से ही भगवान शिव और ओशो म**हाराज **या युगों पुरातन तांत्रिक कुंडलिनी योगियों ने कहा हुआ है।** यह अलग बात है कि सूत्रों के अनुसार नूपुर शर्मा ने भी वही कहा था, जो कुरान में लिखा था, और उसने इस बात का हवाला भी दिया था। फिर भी उस बेचारी अकेली महिला के खिलाफ बहुत से मुस्लिम संगठन और इस्लामिक देश लामबंद हो गए, यहाँ तक कि उस बात पर जेहादियों ने कुछ हिन्दू लोगों का कत्ल तक कर दिया। इससे सिद्ध हो जाता है कि धर्मांधों के मामले में यह सोशल इंजिनीयरिंग तकनीक भी कम ही काम करती है। मुझे तो यह भी लगता है, और जैसी कुछ खबरें और गिरफ्तारियां भी सुनने में आईं हैं कि यह नूपुर शर्मा को फँसाने का एक झूठा बहाना था, क्योंकि वह अपने ऊपर अंगुली उठाने का मौका ही नहीं देती थी। यह बहाना ऐसा था कि एक शेर नदी में ऊपर की तरफ पानी पी रहा था। उसकी निचली तरफ एक मेमना भी पानी पी रहा था। शेर ने मेमने से कहा कि तू मेरा पानी जूठा कर रहा है, मैं तुझे खा जाऊंगा। तो मेमने ने कहा कि महाराज, आप तो मेरे से ऊंचाई पर हैं, मेरा जूठा पानी तो आपतक आ ही नहीं रहा, बल्कि मैं आपका जूठा पानी पी रहा हुँ। तो शेर ने कहा कि फिर जरूर तेरे मांबाप ने मेरा पानी जूठा किया होगा, और ऐसा कहकर वह उसको खा गया। प्रखर और तेजस्वी भाजपा प्रवक्ता थी नूपुर शर्मा। हर राजनीतिक या धार्मिक प्रश्न का जवाब बड़ी चतुराई से, तहजीब से, दबदबे से, गहराई से और साक्ष्य के साथ प्रस्तुत करती थी। सरस्वती, लक्ष्मी और काली की एकसाथ छटाएं दिखती थीं कई बार उनके अंदर। दूरदर्शन की चर्चाओं में अनर्गल और बेतुके तर्क-वितर्क करने वाले इस्लामिक विद्वानों को छठी का दूध याद दिलाती थी वह। भैंस के आगे बीन बजाओगे तो वह माला तो नहीं पहनाएगी न। करे कोई, मरे कोई। अब समय आ गया है कि धार्मिक असहिष्णुता का रोग जड़ से

खत्म कर दिया जाए। जब तक मानवतापूर्ण और क़ानूनबद्ध तरीके से ऐसा न कर लिया जाए, तब तक ऐसी उद्वेगकारी बयानबाजी से बचना चाहिए। जब पता है कि बोतल का ढक्कन खोलने से जिन्न बाहर निकलेगा, तो उसे खोलना ही क्यों। दरअसल भोलेभाले और बड़बोले लोगों को भड़काने वाले दूसरे ही शातिर लोग होते हैं। हम किसी का पक्ष-विपक्ष नहीं लेते, न किसी की प्रशंसा करते, न किसी की बेइज्जती, सच को सच और झूठ को झूठ बोलते हैं, धर्माँधों के बिलकुल उलट। चलो भाई, फिर से थोड़ा सा मुख्य विषय कुंडलिनी की तरफ और चलते हैं। मेरे द्वारा या किसी अन्य के द्वारा कुंडलिनी की खोज कोई विशेष बात नहीं है। कुंडलिनी की खोज कोई आइंस्टीन के सापेक्षता के सिद्धांत की खोज नहीं है, कि जिसे एकबार खोज लिया, तो दूसरों को दुबारा खोजने की जरूरत नहीं है। कुंडलिनी की खोज हरेक आदमी को खुद करनी पड़ेगी, और उसके अनुसार जीवनयापन करना पड़ेगा, औरों की खोज से विशेष लाभ नहीं मिलने वाला। दूसरों की खोज से यह अंदाजा जरूर लग सकता है कि वह देखने में कैसी है, और उसे कहाँ और कैसे खोजा जा सकता है।

ओशो महाराज कट्टर धार्मिकता के प्रखर विरोधी थे

ओशो महाराज को मैं इसलिए भी बहुत मानता हूँ, क्योंकि वे धार्मिक कट्टरता के प्रखर विरोधी थे। वे मानते थे कि यह उन्मुक्त आध्यात्मिक चिंतन को नहीं पनपने देती। इससे आदमी के ज्ञान का कमल ढंग से विकसित नहीं हो पाता। वे जेहाद के खिलाफ भी खुलकर अपनी बात रखते थे। उनका कहना था कि परम तत्त्व को धर्म की सुरक्षा के लिए किसी सिपाही की जरूरत नहीं है। वे खुद पूर्ण सक्षम हैं। वे कट्टर धार्मिक अधिष्ठाताओं को मानसिक रोगी जैसा कहते थे। अभी हाल ही में इसी हफ्ते जिहादियों ने राजस्थान के उदयपुर में कन्हैया लाल नाम के एक दर्जी का इसलिए आईएसआई और तालिबानी स्टाइल में बेरहमी से गला रेत कर कत्ल कर दिया क्योंकि उसने नूपुर शर्मा के समर्थन में एक फेसबुक पोस्ट डाली थी। यह घटना फ्रांस में घटित चार्ली हैब्दो जेहादी कांड की याद दिलाती है। यह बेहद निंदनीय है।

कुंडलिनी योग में सहायक शीतजल स्नान~कुंडलिनी जागरण के स्वघोषित दावे की पुष्टि के लिए जाँच में अहम

दोस्तों, मैं पिछली पोस्ट में बता रहा था कि कि कैसे सम्भोग योग पूरी तरह से शिवपुराण में उल्लिखित कार्तिकेय जन्म की प्रसिद्ध कथा पर आधारित है। कबूतर बने अग्निदेव ने कैसे शिवतेज को सप्तऋषि-पत्नियों के रूप में निरूपित चक्रोँ को देकर अपनी जलन को कम किया। वे ऋषिपत्नियां कड़ाके की ठंड के महीने में सुबह के ब्रह्म मुहूर्त में ठंडे पानी से नहाती थीं। दरअसल वे ठंड से काम्पती हुई ऋषिपत्नियां अग्निदेव के पास तपिश लेने गईं। अग्नि की चिंगारी के साथ शिवतेज उनके अंदर प्रविष्ट हो गया। होता क्या है कि ठंडे पानी से नहाते समय चक्रोँ की मांसपेशियों में ठंड से सिकुड़न पैदा हो जाती है जिससे पेट में ऊपर की तरफ खिंचाव लगता है। इससे स्वाधिष्ठान चक्र के निकट यौनाँग पर स्थित वीर्यतेज ऊपर की तरफ चढ़कर सभी सातों चक्रोँ में फैल जाता है। इससे प्रॉस्टेट का दबाव भी कम हो जाता है, या यूँ भी कह सकते हैं कि ऊर्जा की कमी से पेशाब को रोक कर रखने वाली मांसपेशियां ढीली पड़ जाती हैं, इसीलिए ठंडे पानी से नहाते समय बारबार और खुलकर पेशाब आता है। डर के समय भी लगभग यही प्रक्रिया होती है, इसीसे यह कहावत बनी है कि वह इतना डर गया कि उसकी पेंट गीली हो गई। दरअसल डर से मस्तिष्क में अंधेरा या शून्य सा छा जाता है, जो ऊर्जा को नीचे से ऊपर की ओर चूसता है। उस तेज की शक्ति से चक्रोँ पर मांसपेशियों की सिकुड़न और ज्यादा बढ़ने से उन पर गर्मी पैदा हो जाती है। यही ऋषिपत्नियों के द्वारा आग की तपिश लेना और उसके माध्यम से शिवतेज को प्राप्त करना है। इससे चक्रोँ पर रक्तसंचार बढ़ जाता है, जिससे वहाँ कुंडलिनी चित्र चमकने लगता है, क्योंकि जहाँ पर रक्त या वीर्य या प्राण है, वहीं पर कुंडलिनी है। दरअसल रक्त की अपेक्षा वीर्य तेज कुंडलिनी को बहुत अधिक शक्ति देता है। इसीलिए कहते हैं कि रक्त की हजारों बूंदों से वीर्य की एक बूंद बनती है। चक्र की सिकुड़न के साथ यदि स्वाधिष्ठान व मूलाधार चक्र की वीर्य जलन का ध्यान न किया जाए, तो उस चक्र पर कुंडलिनी चित्र नहीं बनता, सिर्फ सिकुड़न ही रहती है। इसीलिए कहते हैं कि कुंडलिनी मूलाधार में निवास करती है। इसी कुंडलिनी चित्र को ऋषिपत्नियों का गर्भस्थित बालक कहा गया है, क्योंकि जैसे वीर्य से गर्भ बनता है, उसी तरह कुंडलिनी चित्र भी बनता है। इसीलिए भगवान शिव देवी पार्वती द्वारा शापित कबूतर बने अग्निदेव को आश्वासन देते हुए कहते हैं कि वह उनके वीर्य तेज को सप्तऋषि पत्नियों को दे, जिससे उसकी जलन शांत हो जाएगी। आश्चर्य होता है शिवपुराण की इस नायाब और वैज्ञानिक तरीके से कही गई कथा पर। जैसे सम्भोग योग से वीर्यतेज ऊपर चढ़ता है, वैसे ही ठंडे जल से स्नान से भी। इसीलिए सम्भोग योग और शीतजल स्नान दोनों क्रियाओं को एक जैसा दिखाया गया है। यानी सामाजिक रूप से शर्मनाक कारणों से ठंडे पानी के स्नान के रूप में यौन योग से ओतप्रोत कहानी को अच्छी तरह से बताया गया है। यह एक अच्छा विकल्प है। यह एक बुद्धिमान युक्ति है। हो सकता है कि जो भगवान शिव को बर्फीली पर्वत चोटियों में निवास करते हुए दिखाया गया हो और शिवलिंगम को लगातार बूँदबूँद गिर रहे पानी से नहाया जाता हो, और बरसात के मौसम के वर्तमान के जुलाई-अगस्त अर्थात श्रावण के महीने को भी इसी कारण से शिव-विशिष्ट महीना माना गया हो। स्वर्ग से नीचे गिरती हुई गंगा नदी शिव को स्नान कराते हुए ही धरा के ऊपर प्रविष्ट होती है। मैं यहाँ कुछ दार्शनिक जुगाली भी करना चाहूंगा। सम्भोग का प्राथमिक उद्देश्य कुंडलिनी जागरण लगता है, संतानोत्पत्ति तो द्वितीयक या सहचर उद्देश्य है सम्भवतः। संतान इस इनाम के तौर पर है कि फलां आदमी ने कुंडलिनी जागरण प्राप्त करके अपना जीवन सफल कर लिया है, अब वह अपने जैसी संतान को पैदा करके उसका जीवन सफल करने में भी मदद करे। इसका प्रमाण है, गृहस्थ आश्रम से पहले ब्रह्मचर्य आश्रम का होना। इसमें आदमी द्विज मतलब जागृत बन जाता था।

ब्रह्मचर्य का मतलब ही वीर्य शक्ति को बर्बाद न करके ऊपर चढ़ाना है। यह अलग बात है कि यदि इस आश्रम अवस्था में कोई कमजोर आदमी कुंडलिनी जागरण को प्राप्त न कर पाए, तो गृहस्थ आश्रम में भी कुछ वर्षों तक सम्भोग योग की मदद ले सकता है। यह ऐसे ही है जैसे कोई कमजोर बच्चा अगली कक्षा में जाने के बाद भी पिछली कक्षा की कमी को पूरा करने के लिए अतिरिक्त समर्पित कोचिंग या प्रशिक्षण लेता है। इसे सुपर ब्रह्मचर्य या आपातकालीन ब्रह्मचर्य या एकस्ट्राआर्डिनरी ब्रह्मचर्य कह सकते हैं। जब से संतानोत्पत्ति सम्भोग का प्राथमिक उद्देश्य बना, तब से ही लोग कुंडलिनी जागरण को भी भूलने लगे और विश्व की जनसंख्या भी बेतरतीब बढ़ने लगी। मैं फेसबुक में पढ़ रहा था कि फलां आदमी ने तीस हजार लोगों को उनके पिछले जन्मों की याद दिला दी, और फलां आदमी ने दस हजार लोगों को। क्या किसी ने किसी को कुंडलिनी जागरण भी करवाया, इसकी कोई चर्चा नहीं। मुख्य काम पीछे, गौण काम आगे। इधर ये वर्तमान जीवन ही भुलाए नहीं भूलता, और उधर कुछ लोग गत जन्मों के जीवनों को भी याद कराने में लगे हैं। अजीब और हास्यास्पद विडंबना लगती है यह। मुझे तो यह भी लगता है कि आगे वाले चैनल को अर्धनारीश्वर के बाएं अर्थात स्त्री भाग और मेरुदण्ड वाले चैनल को दाएं अर्थात पुरुष भाग के रूप में दिखाया गया है। यब-युम आसन भी तो ऐसा ही होता है। सम्भवतः यब-युम आसन के प्रति लज्जा संकोच के कारण ही ऐसा दिखाया गया हो। वैसे भी फोटो वगैरह टू डिमेंशनल बैकग्राउंड पर थ्री डिमेंशनल यब-युम को दिखा भी नहीं सकते। पर मूर्ति में तो दिखा सकते थे। इसलिए लज्जा संकोच ही मुख्य वजह लगती है। ये दोनों चैनल जुड़कर एक होने की कोशिश करते हैं। इससे मूलाधार की शक्तिशाली कुंडलिनी ऊर्जा एक तरंग के रूप में ऊपर चढ़ती हुई और सभी चक्रोँ को भेदती हुई सहस्रार में प्रविष्ट हो जाती है, और मुड़कर वापिस नीचे नहीं आती, क्योंकि आगे वाला कुंडलिनी चैनल पीछे वाले चैनल में मर्ज हो जाता है। मतलब दोनों चैनलों के जुड़ने से सुषुम्ना नाम का एक केंद्रीय चैनल खुल जाता है। सम्भवतः रीढ़ की हड्डी से थोड़ा आगे स्थित बायाँ अर्थात इड़ा चैनल है, और रीढ़ की हड्डी के थोड़ा पीछे मतलब पीठ की चमड़ी को छूता हुआ चैनल दायां अर्थात पिंगला है। रीढ़ की हड्डी के केंद्र में स्थित स्पाइनल कॉर्ड सुषुम्ना चैनल है। सम्भवतः यही यिन-यांग अर्थात स्त्री-पुरुष आकर्षण का मूलभूत वैज्ञानिक सिद्धांत है। वैसे बहूक्त बायाँ और दायां चैनल भी यथावत अस्तित्व में है। मैं तो बाएं चैनल को मेरुदण्ड के आगे खिसकाकर और दाएं चैनल को मेरुदण्ड के पीछे को खिसकाकर उन्हें अतिरिक्त आयाम प्रदान कर रहा हूँ।

सबको पता है कि जैसे ही चक्र सिकुड़न के माध्यम से गर्मी प्राप्त करते हैं, वैसे ही उनको वीर्यतेज भी प्राप्त हो जाता है। ऋषिपत्नियों ने वह तेज हिमालय को मतलब रीढ़ की हड्डी को दिया। ज़ब शरीर पर ठंडा पानी गिरता है तो योग-श्वासों के साथ उड्डीयान बंध खुद ही लगता है। इसमें पेट अंदर और ऊपर की तरफ भिंचता है। इससे चक्रोँ की जलन मेरुदण्ड को चली जाती है। मेरुदण्ड उस तेज को गंगा नदी मतलब सुशुम्ना नाड़ी को दे देता है। सुषुम्ना उसे किनारों पर उगे सरकंडों मतलब सहस्रार चक्र को देती है, जहाँ कार्तिकेय का जन्म मतलब कुंडलिनी जागरण या कुंडलिनी क्रियाशीलन होता है। यदि सुषुम्ना नाड़ी पूरी खुल जाए तो कुंडलिनी जागरण अन्यथा कुंडलिनी क्रियाशीलन होता है। मतलब कुंडलिनी चित्र मस्तिष्क में सजीव या वास्तविक भौतिक चित्र के जैसा बन जाता है। यही ठंडे पानी से स्नान का महत्त्व है, जिसका वर्णन हर धर्म में है। ईसाई धर्म के बैपटिस्म में भी सम्भवतः ठंडे पानी से सम्भव इसी शारीरिक क्रिया से मस्तिष्क में कुंडलिनी चित्र जीवंत हो जाता है, जिसे इनीशिएशन कहते हैं, जिससे आदमी आध्यात्मिक मुक्ति के पथ पर आरूढ़ हो जाता है। इसीलिए बैपटिस्म चमत्कारी असर दिखाता है अक्सर। गंगा नदी में स्नान के लिए श्रद्धालुओं की भीड़ इसीलिए लगी रहती है। गंगा नदी का पानी बर्फीला ठंडा होता है जिसमें नहाने से कुंडलिनी शक्ति आनंद पैदा करते हुए दौड़ती है। हिन्दुओं में एक ऋषि पंचमी का व्रत होता है, जिसमें महिला को ठंडे पानी के झरने या तलाब में लगातार लम्बे समय तक नहाना पड़ता है, और पवित्र दाँतुन भी करते रहना पड़ता है। सम्भवतः दाँतुन करने से मस्तिष्क की अतिरिक्त ऊर्जा आगे के चैनल से नीचे उतरती रहती है, जिससे कुंडलिनी को घूमने में आसानी होती है, जिससे ठंड भी नहीं लगती। दरअसल मांसपेशियों की सिकुड़न और नाड़ी का चालन शरीर में गर्मी

पैदा करके ठंड से बचाने की शरीर की कुदरती चेष्ठा है, कुंडलिनी लाभ तो सहलाभ अर्थात सेकण्डरी है। तिब्बती बुद्धिस्ट बर्फ की शिलाओं को अपने ऊपर रख कर पिघलाते हैं। इस मुकाबले में जो जितनी ज्यादा शिलाएं पिघलाता है, वह उतना ही बड़ा योगी माना जाता है। सबसे ज्यादा बर्फ की शिलाएं पिघलाने वाला विजयी घोषित किया जाता है। यह ध्यान शक्ति को मापने का अच्छा तरीका है। चक्रों पर कुंडलिनी ध्यान से वहाँ पर मांसपेशी की सिकुड़न से गर्मी पैदा होती है, जो बर्फ को पिघलाती है। मैं पिछली पोस्ट में सोच रहा था कि काश किसी के कुंडलिनी जागरण के स्वघोषित दावे को जाँचने का तरीका होता। चाह के कुछ न कुछ मिल ही जाता है। बर्फ की शिलाओं को शरीर पर पिघलाने वाला वही यह तरीका है। यह साधारण, अप्रत्यक्ष, कारगर और व्यावहारिक तरीका है। इसमें खून का सैंपल लेकर उसमें संभावित कुंडलिनी मार्कर को खोजने की जरूरत नहीं है। बेशक कुंडलिनी जागरण का इससे प्रत्यक्ष तौर पर पता न चलता हो, पर कुंडलिनी ध्यान की शक्ति को मापकर अप्रत्यक्ष तौर पर तो पता चल ही जाता है, क्योंकि कुंडलिनी जागरण से कुंडलिनी ध्यान शक्ति में एकदम से इजाफा होता है। यह अलग बात है कि कुंडलिनी योग के लम्बे ध्यान से कुंडलिनी ध्यान शक्ति में बिना जागरण के ही इजाफा हो जाता है। मुख्य चीज यही कुंडलिनी ध्यान शक्ति है, कुंडलिनी जागरण नहीं, ऐसा लगता है मुझे। हालांकि कुंडलिनी जागरण का अपना अलग ही शैक्षणिक और आधिकारिक महत्त्व है। इस जाँच तकनीक से कुंडलिनी जागरण का अंदाजा ही लगाया जा सकता है, उसकी पुष्टि नहीं की जा सकती। इस तकनीक में एक कमी और लगती है। यदि किसी योगी में पर्याप्त कुंडलिनी ध्यान शक्ति है, पर वह कमजोर है, तो सम्भवतः वह ज्यादा देर तक चक्रों की सिकुड़न नहीं बनाए रख पाएगा, ऊर्जा की कमी से। यह मेरा अपना अनुमान है, हो सकता है कि ऐसा न हो। पर आम लोगों को बिना अभ्यास के ऐसा नहीं करना चाहिए। ठंड भी लग सकती है। पहाड़ों की तरह ठंडे स्थानों में रहने वाले लोग कुंडलिनी शक्ति के कारण ही ज्यादा चुस्त होते हैं, ऐसा लगता है।

नई चीज को पुरानी चीज से जोड़ने से उसके प्रति लोगों की सकारात्मक सोच कुप्रभावित हो सकती है

मैं पिछली पोस्ट में बता रहा था कि जहाँ तक मुझे लगता है, ओशो महाराज ने सम्भोग योग से संबंधित अपने दर्शन को पुरानी मान्यताओं से ज्यादा नहीं जोड़ा। इससे उनकी दार्शनिक चतुराई और निपुणता भी झलकती है। होता क्या है कि हर कोई पुरानी चीज से उबा हुआ जैसा होता है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। आप एकबार स्टेच्यु ऑफ़ यूनिटी घूम आओ, तो दुबारा वहाँ जाने से अच्छा किसी नई जगह को जाना लगता है। इसी तरह, लोगों का अक्सर पुरानी चीजों के प्रति लगाव नई और आधुनिक चीजों से कम होता है। हालांकि कुछ लोगों के साथ उल्टा भी होता है। वे बनी बनाई पुरानी मान्यताओं पर ज्यादा विश्वास करते हैं। उन्हें उनके रहस्योद्घाटन से विशेष लाभ मिल सकता है। कईयों का किसी विशेष धर्म या जीवनपद्धति से पहले ही विशेष पूर्वाग्रह या दुराग्रह बना होता है। अगर वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार खोजी गई तकनीक या दर्शन के लिए बारबार पुरानी या किसी विशेष पद्धति का हवाला दिया जाता रहेगा, तो उसकी नवीनता और रोचकता क्षीण होने लगेगी। इसलिए लगता है कि यह अच्छा रहेगा यदि ऐसा हवाला कम से कम और केवल संदर्भ मात्र के लिए दिया जाए। इससे नवीनता का लाभ भी मिलेगा, और नई पद्धति की प्रामाणिकता पर भी संदेह नहीं होगा। हाँ, पुरानी पद्धतियों का वैज्ञानिक व अनुभव आधारित रहस्योद्घाटन निःसंकोचतापूर्वक किया जा सकता है। सम्भवतः इसीलिए महान चाइनीज दार्शनिक कन्फुसियस कहते थे कि नई परम्पराएं पुरानी परम्पराओं से जुड़ी होनी चाहिए।

काम तो है आ~राम को, योगा के विश्राम को

चूल्हा कैसे जलेगा
जीवन कैसे चलेगा।
आज का दिन तो चल पड़ा पर
कल कैसे दिन ढलेगा।
चूल्हा कैसे जलेगा।

बचपन बीता खेलकूद में
सोया भरी जवानी में।
सोचा उमर कटेगी यूँ ही
अपनी ही मनमानी में।
नहीं विचारा पल भर को भी
वक़्त भी ऐसे छलेगा।
चूल्हा कैसे ----

सोचा था कुछ काम करेंगे
खून पसीना एक करेंगे।
पढ़ लिख न पाए तो भी तो
भूखे थोड़ा ही मरेंगे।
सोचा नहीं हमारे हक से
पेट मशीन का पलेगा।
चूल्हा कैसे ----

नायाबी न थमी है, पर
काम की फिर भी कमी है।
काम वहाँ पर नहीं है मिलता
जहाँ गृहस्थी जमी है।
गृहसुख त्याग के इस मानुष का
पैसा कैसे फलेगा।
चूल्हा कैसे-----

काश कि ऐसा दिन होता सब
को पैसा मुमकिन होता।
उसके ऊपर वो पाता जो
जितना भी दाना बोता।
झगड़े मिटते इससे क्यों नर
इक-दूजे संग खलेगा।
चूल्हा कैसे ----

काम तो है आ~राम को
योगा के विश्राम को।~2
इसके पीछे उमर कट गई
आखिर कब ये फलेगा।
चूल्हा कैसे ---

कुंडलिनी शक्ति ही ड्रेगन है

दोस्तों, मैं पिछली पोस्ट में स्नान-योग अर्थात शीतजल स्नान और गंगास्नान से प्राप्त कुंडलिनी लाभ के बारे में बात कर रहा था। शीतजल स्नान अपने आप में एक संपूर्ण योग है। इसमें मूल बंध, जलंधर बंध और उड्डीयान बंध, योग के तीनों मुख्य बंध एकसाथ लगते हैं। हालांकि आजकल गंगा में प्रदूषण भी काफी बढ़ गया है, और लोगों में इतनी योगशक्ति भी नहीं रही कि वे ठंडे पानी को ज्यादा झेल सकें। मेरे एक अधेड़ उम्र के रिश्तेदार थे, जो परिवार के साथ गंगास्नान करने गए, और गंगा में अपने हरेक सगे संबंधी के नाम की एक-एक पवित्र डुबकी लम्बे समय तक लगाते रहे। घर वापिस आने पर उन्हें फेफड़ों का संक्रमण हो गया, जिससे उनकी जान ही चली गई। हो सकता है कि और भी वजहें रही हों। बिना वैज्ञानिक जाँच के तो पुख्ता तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता, पर इतना जरूर है कि जिस पानी में इतने सारे लोग एकसाथ नहा रहे हों, और जिसमें बिना जले या अधजले शव फ़ेंके जाते हों, साथ में मानव बस्तियों व उद्योगों का अपशिष्ट जल डाला जाता हो, उसमें संक्रमण फैलाने वाले कीटाणु मौजूद हो सकते हैं। पहले ऐसा नहीं था या कम होता था, और साथ में योगशक्ति आदि से लोगों की इम्युनिटी मजबूत होती थी।

मैं जागृति की जाँच के संबंध में भी बात कर रहा था। मैं इस पैराग्राफ में कुछ दार्शनिक गहराई में जा रहा हूँ। पाठकों को यह उबाऊ लग सकती है इसलिए वे चाहें तो आगे भी निकल सकते हैं। जागृति की जाँच से यह फायदा होगा कि जागृत व्यक्ति को यथासम्भव भरपूर सुखसुविधाओं का हकदार बनाया जा सकता है। जागृति के बाद भरपूर सुखसुविधाएं भी जब उसे मोहित नहीं कर पाएंगी, तभी तो वह जागृति की असली कीमत पहचानेगा न। दुनिया से संन्यास लेने से उसे जागृति के महत्त्व का कैसे पता चलेगा। उसके लिए तो महत्त्व उन्हीं दुनियावी सुखों का बना रहेगा, जिनका लालसा भरा चिंतन वह मन ही मन करता रहेगा। चीनी का महत्त्व आदमी तभी समझेगा न जब वह चीनी खाने के एकदम बाद मिष्ठान्न खाएगा और उसे उसमें मिठास नहीं लगेगी। अगर वह चीनी खाने के एकदम बाद मिष्ठान्न नहीं खाएगा, तब तो वह मिष्ठान्न का ही गुणगान गाता रहेगा, और चीनी को बेकार समझेगा। इसलिए मेरा मानना है कि जागृति के एकदम बाद आदमी के जीवन में दुनियावी सुखसुविधाओं की बाढ़ आ जानी चाहिए, ताकि वह इनकी निरर्थकता को दिल से महसूस कर सके और फिर प्रवचनादि से अन्य लोगों को भी महसूस करवा सके, केवल सुनीसुनाई बातों के सहारे न बैठा रहे। इसीलिए तो पुराने समय में राजा लोग वन में ज्ञानप्राप्ति के बाद अपने राज्य को लौट आया करते थे, और पूर्ववत सभी सुखसुविधाओं के साथ अपना आगामी जीवन सुखपूर्वक बिताते थे, वन में ही दुबके नहीं रहते थे। सम्भवतः इस सत्य को दिल से महसूस करके ही आदमी आत्मविकास के शिखर तक पहुंचता है, केवल सुनने भर से नहीं। सम्भवतः ओशो महाराज का क्रियादर्शन भी यही था। मैं भी उनकी तरह कई बार बनी-बनाई रूढ़िवादी धारणाओं से बिल्कुल उल्टा चलता हूँ, अब चाहे कोई मुझे क्रन्तिकारी कहे या सत्याग्रही। ज्यादा उपयुक्त शब्द 'स्वतंत्र विचारक' लगता है, क्योंकि स्वतंत्र विचार को किसी पर थोपा नहीं जाता और न ही उसके लिए भीड़ इकट्ठा की जाती है, अच्छा लगने पर लोग खुद उसे चुनते हैं। यह लोकतान्त्रिक और शान्तिपरक होता है, क्रांति के ठीक विपरीत। ओशो महाराज ने यह अंतर बहुत अच्छे से समझाया है, जिस पर उनकी एक पुस्तक भी है। बेशक जिसने पहले कभी मिष्ठान्न खाया हुआ हो, तो वह चीनी खाने के बाद मिष्ठान्न के स्वाद को याद कर के यह अंदाजा लगा सकता है कि चीनी की मिठास मिष्ठान्न से ज्यादा है, पर मिष्ठान्न की नीरसता का पूरा पता तो उसे चीनी खाने के बाद मिष्ठान्न खा कर ही चलेगा। इसी तरह जागृति के बाद आदमी यह अंदाजा लगा सकता है कि जागृति सभी भौतिक सुखों से बढ़कर है, पर भौतिक सुखों की नीरसता का प्रत्यक्ष अनुभव तो उसे जागृति के एकदम बाद सुखसुविधाओं में डूबने से होगा। जैसे अगर दुबारा चीनी का मिलना असम्भव हो, तो आदमी मिष्ठान्न खाकर चीनी की मिठास को पुनः याद कर सकता है, और कोई चारा नहीं, उसी तरह आदमी सुखसुविधाओं को भोगते

हुए उनसे अपनी जागृति को पुनः याद करते हुए उससे लाभ उठा सकता है, और कोई चारा नहीं। तो ये आसमान में फूल की तरह संन्यास कहाँ से आ गया। मुझे लगता है कि संन्यास उसके लिए है, जो परवैराग्य में स्थित हो गया है, मतलब जागृति के बाद सारी सुखसुविधाओं को भरपूर भोग लेने के बाद उनकी नीरसता का प्रत्यक्ष अनुभव कर चुका है, और उनसे भी पूरी तरह विमुख हो गया है। उसको जागृति की तमन्ना भी नहीं रही है, क्योंकि सुख़सुविधाओं की तरह जागृति भी दुनियावी ही है, और दोनों एकदूसरे की याद दिलाते रहते हैं। पर यहाँ बहुत सावधानी की आवश्यकता है, क्योंकि जगत के प्रति जरा भी महत्त्वबुद्धि रहने से वह योगभ्रष्ट बन सकता है, मतलब लौकिक और पारलौकिक दोनों लाभोँ से एकसाथ वँचित रह सकता है। इसलिए सबसे अच्छा व सुरक्षित तरीका गृहस्थ आश्रम का कर्मयोग ही है, जिसमें किसी भी हालत में खतरा नहीं है। जागृति के एकदम बाद के साधारण वैराग्य में संन्यास लेने से वह सुखभोगों की पुरानी यादों से काम चला सकता है, पर यह प्रत्यक्ष सुखभोगों की तरह कारगर नहीं हो पाता, और योगी की सुखभोगों के प्रति महत्त्वबुद्धि बनी रहती है।

सुखसुविधाएं तो दूर, कई लोग तो यहाँ तो कहते हैं कि आदमी को विशेषकर जागृत व्यक्ति को भोजन की जरूरत ही नहीं, उसके लिए तो हवापानी ही काफी है। ऐसा कैसे चलेगा। भौतिक सत्य को समझना पड़ेगा। दरअसल मोटापा अधिक भोजन से नहीं, अपितु असंतुलित भोजन से पनपता है। शरीर के मैटाबोलिज़्म को सुचारु रूप से चलाने के लिए सभी आवश्यक तत्त्व उचित मात्रा में चाहिए होते हैं। किसी की भी कमी से चयापचय गड़बड़ा जाता है, जिससे शरीर में भोजन ढंग से जल नहीं पाता, और इकट्ठा जमा होकर मोटापा पैदा करता है। शरीर ही चूल्हा है। यह जितना तेजी से जलेगा, जीवन उतना ही ज्यादा चमकेगा। बहुत से लोगों के लिए आज हिन्दू धर्म का मतलब कुछ बाहरी दिखावा ही रह गया है। उसे खान-पान के और रहन-सहन के विशेष और लगभग आभासिक जैसे अवैज्ञानिक (क्योंकि उसके पीछे का विज्ञान नहीं समझ रहे) तरीके तक सीमित समझ लिया गया है। कुछ लोगों के लिए मांस-मदिरा का प्रयोग न करने वाले हिन्दू हैं, तो कुछ के लिए संभोग से दूरी बना कर रखने वाले हिन्दू हैं। कुछ लोगों के लिए हिंदु धर्म पालयनवादी है। इसी तरह कई लोगों की यह धारणा है कि जो जितना ज्यादा अहिंसक है, गाय की तरह, वह उतना ही ज्यादा हिंदूवादी है। योग और जागृति गए तेल लेने। यहाँ तक कि अधिकांश लोग कुंडलिनी का अर्थ भी नहीं समझते। वे इसे ज्योतिष वाली कुंडली पत्री समझते हैं। हालांकि यह भी सत्य है कि पलायनवाद और शराफत से ही दुनिया बच सकती है, क्योंकि मानव की अति क्रियाशीलता के कारण यह धरती नष्ट होने की कगार पर है। इस तरह का बाहरी दिखावा हर धर्म में है, पर क्योंकि हिन्दू धर्म में यह जरूरत से ज्यादा उदारता व सहनशीलता से भरा है, इसलिए यह कमजोरी बन जाता है, जिससे दूसरे धर्मों को बेवजह हावी होने का मिलता है। अगर आप अपनी दुकान से गायब रहोगे, तो दूसरे लोग तो आएंगे ही उसमें बैठने। हालांकि यहाँ यह बात गौर करने लायक है कि मशहूर योगी गोपी कृष्ण ने अपनी किताब में लिखा है कि जागृति के बाद उन्हें इतनी ज्यादा ऊर्जा की जरूरत पड़ती थी कि कुछ मांसाहार के बिना उनका गुजारा ही नहीं चलता था। यह भी हो सकता है कि भिन्नभिन्न प्रकार के लोगों की भिन्नभिन्न प्रकार की जरूरतें हों। मैं फेसबुक पर एक मित्र की पोस्ट पढ़ रहा था, जो लिख रहा था कि अपने धर्म को दोष देने की, उसे बदनाम करने की और उसे छोटीछोटी बातों पर आसानी से छोड़ने की या धर्म बदलने की या धर्मनिरपेक्ष बनने की आदत हिन्दुओं की ही है, दूसरे धर्म के लोगों की नहीं। दूसरे धर्म के लोग किसी भी हालत में अपने धर्म को दोष नहीं देते, अपितु उसके प्रति गलत समझ और गलत व्यवस्था को दोष देते हैं। इसीलिए बहुत से लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि हिंदु धर्म को दूसरे धर्म के लोगों से ज्यादा अपने धर्म के लोगों से खतरा है। वैसे इस वैबसाईट का लक्ष्य धर्म की विवेचना करना नहीं है, यह तो प्रसंगवश बात चल पड़ी थी। यह तो मानना ही पड़ेगा का हिंदु धर्म की उदारता और सहनशीलता के महान गुण के कारण ही आज सबसे ज्यादा वैज्ञानिक शोध इसी धर्म पर हो रहे हैं। कई बार दिल की बात को बोलना-लिखना मुश्किल हो जाता है, जिससे गलतफहमियां पैदा हो सकती हैं। किसी के गुणों को उस पर स्थायी रूप से चिपकाने से भी गलतफहमी पैदा होती है। होता क्या है कि गुण बदलते रहते हैं। यह हो सकता है कि

किसी में कोई विशेष गुण ज्यादा दिखता हो या और गुणों की अपेक्षा ज्यादा बार आता-जाता हो। ऐसा ही मैंने हिंदु धर्म के कुछ उपरोक्त गुणों के बारे में कहा है कि वे ज्यादा नजर आते हैँ कई बार, हमेशा नहीं। काल गणना भी जरूरी है, वस्तुस्थिति को स्पष्ट करने के लिए। ऐसा भी हो सकता है कि विशेष गुणों को धर्म के कुछ लोग ही अपनाएं, अन्य नहीं। इसलिए धर्म के साथ उसके घटक दलों पर नजर रखना भी जरूरी है। इसी तरह क्षेत्र विशेष पर भी निर्भर करता है। कहीं पर किसी धर्म के साथ कोई एक विशेष गुण ज्यादा प्रभावी हो सकता है, तो किसी अन्य जगह पर पर कोई अन्य विशेष गुण। सभी धर्मों में सभी गुण मौजूद हैं, कभी कोई ज्यादा दिखता है, तो कभी कोई दूसरा। पर जो गुण औसत से ज्यादा नजर दिखता है, वह उस धर्म के साथ स्थायी तौर पर चिपका दिया जाता है, और उस गुण के साथ उस धर्म की पहचान जोड़ दी जाती है, जिससे धार्मिक वैमनस्य पैदा होता है। इसीलिए कहते हैं कि बुराई से लड़ो, धर्म से नहीं; बुराई से लड़ो, बुरे से नहीं। कंडीशन्स लागू हो सकती हैं। अगर कोई मुझे मेरे अपने जायज हक के लिए तनिक गुस्से में देख ले, और मेरे प्रति स्थायी धारणा फैला दे कि मैं गुस्सैल किस्म का आदमी हूँ, तो मुझे तो बुरा लगेगा ही। आजकल के दौर में मुझे सभी धर्म असंतुलित नजर आते हैं, मतलब औसत रूप में। किसी धर्म में जरूरत से ज्यादा सतोगुण, तो किसी में रजोगुण, और किसी में तमोगुण है। कोई वामपंथियों की तरह उत्तर की तरफ जा रहा है, तो कोई दक्षिणपांथियों की तरह दक्षिण की तरफ, बीच में कोई नहीं। यह मैं औसत नजरिये को बता रहा हुँ, या जैसे विभिन्न धर्मगुरु दुनिया के सामने अपने धर्म को अभिव्यक्त करते हैं, असल में तो सभी धर्मों के अंदर बढ़चढ़ कर महान लोग हैं। अगर सभी धर्म मित्रतापूर्वक मिलजुल कर रहने लगें, तो यह औसत असंतुलन भी खत्म हो जाएगा, और पूरी दुनिया में पूर्ण संतुलन क़ायम हो जाएगा। संतुलन ही योग है।

उदाहरण के लिए चायना के ड्रेगन को ही लें। कहते हैँ कि ड्रेगन को मानने वाला चीनी होता है। पर हम सभी ड्रेगन को मानते हैं। यह किसी विशेष देश विशेष से नहीं जुड़ा है। ठंडे जल से स्नान के समय जब सिर को चढ़ी हुई कुंडलिनी आगे से नीचे उतारी जाती है, तो तेजी से गर्म साँसें चलती है, विशेष रूप से झटके के साथ बाहर की तरफ, जैसे कि ड्रेगन आग उगल रही हो। प्रेम प्रसंगों में भी 'गर्म सांसें' शब्द काफी मशहूर हैं।ड्रेगन या शेर की तरह मुंह चौड़ा खुल जाता है, सारे दाँत बाहर को दिखाई देते हैँ, नाक व कपोल ऊपर की तरह खिंचता है, जिससे आँखें थोड़ा भिंच सी जाती हैं, शरीर का आकार भी ड्रेगन की तरह हो जाता है, पेट अंदर को भिंचा हुआ, और सांसों से फैलती और सिकुड़ती छाती। शरीर का हिलना डुलना भी ड्रेगन की तरह लगता है। ड्रेगन को उड़ने वाला इसलिए दिखाया जाता है क्योंकि क्योंकि कुंडलिनी भी पलभर में ही ब्रह्माण्ड के किसी भी कोने में पहुंच जाती है। शरीर ब्रह्माण्ड तो ही है, मिनी ब्रह्माण्ड। ड्रेगन के द्वारा आदमी को मारने का मतलब है कुंडलिनी शक्ति द्वारा आदमी के अहंकार को नष्ट कर के उसे अपने नियंत्रण में लेना है। फिल्मों में, विशेषकर एनीमेशन फिल्मों में जो दिखाया जाता है कि आदमी ने कैसे ड्रेगन को जीतकर और उसको वश में करके उससे बहुत से काम लिए, उस पर बैठकर हवाई यात्राएं कीं, और अपने दुश्मनों से बदला लिया आदि, यह कुंडलिनी को वश में करने और उससे विभिन्न लौकिक सिद्धियों को हासिल करने को ही दर्शाता है। कहीं खूंखार जानवरों की शक्ति के पीछे कुंडलिनी शक्ति ही तो नहीं, यह मनोवैज्ञानिक शोध का विषय है। सम्भवतः गुस्से के समय जो चेहरा विकृत और डरावना हो जाता है, उसके पीछे भी यही वजह हो। दरअसल मांसपेशियों के संकुचन से उत्पन्न गर्मी ही गर्म सांसों के रूप में बाहर निकलती है। अब आप कहोगे कि मस्तिष्क से कुंडलिनी को नीचे कैसे उतारना है। इसमें कोई रॉकेट साईंस नहीं है। मस्तिष्क को बच्चे या गूंगे बहरे की तरह ढीला छोड़ दें, बस कुंडलिनी एक झटके वाली गहरी बाहर की ओर सांस और पेट की अंदर की ओर सिकुड़न के साथ नीचे आ जाएगी। हालांकि जल्दी ऊपर चढ़ जाती है फिर से। कुंडलिनी को लगातार नीचे रखने के लिए अभ्यास करना पड़ता है।

आदमी के चेहरे के आकलन से उसके व्यक्तित्व का आकलन हो जाता है

आदमी के चेहरे के आकलन से उसके व्यक्तित्व का आकलन हो जाता है। सीधी सी कॉमन सेंस की बात है। किसी का शारीरिक मुकाबला करने के लिए बाजुओं और टांगों को शक्ति की जरूरत होती है। शरीर की कुल शक्ति सीमित और निर्धारित है। उसे एकदम से नहीं बढ़ाया जा सकता। इसलिए यही तरीका बचता है कि शरीर के दूसरे भाग की शक्ति इन्हें दी जाए। आप किसी भी अंग की क्रियाशीलता को ज्यादा कम नहीं कर सकते, क्योंकि सभी अंग एकदूसरे से जुड़े हैं। शक्ति की नोटिसेबल या निर्णायक कमी आप मस्तिष्क में ही कर सकते हैं, क्योंकि इसमें फालतू विचारों और भावनाओं के रूप बहुत सी अतिरिक्त शक्ति जमा हुई रहती है। इसीलिए गुस्से और लड़ाई के समय चेहरे विकृत हो जाते हैं, क्योंकि उससे ऊर्जा नीचे उतर रही होती है। लड़ाई शुरु करने से पहले भी आदमी इसीलिए गालीगलौज या फालतू बहस करते हैं, ताकि उससे विचार और भावनाएं और दिमाग़ की सोचने की शक्ति बाधित हो जाए और चेहरा विकृत होने से वह शक्ति नीचे आकर बाजुओं आदि योद्धा अंगों को मिले। तभी तो देखा जाता है कि हल्की सी मुस्कान भी गंभीर झगड़ों से चमत्कारिक रूप में बचा लेती है। मुस्कुराहट से शक्ति पुनः मस्तिष्क की तरफ लौटने लगती है, जिससे सोचने-विचारने की शक्ति बढ़ने से और योद्धा अंगों को शक्ति की कमी होने से लड़ाई टल जाती है। इसीलिए मुस्कुराती और शांत शख्ससियत से हर कोई मित्रता करना चाहता है, चाहे कोई झूठमूठ में ही मुस्कुराता रहे, और जलेभुने व टेंस आदमी से हरकोई दूर भागता है।

कुंडलिनी योग बनाम परमाणु विश्वयुद्ध

कुंडलिनी ऊर्जा ही नीलकंठ शिव महादेव के हलाहल विष को नष्ट करती है

दोस्तों, मैं हाल ही में एक स्थानीय मेले में गया। वहाँ मैं ड्रेगन ट्रेन को निहारने लगा। उसका खुले दांतों वाला मुंह दिखते ही मेरे अंदर ऊर्जा मुलाधार से ऊपर उठकर घूमने जैसी लग जाती थी। हालांकि यह हल्का आभास था, पर आनंद पैदा करने वाला था, लगभग वैसा ही जैसा शिवलिंगम के दर्शन से महसूस होता है। स्थानीय संस्कृति के अनुसार बाहरी अभिव्यक्ति के तरीके बदलते रहते हैं, पर मूल चीज एक ही रहती है। इसी के संबंध में मैं पिछली पोस्ट में बता रहा था कि कैसे गुस्से आदि से कुंडलिनी शक्ति मस्तिष्क से नीचे उतरकर योद्धा अंगों को चली जाती है। इससे मस्तिष्क में स्मरण शक्ति और भावनाएं क्षीण हो जाती हैं। भावनाएँ बहुत सारी ऊर्जा को खाती हैं। इसीलिए तो तीखी भावनाओं या भावनात्मक आघात के बाद आदमी अक्सर बीमार पड़ जाता है। आपने सुना होगा कि फलां आदमी अपने किसी प्रिय परिचित को खोने के बाद बीमार पड़ गया या चल बसा। गहरे तनाव के दौरान दिल का दौरा पड़ना तो आजकल आम ही हो गया है। शरीरविज्ञान दर्शन से अनियंत्रित भावनाओं पर लगाम लगती है। उपरोक्त मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से इसमें भी कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि ड्रेगन के ध्यान से या उसको अपने शरीर पर आरोपित करने से कुंडलिनी शक्ति विभिन्न चक्रोँ पर उजागर होने लगती है। सम्भवतः बुद्धिस्टों के रैथफुल डाइटि भी इसी सिद्धांत से कुंडलिनी की मदद करते हैं। दरअसल विभिन्न धर्मशास्त्रों में जो आचार शिक्षा दी जाती है, उसके पीछे यही कुंडलिनी विज्ञान छुपा है। सत्य बोलो, चोरी न करो, क्रोध न करो, मीठा बोलो, हमेशा प्रसन्न व हँसमुख रहो, आसक्ति न करो आदि वचन हमें अवैज्ञानिक लगते हैं, पर इनके पीछे की वजह बहुमूल्य ऊर्जा को बचा कर उसे कुंडलिनी को उपलब्ध कराना ही है, ताकि वह जल्दी से जल्दी जागृत हो सके। कइयों को इसमें केवल स्वास्थ्य विज्ञान ही दिखता है, पर इसमें आध्यात्मिक विज्ञान भी छुपा होता है। ड्रेगन, शेर आदि हिंसक जीवों की ऊर्जा जब मस्तिष्क से नीचे उतरती है, तब सबसे पहले चेहरे, जबड़े और गर्दन पर आती है। इसीलिए तो क्रोध भरे मुख से गुर्राते हुए ये जबड़े और गर्दन की कलाबाजी पूर्ण गतियों से शिकार के ऊपर टूट पड़ते हैं। फिर कुछ अतिरिक्त ऊर्जा आगे की टांगों पर भी आ जाती है, जिससे ये शिकार को कस कर पकड़ लेते हैं। जब इन क्रियाओं से दिल थक जाता है, तब अतिरिक्त ऊर्जा दिल को भी मिलती है। उसके बाद ऊर्जा पेट को पहुंचती है, जिससे भूख बढ़ती है। इससे वह और हमलावर हो जाता है, क्योंकि वहाँ से ऊर्जा बैक चैनल से वापिस ऊपर लौटने लगती है, और टॉप पर पहुंचकर एकदम से जबड़े को उतर जाती है। जब इतनी मेहनत के बाद भी शिकार काबू में न आकर भागने लगता है, तो ऊर्जा टांगों में पहुंच कर शिकारी को उसके पीछे भगाने लगती है। थोड़ी देर बाद वह ऊर्जा मस्तिष्क को वापिस चली जाती है, और शिकारी पशु थक कर बैठ जाता है। फिर वह अपनी ऊर्जा को नीचे उतारने के लिए चेहरे को विकृत नहीं करता क्योंकि तब उसे पता लग जाता है कि इससे कोई फायदा नहीं होने वाला। वह इतना थक जाता है कि उसके पास ऊर्जा उतारने के लिए भी ऊर्जा नहीं बची होती। ऊर्जा उतारने के लिए भी ऊर्जा चाहिए होती है। इसीलिए उस समय वह गाय की तरह शांत, दयावान, अहिंसक और सदगुणों से भरा लगता है, उसकी स्मरणशक्ति और शुभ भावनाएँ लौट आती हैं, क्योंकि उस समय उसका मस्तिष्क ऊर्जा से भरा होता है। यह अलग बात है कि मस्तिष्क से नीचे उतरी हुई ऊर्जा उसे अंधकार के रूप में महसूस होती है, कुंडलिनी चित्र के रूप में नहीं, क्योंकि निम्न जीव होने से उसमें दिमाग़ भी कम है, और वह कुंडलिनी योगी भी नहीं है। दरअसल जो शिव ने विष ग्रहण करके उसे गले में फँसा कर रखा था, वह आदमी के मस्तिष्क की दुर्भावनाओं के रूप में अभिव्यक्त ऊर्जा ही है। विष का पान किया, मतलब आम दुनिया की बुरी बातें और बुरे दृश्य नकारात्मक ऊर्जा के रूप में कानों और आँखों आदि से अंदर प्रविष्ट हो गए। वह नकारात्मक ऊर्जा जब विशुद्धि चक्र पर पहुंचती है, तब वह कुंडलिनी ऊर्जा में रूपांतरित होकर वहाँ लम्बे समय तक फंसी रहती है। इसकी वजह है गर्दन की स्थिति और बनावट। गर्दन सिर और धड़ के जोड़ की तरह है, जो सबसे ज्यादा गतिशील है। जैसे पाईप आदि के

बीच में स्थित लचीले और मुलायम जोड़ों पर पानी या उसमें मौजूद मिट्टी आदि जम कर फंस जाते हैं, उसी तरह गर्दन में ऊर्जा फंसी रह जाती है। इसीलिए तो भगवान शिव से वह विष न तो उगलते बना और न ही निगलते, वह गले में ही फंसा रह गया, इसीलिए शिव नीलकंठ कहलाते हैं। इसीलिए कहते हैं कि जिसने विशुद्धि चक्र को सिद्ध कर दिया, उसने बहुत कुछ सिद्ध कर लिया। दरअसल अगर कुंडलिनी शक्ति को गले से नीचे के किसी चक्र पर उतारा जाए, तो वह एकदम से घूम कर दुबारा मस्तिष्क में पहुंच जाती है, और वहाँ तनाव के दबाव को बढ़ाती है। हालांकि फिर ज्यादातर मामलों में वह सकारात्मक या अद्वैतात्मक कुंडलिनी ऊर्जा के रूप में महसूस होती है, नकारात्मक या द्वैतात्मक ऊर्जा के रूप में नहीं। हृदय चक्र पर भी काफी देर तक स्थिर रहती है, नाभि चक्र और उसके नीचे के चक्रौँ से तो पेट की सिकुड़न के साथ एकदम वापिस मुड़ने लगती है। यद्यपि फिर यह सकारात्मक कुंडलिनी ऊर्जा है, लेकिन मस्तिष्क में इसके वापस बुरे विचारों में परिवर्तित होने की संभावना तब भी बनी ही रहती है। वह ऊर्जा योद्धा अंगों से उठापटक भी करवा सकती है। इसीलिए उसे गले के विशुद्धि चक्र पर रोककर रखा जाता है। मतलब कि अगर भगवान शिव तनाव रूपी जहर को गले से नीचे उतारकर पी जाए, तो वे विनाशकारी तांडव नृत्य से दुनिया में तबाही भी मचा सकते हैं, या वह रूपांतरित जहर उनके पेट से चूस लिया जाएगा, और वह रक्त में मिलकर पुनः मस्तिष्क में पहुंच जाएगा। मस्तिष्क में जहर पहुंचने का अर्थ है, अज्ञानरूपी या मनोदोष रूपी अंधकार के रूप में मृत्यु की सम्भावना। मनोदोषों से दुनिया में फिर से तबाही का खतरा पैदा हो जाएगा। सम्भवतः कुंडलिनी शक्ति भोजन के साथ पेट में पहुंचती है, और वहाँ से इसी तरह मस्तिष्क में पहुंच जाती है। हालांकि, तथाकथित विकृत ऊर्जा रूपी जहर पीने के बाद, मस्तिष्क में पुन: अवशोषण के साथ, थोड़े अतिरिक्त विचारशील प्रयास के साथ लंबे समय तक इसके कुंडलिनी ऊर्जा में रूपांतरित बने रहने की अधिकतम संभावना होती है। शिव जहर को उगल भी नहीं सकते, क्योंकि अगर वे उसे बाहर उगलते हैं तो भी उससे जीवों का विनाश हो सकता है। आदमी के मस्तिष्क की दुर्भावनाएं यदि बदजुबानी, गुस्से, बुरी नजर या मारपीट आदि के रूप में बाहर निकल जाएं, तो स्वाभाविक रूप से वे अन्य लोगों और जीवजंतुओं का अहित ही करेंगी। उससे समाज में आपसी वैमनस्य और हिंसा आदि दोष फैलेंगे। इसीलिए लोग कहते हैं कि फलां आदमी को गुस्सा तो बहुत आया पर वह उसे पी गया। दरअसल गुस्सा पीआ नहीं जाता, उसे गले में अटकाकर रखा जाता है, पीने से तो वह फिर से दिमाग़ में पहुंच जाएगा। इसीलिए कई लोगों को आपने परेशान होकर कहते हुए सुना होगा, मेरे तो गले तक आ गई। दरअसल कमजोर वर्ग के लोग ऐसा ज्यादा कहते हैं, क्योंकि न तो वे परेशानी को निगल सकते हैं, और न ही उगल सकते हैं, लोगों के द्वारा बदले में सताए जाने के डर से। दरअसल वे सबसे खुश होते हैं भोले शंकर की तरह, परेशानी को गले में फँसाए रखने के कारण। वे परेशान नहीं होते, परेशानी का उचित प्रबंधन करने के कारण। परेशान वे औरों को लगते हैं, क्योंकि उन्हें परेशानी को प्रबंधित करना नहीं आता। बहुत से लोगों को नीले गले वाले शिव बेचारे लग सकते हैं, पर बेचारे तो वे लोग खुद हैं, जो उन्हें समझ नहीं पाते। शिव किसीके डर की वजह से विष को गले में धारण नहीं करते, बल्कि अपने पुत्र समान सभी जीवों के प्रति दया के कारण ऐसा करते हैं। भगवान शिव सारी सृष्टि को बनाते और उसका पूरा कार्यभार सँभालते हैं। इसलिए स्वाभाविक है कि उनका दिमाग़ भी तनाव और अवसाद से भर जाता होगा। वह तनाव गुस्से के रूप में दुनिया के ऊपर न निकले, इसीलिए वे तनाव रूपी विष को अपने गले में धारण करके रखते हैं। क्योंकि रक्त का रंग भी लाल-नीला ही होता है, जो शक्ति का परिचायक है, इसीलिए उनका गला नीला पड़ जाता है। वे एक महान योगी की तरह व्यवहार करते हैं।

समुद्र मंथन या पृथ्वी-दोहन मानसिक दोषों के रूप में विष उत्पन्न करता है, जिसे शिव जैसे महापुरुषों द्वारा पचाया या नष्ट किया जाता है

कहते हैं कि वह हलाहल विष समुद्रमंथन के दौरान निकला था। उसमें और भी बहुत सी ऐश्वर्यमय चीजें निकली थीं। समुद्र का मतलब संसार अर्थात पृथ्वी है, मंथन का मतलब दोहन है, ऐश्वर्यशाली चीजें आप देख ही रहे हैं, जैसे कि मोटरगाड़ियां, कम्प्यूटर, हवाई जहाज, परमाणु रिएक्टर आदि अनगिनत मशीनें। आज भी ऐसा ही महान मंथन चल रहा है। अनगिनत नेता, राष्ट्रॉध्यक्ष, वैश्विक संस्थाएं, वैज्ञानिक और तकनीशियन समुद्रमंथन के देवताओं और राक्षसों की तरह है। इस आधुनिक समुद्रमंथन से पैदा क्रोध, ईर्ष्या, अहंकार आदि मन के दोषों के रूप में पैदा होने वाले विष को पीने की हिम्मत किसी में नहीं है। दुनिया दो धड़ों में बंट गई है। एकतरफ तथाकथित राक्षस या तानाशाह लोग हैं, तो दूसरी तरफ तथाकथित देवता या लोकतान्त्रिक लोग हैं। इसीलिए पूरी दुनिया आज परमाणु युद्ध के मुहाने पर खड़ी है। सभी को इंतजार है कि किसी महापुरुष के रूप में शिव आएंगे और इस विष को पीकर दुनिया को नष्ट होने से बचाएंगे।

आज के समय में जिम व्यायाम के साथ योग बहुत जरूरी है

बहुत सी खबरें सुनने को मिल रही हैं कि फलां कलाकार या सेलिब्रिटी या कोई अन्य जिम व्यायाम करते हुए दिल के दौरे का शिकार होकर मर गया। मुझे लगता है कि वे पहले ही तनाव से भरे जीवन से गुजर रहे होते हैं। इससे उनके दिल पर पहले ही बहुत बोझ होता है। फिर बंद कमरे जैसे घुटन भरे स्थान पर भारी व्यायाम से वह बोझ और बढ़ जाता है, जिससे अचानक दिल का दौरा पड़ जाता है। पहले योग से तनाव को कम कर लेना चाहिए। उसके बाद ही भौतिक व्यायाम करना चाहिए, अगर जरूरत हो तो, और जितनी झेलने की क्षमता हो। योग से नाड़ियों में ऊर्जा घूमने लगती है। जीभ और तालु के आपसी स्पर्श के सहयोग से वह आसानी से मस्तिष्क से गले को या नीचे के अन्य चक्र को उतरती है, विशेषकर जब साथ में शरीरविज्ञान दर्शन की भी मन में भावना हो। शरीरविज्ञान दर्शन से मानसिक कुंडलिनी चित्र प्रकट होता है, और इसके साथ तालु-जीभ के परस्पर स्पर्ष के ध्यान से कुंडलिनी ऊर्जा अपने साथ ले जाता हुआ वह चित्र मस्तिष्क के दबाव को न बढ़ाता हुआ आगे के चैनल से होता हुआ किसी भी अनुकूल चक्र पर चमकने लगता है। इससे कुंडलिनी ऊर्जा व्यर्थ की बातचीत में बर्बाद न होकर विशुद्धि चक्र को भी पुष्ट करती है।

मस्तिष्क की ऊर्जा के सिंक या अवशोषक के रूप में विशुद्धि चक्र

ठंडे जल से नहाते समय जब नीचे से चढ़ती हुई ऊर्जा से मस्तिष्क का दबाव बढ़ जाता है या सिरदर्द जैसा होने लगता है, तब नीचे से आ रही ऊर्जा विशुद्धि चक्र पर कुंडलिनी प्रकाश और सिकुड़न के साथ घनीभूत होने लगती है। ऐसा लगता है कि नीचे का शरीर आटा चक्की का निचला पाट है, मस्तिष्क ऊपर वाला पाट है और विशुद्धि चक्र वह बीच वाला छोटा स्थान है, जिस पर दाना पिस रहा होता है। या ऊर्जा सीधी भी विशुद्धि चक्र को चढ़ सकती है, मस्तिष्क में अनुभव के बिना ही। जिसे ताउम्र प्रतिदिन गंगास्नान का अवसर प्राप्त होता था, उसे सबसे अधिक भाग्यवान, पुण्यवान और महान माना जाता था। “पंचस्नानी महाज्ञानी” कहावत भी शीतजल स्नान की महत्ता को दर्शाती है। गंगा के बर्फीले ठन्डे पानी में साल के सबसे ठंडे जनवरी (माघ) महीने के लगातार पांच पवित्र दिनों तक हरिद्वार के भिन्न-भिन्न पवित्र घाटों पर स्नान करना आसान नहीं है। आदमी में काफी योग शक्ति होनी चाहिए। पर यह जरूर है कि जिसने ये कर लिए, उसकी कुंडलिनी क्रियाशील होने की काफी सम्भावना है। इसीलिए कहते हैं कि ऐसे स्नान करने वाले को लोक और परलोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं, मुक्ति भी नहीं। ठंडे पानी से नहाने वाले व ठंडे स्थानों में रहने वाले लोग इसके विशुद्धि चक्र प्रभाव की वजह से

बहुत ओजस्वी और बातचीत में माहिर लगते हैं। यह ध्यान रहे कि ठंडे पानी का अभ्यास भी अन्य योगाभ्यासों की तरह धीरेधीरे ही बढ़ाना चाहिए, ताकि स्वास्थ्य को कोई हानि न पहुंचे। जिस दिन मन न करे, उस दिन नहीं नहाना चाहिए। अभ्यास और सहजता का नाम ही योग है। यकायक और जबरदस्ती योग नहीं है। अगर किसी दिन ज्यादा थकान हो तो न करने से अच्छा योगाभ्यास धीरे और आराम से करना चाहिए। इससे आदमी सहज़ योगी बनना सीखता है। किसी दिन कमजोरी लगे या मन न करे तो उस दिन अन्य धार्मिक गतिविधियों को छोड़ा भी जा सकता है, मूलभूत हठ योगाभ्यास को नहीं, क्योंकि योग सांसों या प्राणों से जुड़ा होने के कारण जीवन का मूल आधार ही है, जबकि अन्य गतिविधियां ऐड ऑन अर्थात अतिरिक्त हैं। होता क्या है कि बातचीत के समय मन में उमड़ रही भावनाएं और विचार विशुद्धि चक्र पर कैद जैसे हो जाते हैं, क्योंकि उस समय विशुद्धि चक्र क्रियाशील होता है। जब योग आदि से पुनः विशुद्धि चक्र को क्रियाशील किया जाता है, तब वे वहाँ दबे विचार व भावनाएँ बाहर निकल कर नष्ट हो जाती हैं, जिससे शांति महसूस होती है, और आदमी आगे की नई कार्यवाही के लिए तरोताज़ा हो जाता है। यह ऐसे ही है, जैसे खाली ऑडियो रिकॉर्डर में ऑडियो कैसेट को घुमाने से उस पर आवाज दर्ज हो जाती है। जब उस लोडिड कैसेट को पुनः उसी तरह घुमाया जाता है, तो वह दबी हुई आवाज गाने के रूप में बाहर आ जाती है, जिसे हम सब सुनते हैं। इसी तरह सभी चक्रोँ पर होता है। यह मुझे बहुत बड़ा चक्र रहस्य लगता है, जिसके बारे में एक पुरानी पोस्ट में भी बात कर रहा था।

श्री शब्द एक महामंत्र के रूप में (धारणा और ध्यान में अंतर)

जिंदगी की भागदौड़ में यदि शरीरविज्ञान दर्शन शब्द का मन में उच्चारण न कर सको, तो श्रीविज्ञान या शिवविज्ञान या शिव या शविद या केवल श्री का ही उच्चारण कर लो, कुंडलिनी आनंद और शांति के साथ क्रियाशील हो जाएगी। श्री शब्द में बहुत शक्ति है, इसी तरह श्री यंत्र में भी। सम्भवतः यह शक्ति शरीरविज्ञान दर्शन से ही आती है, क्योंकि श्री शब्द शरीर से निकला हुआ शब्द और उसका संक्षिप्त रूप लगता है। श्री शब्द सबसे बड़ा मंत्र लगता है मुझे, क्योंकि यह बोलने में सुगम है और एक ऐसा दबाव पैदा करता है, जिससे कुंडलिनी क्रियाशील होने लगती है। सम्भवतः इसीलिए किसी को नाम से सम्बोधित करने से पहले उसके साथ श्री लगाते हैं। इसी तरह धार्मिक अवसरों व क्रियाकलापों को श्री शब्द से शुरु किया जाता है। इसी तरह शिव भी शरीर से मिलता जुलता शब्द है, शव भी। इसीलिए शक्तिहीन शिव को शव भी कहते हैं। अति व्यस्तता या शक्तिहीनता की अवस्था में केवल "श" शब्द का स्मरण भी धारणा को बनाए रखने के लिए काफी है। मन की भावनात्मक अवस्था में इसके स्मरण से विशेष लाभ मिलता है। "श" व "स" अक्षर में बहुत शक्ति है। इसीलिए श अक्षर से शांति शब्द बना है। श अक्षर के स्मरण से भी शांति मिलती है और कुंडलिनी से भी। श अक्षर से कुंडलिनी मस्तिष्क के नीचे के चक्रोँ मुख्यतः हृदय चक्र पर क्रियाशील होने लगती है। इससे आनंद के साथ शांति भी मिलती है, और मस्तिष्क का बोझ हल्का हो जाने से काम, क्रोध आदि मन के जंगी दोष भी शांत हो जाते हैं। इसी तरह श अक्षर से ही शक्ति शब्द बना है, जो कुंडलिनी का पर्याय है। यह संस्कृत भाषा का विज्ञान है। आपने संस्कृत मंत्र स्वस्तिवाचन के बाद चारों ओर शांति का माहौल महसूस किया ही होगा। यह सामूहिक रूप में गाया जाता है, जिसमें सम्पूर्ण सृष्टि की मंगलकामना की जाती है। ज्ञान होने पर भी उसका लाभ क्यों नहीं मिलता? क्योंकि हम ज्ञान की धारणा बना कर नहीं रखते। मैं ध्यान करने को नहीं बोल रहा। व्यस्त जीवन के दौरान ध्यान कर भी नहीं सकते। धारणा तो बना सकते हैं। धारणा और ध्यान में अंतर है। ध्यान का मतलब है उसको लगातार सोचना। इससे ऊर्जा का व्यय होता है। धारणा का मतलब है उस पर विश्वास या आस्था या उस तरफ सोच का झुकाव रखना। इसमें ऊर्जा व्यय नहीं होती। जब उपयुक्त समय कभी जिंदगी में प्राप्त होता है, तो धारणा एकदम से ध्यान में बदल जाती है और तनिक योगाभ्यास से समाधि तक ले जाती है। धारणा जितनी मजबूती से होगी और जितने लम्बे समय तक होगी, ध्यान उतना ही मजबूत और जल्दी लगेगा। पतंजलि ने भी अपने सूत्रों में धारणा से

ध्यान स्तर का प्राप्त होना बताया है। मेरे साथ भी ठीक ऐसे ही हुआ। मैं शरीरविज्ञान दर्शन नामक अद्वैत दर्शन पर धारणा बना कर रखता था पर समय और ऊर्जा की कमी से ध्यान नहीं कर पाता था। इनकी उपलब्धता पर वह धारणा ध्यान में बदल गई और ====बाकि का सफर आपको पता ही है (कि क्या होता है)। अद्वैत की धारणा अप्रत्यक्ष रूप में कुंडलिनी की धारणा ही होती है, क्योंकि अद्वैत और कुंडलिनी साथसाथ रहने की कोशिश करते हैं। ध्यान प्रत्यक्ष रूप में, मतलब जानबूझकर कुंडलिनी का किया जाता है, जिसमे कुंडलिनी जागरण प्राप्त होता है।

रूपान्तरण से आदमी पुरानी चीजों को भूलता नहीं हैं, अपितु उन्हें सकारात्मकता के साथ अपनाता है

योग खुद कोई रूपान्तरण नहीं करता। यह अप्रत्यक्ष रूप से खुद होता है। योग से मन का कचरा बाहर निकलने से मन खाली और तरोताज़ा हो जाता है। इससे मन नई चीजों को ग्रहण करता है। नई चीजों में भी अच्छी चीजें और आदतें ही ग्रहण करता है, क्योंकि योग से सतोगुण बढ़ता है, जो अच्छी चीजों को ही आकर्षित करता है। कई लोगों को लगता होगा कि योग से रूपान्तरण के बाद आदमी इतना बदल जाता है कि उसके पुराने दोस्त व परिचित उससे बिछड़ जाते हैं, उसके मन में पुरानी यादें मिट जाती हैं, वह अकेला पड़ जाता है वगैरह वगैरह। पर दरअसल बिल्कुल ऐसा नहीं होता। रहता उसमें सबकुछ है, पर उसे उनके लिए वह क्रेविंग या छटपटाहाट महसूस नहीं होती, जो कि रूपान्तरण से पहले होती है। उनके लिए उसके मन में विकार नहीं होते, जैसे कि काम, क्रोध, लोभ, मोह और मत्सर। इसका मतलब है कि फिर पुराने दुश्मन भी उसे दोस्त लगने लगते हैं। अगर ऐसा रूपान्तरण सभी के साथ हो जाए, तो दुनिया से लड़ाई-झगड़े ही खत्म हो जाएं। अगर ऐसा ही रूपान्तरण सभी देशों या राष्ट्रध्यक्ष लोगों के साथ हो जाए, तो युद्ध वगैरह कथा-कहानियों तक ही सीमित रह जाएंगे।

कुंडलिनी ही वह औरोबोरस सांप है जो अपने मुंह में अपनी पूँछ दबाकर यब-युम जैसा लूप बनाता है

श अक्षर दिल का अक्षर है~ श्री बीजमंत्र

दोस्तों, जैसा कि पिछली पोस्ट में विषय चल रहा था कि स या श अक्षर इसलिए भी कुंडलिनी प्रभाव को पैदा करता है, क्योंकि नाग की आवाज भी हिसिंग या स जैसी ही होती है। इसी तरह श्री में भी सर्प की सर सर चलने का शब्द भी समाहित है। श व स शब्द से ही श्री शब्द या श्रीं बीजमंत्र बना है, जो देवी का मुख्य बीज मंत्र है। इसमें शं, रं, और ह्रीं तीनों बीजमन्त्रों की सम्मिलित शक्ति होती है। सम्भवतः अंग्रेजी का शी शब्द इसी श्री से बना है। मुझे तो श अक्षर से शक्ति हृदय चक्र को उतरी हुई महसूस होती है। श से ही शंकर और शम्भु शब्द बने हैं। शं का अर्थ ही शांति होता है। पुरुष में भी श अक्षर मुख्य है। मुझे तो श अक्षर भावनाओं का और दिल का अक्षर लगता है। बीजमंत्र का ध्यान करते समय मन के विचारों को रोकना नहीं चाहिए, तभी उनकी शक्ति कुंडलिनी को लगती है। यदि विचारों को बलपूर्वक रोक दिया जाए, तब उनकी शक्ति खत्म हो जाएगी, फिर वो कुंडलिनी को कैसे लग पाएगी।

अंधेरा अल्प अवधि का होता है, जबकि प्रकाश चिर अवधि तक रहता है~ नॉनवेज और ड्रिंक

फिर मैं बता रहा था कि कैसे हिंसक जीव शिकार के समय खूंखार हो जाते हैं। शिकार को मारकर उसे भोजन के तौर पर खाते समय तो शेर आदमखोर भी हो जाता है, जैसा हम बड़े बुजुर्गों से सुना करते थे। दरअसल ननवेज में शक्ति तो होती है पर उसे पचाने के लिए भी बहुत शक्ति लगती है। यह ऐसे ही है जैसे गढ़े हुए पत्थर से बनी इमारत शक्तिशाली या मजबूत तो होती है, पर पत्थर गढ़ने के लिए भी ज्यादा शक्ति लगती है, साथ में गढ़े हुए बड़ेबड़े पत्थरों को इमारत तक ढोने और उन्हें सही जगह पर फिट करने में भी ज्यादा ऊर्जा खर्च होती है। ननवेज आदि का बेवजह उपयोग करने वाले का हाल उस कृपण सेठ की तरह होता है, जो अपना कीमती और दुर्लभ जीवन बेवजह धन सम्पत्ति इकट्ठा करने में बर्बाद कर देता है, पर वह कुछ भी उसके उपयोग में नहीं आती। या कह लो कि यह ऐसे ही है जैसे कोई सिरफिरा व्यक्ति अपना घर बन जाने के बाद भी सारी उमर पत्थर ही गढ़ता रहे। शिकारभोज के समय तेन्दुए की शक्ति पेट को चली जाती है, और मस्तिष्क में शक्ति की कमी से सोचने समझने की शक्ति नहीं रहती, जिससे वह अपने नजदीक हर किसी को उकसावा समझकर उस पर हमला बोल देता है, जवाबी हमले की परवाह किए बगैर। यह अलग बात है कि आदमी का व्यवहार उससे भी गिरा हुआ प्रतीत होता है क्योंकि उसने बिना उकसावे के ही चीते का इतना शिकार किया कि वे देश से विलुप्त ही हो गए, इसीलिए उन्हें पुनः बढ़ावा देने के लिए नामीबिया से आठ चीते विशेष विमान से यहाँ पहुंचा दिए गए हैं। सम्भवतः इसीलिए किसी भोजन करते हुए से मिलने या बात करने से मना किया जाता है। एकबार मैं बचपन में अपनी खाना खाती हुई मुख्याध्यापिका के कक्ष में प्रविष्ट होकर किसी काम के सिलसिले में बात करने लगा। मुझे वे उस समय एक शेरनी की तरह लगीं और मैं एकदम बाहर दौड़ आया। हमेशा के लिए अच्छी सीख भी मिल गई थी। मेरा एक दोस्त था। जिस दिन वह बाजार से ननवेज खाकर या ड्रिंक करके आता था, सीधा बिस्तर में जाकर सो जाता था, और किसीसे भी बात नहीं करता था, अगले दिन तक। सम्भवतः उसे एहसास था कि ऐसे समय में थोड़ी सी कहासुनी से बात बढ़ जाती, क्योंकि मस्तिष्क में शक्ति की कमी से अंधेरा होने से भले-बुरे का भान नहीं रहता। सम्भवतः इस वजह से भी यह धार्मिक मान्यता बनी हो कि ननवेज से मन में अंधेरा छाता है, और पाप लगता है।

रूपान्तरण ही जीव की नियति है जो उसे परम तक ले जाती है~ क्या योग ज़ेलेंस्की और पुतिन की मदद कर सकता है

रूपान्तरण धीरेधीरे होता है। इसे हम ऐसे समझ सकते हैं कि जब दो लोग बहुत वर्षों बाद मिलते हैं, तो आपसी दुश्मनी भूलकर दोस्त बन जाते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि अलगाव के दिनों में उन्होंने बहुत कुछ नया सीख लिया होता है, जिससे पुरानी भावनाएं कमजोर पड़ जाती हैं। यह ऐसे ही है जैसे यदि लिखे हुए ब्लैकबोर्ड पर आप जितना ज्यादा नया लिखेंगे, पुराने लिखे शब्द उतने ही मिटते जाएंगे। रूपान्तरण की यह रप्तार योग से इसलिए बहुत तेज हो जाती है क्योंकि इससे मन का कचरा बहुत जल्दी साफ हो जाता है। योग को आप मन रूपी ब्लैकबोर्ड का डस्टर कह सकते हैं। जैसे डस्टर के प्रयोग से पुराना लेख ज्यादा मिटता है, और नया लेख ज्यादा स्पष्ट हो जाता है, उसी तरह योग के प्रभाव से पुरानी भावनाएँ ज्यादा मिटती हैं, और नई स्वस्थ भावनाएँ ज्यादा स्पष्ट हो जाती हैं। यदि जैलेंस्की और पुतिन अगले जन्म में मिले तो सम्भवतःआपस में दुश्मनी बिल्कुल न रखें, पर यदि एक-दो महीने भी ढंग से योगाभ्यास कर लें, तो सम्भवतः तुरंत ही दुश्मनी भूलकर लड़ना बंद कर दें।

सभी धार्मिक गतिविधियां योग धारणा को बढ़ावा देने के कारण योग की प्राथमिक सीढ़ी की तरह हैं~ जब ध्यान शुरू होता है

जितनी भी धार्मिक गतिविधियां हैं, वे इसी योग धारणा को बनाए रखने के लिए है, जो मैं पिछली पोस्ट में बता रहा था। इससे स्पष्ट होता है कि सभी धर्म योग विज्ञान के अंतर्गत ही आते हैं। धारणा से ही ध्यान की शुरुआत होती है, और ध्यान से ही समाधि अर्थात कुंडलिनी जागरण की।

धमाके में चेतना का आनंद ढूंढती आधुनिक मानव संस्कृति~ महा विस्फोट (big bang) इतना आध्यात्मिक है

बम का धमाका भी कुंडलिनी जागरण का तुच्छ और पापपूर्ण और अमानवीय विकल्प लगता है मुझे। इसमें वैसी ही प्रकाश, गर्मी, चेतनता और आनंद की अनुभूति होती है, जैसी कुंडलिनी जागरण में, हालांकि उससे बहुत कम और क्षणिक रूप में। समारोह, त्यौहार आदि में चलाए जाने वाले पटाखे इसका अच्छा उदाहरण है। हालांकि यह मानवीय है अगर सीमा में रहे। सम्भवतः इसीलिए कई सिरफिरे चेतना की इसी क्षुद्र झलक की प्राप्ति के लिए युद्धाभ्यास के नाम पर धमाके करने लग जाते हैं। इससे जाहिर होता है कि योग से इस पर लगाम लग सकती है।

गंगास्नान से जो पाप धुलते हैं, वे योग से ही धुलते हैं~ सहस्रार के लिए एक अद्भुत मार्ग

गंगा में स्नान करने से पाप धुलते हैं, ऐसा कहा जाता है। दरअसल ऐसा कुंडलिनी शक्ति के मूलाधार से सहस्रार की तरफ चढ़ने से होता है। कहते हैं कि उन पापों को वहाँ आने वाले ऋषिमुनि ग्रहण कर लेते हैं। इसका मतलब है कि जब मस्तिष्क में शक्ति के पहुंचने से वह बहुत शक्तिशाली हो जाता है, तब उसमें किसी देवता या गुरु का जो चित्र कुंडलिनी चित्र अर्थात ध्यान चित्र के रूप में उभरता है, उसमें उन तपस्वी लोगों का बहुत ज्यादा योगदान होता है। वही कुंडलिनी चित्र पापों को जलाता है, सीधा गंगास्नान नहीं। मतलब कि पापों का नाश गंगास्नान से हो रहे योग से ही होता है। यदि ध्यान चित्र नहीं

बनेगा, तब मस्तिष्क की बेकाबू शक्ति अमानवीय कामों या लड़ाईझगड़े की तरफ भी जा सकती है। पुतिन बर्फीले पानी में आराम से नहा लेते हैं, पर कुंडलिनी जागरण के लिए नहीं, लड़ने के लिए। इसलिए योग के साथ ध्यान भी जरूरी है। मैं यह भी बता रहा था कि यदि कमजोरी या ठंड महसूस होए तो ठंडे पानी से नहीं नहाना चाहिए। इसी तरह यदि समय की कमी हो तो भी ठंडे पानी से नहीं नहाना चाहिए। कम से कम आधा घंटा तो चाहिए ही शीतजल स्नान के लिए। नहाते समय बीचबीच में मांसपेशियों की सिकुड़न के साथ कुंडलिनी शक्ति को घुमाते रहना पड़ता है, ताकि उससे गर्मी पैदा होती रहे और ठंड का असर कम होए। स्नान के एकदम बाद योग व व्यायाम कर लेना चाहिए ताकि जल्दी से जल्दी शरीर को पर्याप्त गर्मी मिल सके। शाम के समय अतिरिक्त समय भी ज्यादा होता है, और दिनभर की क्रियाशीलता से गर्मी भी चढ़ी होती है, इसलिए शाम को नहाया जा सकता है।

दिल दा मामला है~ इसे बहुत ठंड से बचाएं

सबसे ज्यादा ठंड का प्रभाव दिल पर पड़ता है। इसलिए दिल पर विशेष रूप से कुंडलिनी चित्र का ध्यान करते रहो, ताकि पूरे शरीर की शक्ति वहाँ विशेष रूप से केंद्रित होती रहे। इससे हृदय क्षेत्र की मांसपेशियों में सिकुड़न होगी जिससे वहाँ गर्मी बढ़ेगी और रक्तसंचार बढ़ेगा। साथ में शक्ति को घुमाते भी रहें माइक्रोकोस्मिक औरबिट में। वैसे भी दिल शरीर के बीच में ही प्रतीत होता है, अगर सभी चक्रोँ को लेकर चलें तो। नाभि चक्र तो तब शरीर के केंद्र में महसूस होता है, जैसा कि कहा भी जाता है, यदि टांगों को भी चक्रोँ के साथ जोड़ा जाए। दिल से ही शक्ति को शक्ति मिलती है, और शक्ति ही दिल को भी शक्ति देती है। हिसाब बराबर। इसीलिए दिल केंद्र में है। जब शीर्ष चक्र को शक्ति चढ़ने से दिल कुछ थक सा जाता है, तब उस शक्ति का कुछ हिस्सा दिल की ओर वापिस मुड़कर उसे भी शक्ति देता है।इससे जुड़ा मैं दो तीन साल पुराना एक वाकया सुनाता हूँ। एकबार मैं किसी समारोह दावत आदि से घर आ रहा था। ठंड का मौसम था। दावतकक्ष में तो गर्मी के सारे इंतजाम थे, जिससे मेरी स्किन की रक्तवाहिनियाँ खुली हुई थीं। पर रात को एक जंगली घाटी से गुजरते हुए मोटरसाइकल पर मुझे बहुत ठंड लगी। ठंड का मौसम शुरु ही हुआ था इसलिए मैंने गर्म कपड़े भी नहीं पहने थे। चलती बाईक पर तो ठंडी हवा के थपेड़े ज्यादा ही लगते हैं। आसपास घर भी नहीं थे जहाँ रुक जाता। जानवरों से भरा हुआ रात का डरावना जंगल ही था चारों तरफ। तभी मुझे दिल में अजीब सी धड़कनेँ महसूस हुईं। ऐसा लगा जैसे मेरी छाती का दौड़ता हुआ घोड़ा कभी छलांगें लगा रहा है, और कभी रुक रहा है। कुदरती चेष्टा से मैंने बाइक रोकी और मैं घुटनों को बाजुओं से घेरकर बैठ गया ताकि हृदय को गर्मी और राहत मिल सके। फिर दिल सामान्य हो गया। जैसे ही मैं उठने लगा, वैसे ही मेरा दिल फिर वैसे ही नखरे करने लगा। मैं फिर से दिल को ढक कर बैठ गया। मैंने उसी हालत मैं जेब से फोन निकाला और एक दोस्त को कार लेकर आने को कहा। वो खुद ही मुझे सहारा देकर कार के अंदर ले गए। उन्होंने मेरी बाइक खुद ही सही जगह पर लगा दी क्योंकि मैं कुछ नहीं कर पा रहा था। जैसे ही मैं जरा सा भी अपने को खुला छोड़कर ठंडी हवा के सम्पर्क में आता था वैसे ही दिल वैसी ही हरकत शुरु कर देता था। मैंने अपने आपको ऐसे पैक किया हुआ था कि कम से कम हवा के सम्पर्क में आऊं। उन्होंने कार का हीटर चलाया जिससे मैं एकदम सामान्य हो गया। फिर वो कहने लगे कि डॉक्टर को दिखा लो, चेकअप करा लो आदि। मैंने कहा वह घटना बिमारी से नही, ठंड से थी, इसलिए अल्पकालिक थी, क्योंकि मैं फिर अपने को पहले से भी ज्यादा स्वस्थ महसूस कर रहा था। ठंड के मौसम में लेट नाइट दावतों से बचना चाहिए। उनमें ड्रिंक का प्रयोग तो बिल्कुल भी नहीं करना चाहिए। इससे चमड़ी की रक्तवाहिनियाँ और ज्यादा खुल जाती हैं। इससे दो नुकसान होते हैं। एक तो आदमी को बाहर की ठंड का अहसास ही नहीं होता, क्योंकि चमड़ी में झूठी गर्मी बनी रहती है। दूसरा, इससे शरीर की बहुत सारी गर्मी बाहर निकल जाती है। मेरे मामा के एक प्रोढ़ उम्र के चचेरे भाई को ड्रिंक करने की आदत थी। वे सर्दियों के मौसम में एक सुनसान जैसे रास्ते पर मृत मिले। दरअसल वे ड्रिंक करके देर रात की ठंड में अकेले रास्ते से

गुजर रहे थे। वहाँ ठंड लगने से वे गिर पड़े होंगे। नशे की हालत में अपने को गर्मी देने के उनके सारे प्रयास विफल रहे होंगे। देर रात होने की वजह से उन्हें किसी की सहायता भी नहीं मिली होगी।

योग-साँसों से वीर्यशक्ति ऊपर चढ़ती है~ नासिकाग्र (nose tip) टिप ध्यान का आसान तरीका

गहरे और धीमे सांस योगविधि से पेट से लेने से और नाक से आतीजाती हवा पर ध्यान देने से जो योगलाभ मिलता है, वह दरअसल वीर्य शक्ति के मूलाधार और स्वाधिष्ठान चक्रोँ से ऊपर चढ़ने से ही मिलता है। इसमें सांसों का कोई प्रत्यक्ष योगदान नहीं लगता मुझे। कोई ऑक्सीजन वगैरह का रोल भी नहीं लगता ज्यादा। सम्भोगयोग के समय भी अधिकांशतः इन्हीं सांसों के बल पर ही वीर्यशक्ति के आधोगमन को रोकते हुए उसे ऊपर चढ़ाया जाता है। नाकों से आतीजाती सांसों पर ध्यान देने से नाक या नासिका शिखा पर खुद ही ध्यान चला जाता है, जो शरीर के ठीक बीचोंबीच है। इससे बीच वाली नाड़ी सुषुम्ना के क्रियाशील होने से वीर्यशक्ति के रूपान्तरण से बनने वाली प्राणशक्ति शरीर के बीचोंबीच चारों तरफ ज्यादा अच्छे से घूमने लगती है।

शक्ति को प्रेरित करने वाला चेतन आत्मा ही है और हम सभी औरोबोरस सांप जैसे हैं~ कुंडलिनी शक्ति मूलाधार में क्यों रहती है

योग का जो जलंधर बंध होता है, वह इसलिए लगाया जाता है ताकि मस्तिष्क तक चढ़ी हुई कुंडलिनी शक्ति आगे के चैनल से नीचे उतर सके और इस तरह एक बंद लूप में गोलगोल घूमती हुई सभी चक्रोँ को एकसाथ शक्ति देती रह सके। ठंडे पानी से नहाते समय सिर खुद ही आगे को नीचे झुक जाता है। इससे स्वाधिष्ठान चक्र का दबाव भी कम हो जाता है। यह ऐसे ही है जैसे एक विशालकाय और अनेक फनों वाला नाग अपनी दुखती पूँछ को मुंह से पकड़ने के लिए आगे को झुक जाता है और उसे अपने केंद्रीय फन से पकड़ने का प्रयास करता है। मिस्र और यूनान का Ouroboros अर्थात औरोबोरस सांप भी इसीको दर्शाता है। लगता तो है कि पुराने समय में गंगास्नान करते हुए जब आध्यात्मिक लोगों को इन स्वयं होने वाली शरीरवैज्ञानिक प्रक्रियायों का बोध हुआ, तो उन्होंने इनके आधार पर कृत्रिम हठयोग का निर्माण कर दिया होगा। वैसे भी शक्ति को मूलाधार में स्थित बताया जाता है। उस शक्ति को दिमाग तक पहुंचाना होता है, क्योंकि मस्तिष्क ही पूरे शरीर और मन का मुखिया है। अगर मस्तिष्क में शक्ति है, तो पूरे तनमन में खुद ही शक्ति रहेगी। औरोबोरस की पूंछ उसके मुंह में होने का मतलब है कि योगी तांत्रिक कुंडलिनी योग से शक्ति को मुलाधार से मस्तिष्क तक पहुंचा रहा है। पर ऐसा भी नहीं है कि मूलाधार के इलावा कहीं शक्ति नहीं है। अगर ऐसा होता तो नपुंसक या बच्चे बिल्कुल शक्तिहीन होते। पर ऐसा नहीं है। सामान्य शक्ति तो उनमें भी होती है। इसका सीधा सा मतलब है कि मूलाधार में अतिरिक्त शक्ति होती है, जो मस्तिष्क को प्राप्त हो सकती है। वही अतिरिक्त शक्ति कुंडलिनी के लिए बहुत जरूरी होती है, क्योंकि सामान्य शक्ति से वह ढंग से क्रियाशील नहीं हो पाती, जागरण तो दूर की बात है। सम्भवतः कुंडलिनी शक्ति को ही मुलाधार में रहने वाली बताया गया है, सामान्य शक्ति को नहीं। हालांकि अपवाद तो हर जगह है। मूलाधार शक्ति के बिना भी कुंडलिनी जागृत हो सकती है, बेशक विरले मामलों में ही।

यब-युम जैसा यौनक्रीड़ामय आसन ही औरोबोरस सांप है~ सूक्ष्म ब्रह्मांडीय कक्षा (microcosmic orbit) का सबसे आसान तरीका

इसमें वैसे ज्यादा विस्तार से जाने की जरूरत नहीं है, क्योंकि इस पैराग्राफ की हैडिंग से ही बात स्पष्ट है। फिर भी इससे जुड़ा वैज्ञानिक सिद्धांत तो डिस्कस कर ही सकते हैं। क्योंकि सांप की पूँछ पूरा झुकने पर भी काफी नीचे रह जाती है, जिससे वह उसे अपने मुंह में नहीं ले सकता, इसलिए वह सर्वोपयुक्त चीज को अपनी पूँछ से जोड़कर उसे इतना लम्बा करता है, ताकि वह उसके मुंह तक आसानी से पहुंच सके। इससे सांप का ऊर्जा चक्र पूर्ण हो जाता है, जिससे वह आनंद के साथ अतिरिक्त शक्ति प्राप्त करता है। उस रूपकात्मक नर सांप की पूँछ में जोड़ने के लिए सर्वोत्तम चीज क्या हो सकती है, यह सबको ही पता है। मादा सांप के जुड़ने से यिन-यांग भी आपस में जुड़ जाते हैं, इससे अद्वैत और कुंडलिनी अभिव्यक्त होने से और अतिरिक्त आनंद प्राप्त होता है, और आध्यात्मिक विकास भी होता है, जिसका चरम कुंडलिनी जागरण है। हैरतङ्गेज सृष्टि रचने वाले से बढ़कर बुद्धिमान भला कौन हो सकता है। इसका अनुभव के अतिरिक्त एक और प्रमाण है, कई जगह इस सांप को यिन-यांग के रूप में दिखाना। इसके लिए सांप का ऊपर वाला हिस्सा काले और नीचे वाला आधा हिस्सा सफेद रंग का दिखाया जाता है। इससे तो काफी स्पष्ट हो जाता है कि यब-युम को ही ओरोबोरस सांप के रूप में दिखाया गया है, क्योंकि इसी आसन में काला रंग मतलब यिन मतलब स्त्री भाग ऊपर होता है, और श्वेत रंग मतलब यांग मतलब पुरुष भाग निचली साइड होता है। कुछ सांप हकीकत में विरले मामले में अपनी पूँछ को खाते हैं, खासकर तब जब वे बाहरी वातावरण की बहुत ज्यादा गर्मी से और भूख से परेशान होते हैं। हो सकता है कि वे किसी कुशल तांत्रिक की तरह ही मूलाधार से ऊर्जा लेते हों, और उसे गोलगोल घुमाते हों, ताकि शरीर की ऊर्जा की कमी को पूरा कर के स्थिर हो सकें। पर दिमाग़ की कमी से वे मजबूरन पूँछ को निगल ही जाते हैं, और आगे बढ़ते हुए खुद को भी। सम्भवतः सर्प की यह ऊर्जा-ट्रिक भी विभिन्न धर्मों में उसका महत्त्व बनाने में जिम्मेदार हो।

अध्यात्मवैज्ञानिक खोजों और अविष्कारों का युग शुरु हो गया है~ यौन उपकरण ज्यादा बन रहे हैं

लगता है कि अति आदर्शवादी मध्ययुग और आधुनिक युग में उपरोक्त यब-युम जोड़े से यब भाग गायब सा हो गया, और युम ही बचा रहा। उसकी जगह पर साधारण कुंडलिनी योग का प्रचलन बढ़ा, जिसमें यब की कमी को कुंडलिनी को आगे के चक्रोँ से नीचे उतार कर किया गया। हालांकि यब के साथ भी कुंडलिनी ऐसे ही उतरती थी, यद्यपि यब से इस प्रक्रिया को बहुत बल मिलता था, और जीवंतता मिलती थी। आदर्शवादी योग में यम के अंदर ही यब को कल्पित कर दिया गया। एक ही व्यक्ति में यब को यम के साथ स्थायी तौर पर जोड़ दिया गया, असरदारी की कीमत पर। फिर यब-युम गठजोड़ का असर बढ़ाने वाले अन्य बहुत से कृत्रिम उपायों का सहारा लिया गया हो, जैसे कि दोनों हाथों को एकसाथ जोड़कर नमस्कार मुद्रा बनाना, ऊर्धव-त्रिपुण्ड लगाना, जनेऊ धारण करना आदि। हो सकता है कि वैज्ञानिक इस पोस्ट को पढ़कर इस कमी का फायदा उठाकर यब अर्थात यिन की कृत्रिम डम्मी बना कर बाजार में पेश कर दे। विज्ञान आज व्यवसाय से जुड़ा है, और पैसा कमाने का कोई भी तरीका नहीं छोड़ना चाहता। आज अधिकांश भौतिक खोजें हो चुकी हैं। अधिकांश वैज्ञानिकों के पास अतिरिक्त समय है। वे भौतिक खोजों से ऊब भी चुके हैं, विशेषकर इनके पर्यावरणीय दुष्प्रभावों से तंग आकर। इसीलिए आज अध्यात्मवैज्ञानिक खोजें बहुत हो रही हैं। कोई कुंडलिनी को घुमाने वाली मशीन बना रहा है, तो कोई मूलाधार की संवेदना बढ़ाने वाले विशेष और यौन प्रकार के यंत्र या औजार बना रहा है।

हरेक व्यक्ति के अंदर पुरुष और स्त्री दोनों भाग समाहित हैं~ चार बराबर हिस्सों से एक पूरा शरीर बनता है

दरअसल हम सब यब-युम जोड़े के रूप में ही हैं, पर उसे भूल चुके हैं। उसे याद दिलाने के लिए ही पुरुष और स्त्री की अलगअलग रचना हुई है। पुरुष स्त्री का आलिंगन करना चाहता है, अपने शरीर के यब हिस्से को जगाने के लिए। उसके शरीर का केवल युम हिस्सा ही क्रियाशील होता है। हमारे शरीर का पीठ वाला भाग युम है। वह युम या पुरुष भाग वज्र नाड़ी से शुरु होकर, सुषुम्ना के रूप में मेरुदण्ड से होता हुआ सहस्रार चक्र पर समाप्त होता है। यब या स्त्री भाग भी वज्र नाड़ी को घेरने वाली लिंग संरचना से शुरु होकर शरीर के आगे के चक्रोँ से ऊपर होता हुआ सहसरार चक्र पर खत्म होता है। पुरुष और स्त्री भाग वज्र शिखा पर, जिसे प्रकारान्तर से मूलाधार चक्र भी कह सकते हैं, और सहस्रार चक्र पर पूरी तरह से आपस में जुड़े होते हैं, यह मान के चल सकते हैं। बाकि चक्रोँ पर भी ये आपस में जुड़ने की कोशिश करते हैं। चित्रों में भी ऐसा ही दिखाया जाता है। वहाँ आगे और पीछे के चक्र आपस में एक रेखा से जुड़े दिखाए जाते हैं। चित्रों में तो शरीर के बाएं और दाएं भाग में इड़ा और पिंगला दिखाए जाते हैं। ये भी सही है। इड़ा यब है, और पिंगला युम है। सुषुम्ना मेरुदण्ड के बीच में है। पर सम्भोग योग से तो शक्ति सीधी ही सुषुम्ना से होते हुए सहस्रार में ली जाती है। मेरे को लगता है कि इड़ा और पिंगला वाले टोटके तो साधारण किस्म के योगों में होते हैं। तांत्रिक सम्भोग योग तो शोर्टेस्ट रूट है, क्योंकि इसमें इड़ा और पिंगला आती ही नहीं, शक्ति सीधी सहस्रार में पहुंच जाती है। कमजोरी की अवस्था में कई बार इड़ा और पिंगला की वजह से व्यवधान आ तो सकता है, पर वह हल्का होता है, और आसानी से काबू में आ जाता है। इसीलिए तो सम्भोग के प्रति दुनिया में सबसे ज्यादा आकर्षण दिखाई देता है। पर आम आदमी इसकी अध्यात्मवैज्ञानिकता को समझ नहीं पाता। वह इसीमें उलझा रहकर अपना जीवन समाप्त कर लेता है। पर योगी इससे योग-लाभ उठाकर अपने शरीर में ही यब-युम को पूरी तरह से अभिव्यक्त करके उभयलिंगी अर्थात अर्धनारीश्वर बन जाते हैं, और पृथक स्त्री अर्थात यब के आकर्षण के बंधन से मुक्त हो जाते हैं। इसका यह मतलब नहीं कि वे फिर सम्भोग योग नहीं करते। वे करते हैं, पर उन्हें इसकी कम जरूरत पड़ती है। उससे वे अपने स्वसम्भोग योग अर्थात एकलिंगी सम्भोग योग को बल देते रहते हैं। कई तो इतने अभ्यस्त, कार्यकुशल और निपुण हो जाते हैं कि वे कभी भी मूलाधार स्थित वीर्यशक्ति को नहीं गिराते, और हमेशा उसे ऊपर चढ़ाकर अपने शरीर में आत्मसात कर लेते हैं। उपरोक्त चर्चा से यह बात तो स्पष्ट हो ही जाती है कि जैसे शरीर का बायां और दायां भाग यब और युम है, उसी तरह से शरीर का आगे और पीछे का भाग भी यब और युम ही है। मतलब कि पूरा शरीर चारों तरफ से दो विपरीत टुकड़ों को जोड़कर बना है। सम्भवतः त्रिआयामी स्वस्तिक चिह्न का यही मतलब हो। सम्भवतः शक्ति को स्त्री के रूप में इसीलिए दिखाया जाता है, क्योंकि शरीर का आगे का भाग जो स्त्रीरूप है, वही आकर्षक है, और उसीकी शक्ति इकट्ठी होकर और नीचे जाकर मूलाधार क्षेत्र में स्थित हो जाती है, जहाँ से वह पीठ से होते हुए ऊपर चढ़ने का प्रयास करती है।

शीतजल स्नान से यबयुम जनित कुंडलिनी लाभ कैसे मिलता है~ मांस शरीर तंत्रिका शरीर पर मढ़ा हुआ

जब पूरे शरीर पर ठंडा जल गिरता है, तो उसकी संवेदना नाड़ियों के द्वारा ग्रहण कर ली जाती है, क्योंकि पूरे शरीर में नाड़ियों का जाल है। इससे नरम बाहरी शरीर और सख्त आंतरिक शरीर आपस में जुड़ जाते हैं, मतलब यब और युम एक हो जाते हैं। इससे अद्वैत भाव और उससे कुंडलिनी शक्ति क्रियाशील हो जाती है, कुंडलिनी चित्र के साथ। प्रत्येक संवेदना समान प्रभाव डालती है, इसलिए किसी भी दर्द की अनुभूति के बाद अद्वैत के साथ आनंद की अनुभूति होती है।

प्रकृति स्त्री-रूप है और आत्मा पुरुष-रूप है~ दो महत्वपूर्ण कोष या शरीर

नाड़ी संरचना पुरुष है और उस पर मृदु व सुंदर पेशीय संरचना नारी है। बेसिक नर्वस स्ट्रक्चर सेंसिटिव लाइफ पाने के लिए सॉफ्ट बाहरी स्ट्रक्चर को आकर्षित करता है। अंत में, आत्मा ही पुरुष है क्योंकि यही तंत्रिका तंत्र की सभी संवेदनाओं का आनंद लेती है। सारा दृश्यमय जगत स्त्री या प्रकृति रूप है, क्योंकि यह पुरुष को संवेदना प्रदान करता है। सांख्य दर्शन में भी ऐसा ही कहा गया है। इसमें प्रकृति को भोग्या और पुरुष को भोक्ता कहा गया है। क्यों न इन दो मुख्य आवरणों को ही दो मुख्य कोष न मान लें, जटिल पांच कोशों के विपरीत।

हिंदू स्वस्तिक चिह्न का अध्यात्मवैज्ञानिक रहस्य~ स्वस्तिक का केंद्रीय बिंदु एक पूर्ण और संतुलित इंसान का प्रतिनिधित्व करता है

त्रिआयामी स्वस्तिक चिह्न में आगे की तरफ की छोटी डंडी यम है, और पीछे की तरफ की छोटी डंडी यब है। दोनों डंडियां सीधी खड़ी लम्बी डंडी से जुड़ी हैं, मतलब यब और युम एक होकर बढ़ी हुई जागृति का निर्माण कर रहे हैं। इसी तरह दो छोटी डांडियां शरीर के बाएं भाग के यब और शरीर के दाएं भाग के युम को दर्शाती हैं, क्योंकि वे दोनों इसी दिशा में थोड़ी लम्बी व तिरछी डंडी से आपस में जुड़ी हैं। यह भी बढ़ी हुई जागृति दिखाती है। फिर खड़ी और तिरछी दोनों लम्बी डंडीयां केंद्र में एक बिंदु पर आपस में जुड़ी हैं। इसको दोनों तरफ के यब-युम जोड़ों की बराबर शक्ति मिल रही है, इसलिए यह बिंदु सबसे शक्तिशाली है। इसका मतलब है कि अपने शरीर के अंदर के दाएं-बाएं भाग के यब-युम को संतुलित करने के साथ ही स्त्री-पुरुष जोड़े वाला अर्थात शरीर के आगे-पीछे के भागों वाला यब-युम भी संतुलित होना चाहिए। और दोनों किस्म के यब-युम जोड़े भी आपस में संतुलित होने चाहिए। यह अलग बात है कि क्या कोई अपने शरीर के अंदर ही स्त्री-पुरुष जोड़ा ढूंढ लेता है, तो कोई बाहर से किसी यौन साथी की सहायता लेता है।

पुरुष के लिए स्त्री स्त्री है और स्त्री के लिए पुरुष स्त्री है~ यौन भेदभाव भ्रमपूर्ण और सापेक्ष है, सत्य और निरपेक्ष नहीं है

दरअसल स्त्री का अस्तित्व ही नहीं है। हर जगह पुरुष ही पुरुष है। स्त्री हमें भ्रम से दिखाई देती है। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि सम्भोग योग के समय स्त्री भी अपनी रज शक्ति को इसी तरह अपनी पीठ से ऊपर खींचती है जिस तरह पुरुष वीर्य शक्ति को अपनी पीठ से ऊपर खींचता है। मेरुदण्ड ही दरअसल पुरुष है, जो पुरुष और स्त्री में एकसमान है। इसी तरह आत्मा ही पुरुष है जो दोनों में एकसमान है। इसी तरह शरीर का अगला हिस्सा ही स्त्री है, और वह भी दोनों में एकसमान है। जो स्त्री सम्भोग योग के लिए पहल करती है, वह पुरुष की तरह लगती है। ऐसा इसलिए क्योंकि वह यौन योग से अपनी मूलाधारनिवासिनी शक्ति को ऊपर खींचना चाहती है। जो पुरुष सम्भोग योग से शर्माए, वह स्त्री की तरह प्रतीत होता है। वह इसलिए क्योंकि वह इसलिए सम्भोग योग से दूर भाग रहा है, क्योंकि वह शक्ति को ऊपर नहीं खींच पाएगा, और उसे नीचे की ओर गिरा देगा, शरीर के स्त्रीरूप अगले भाग की तरह। इसलिए स्त्री को स्त्रीरूप समझना मुझे ऐतिहासिक साजिश लगती है, जिसके अनुसार स्त्री अपनी शक्ति गिराती रहे, और पुरुष अपनी शक्ति उठाता रहे। पर तंत्र में ऐसा नहीं है। तंत्र में अपनी शक्ति उठाने का दोनों को समान अधिकार है। इसीलिए तंत्र में स्त्री पुरुष दोनों बराबर हैं। हालांकि यह

अलग मामला है कि पुरुष को यौन शक्ति के संरक्षण की ज्यादा आवश्यकता है, क्योंकि तुलनात्मक रूप में उससे स्त्री साथी से कहीं ज्यादा शक्ति की बर्बादी होती है।

स्त्रीपुरुष का जोड़ा जितना बराबर उतना अच्छा, हालांकि बेमेल जोड़ यिन-यांग गठबंधन को बढ़ावा देते हैं

मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूँ, क्योंकि एकसमान कद-काठी होने से पूरे शरीर में व्याप्त यिन और यांग आपस में ज्यादा अच्छे से घुलमिल जाते हैं, जिससे ज्यादा अच्छा अद्वैत भाव पैदा होता है। इससे ज्यादा कुंडलिनी लाभ मिलता है। वैसे तो पुरुष और स्त्री दोनों अपने एक ही शरीर में होते हैं, पर उसे पाने के लिए बाहर से मदद लेनी ही पड़ती है। देखा जाए तो यौन शक्ति के आध्यात्मिक रूपान्तरण के लिए दो-चार इंच का क्षेत्र ही काफी होता है, पर यिन-यांग के गठजोड़ के लिए तो भरापूरा और विपरीतता के साथ मिलताजुलता शरीर चाहिए होता है। इससे अतिरिक्त लाभ मिलता है। लगता है कि पुराने जमाने में इसपर ज्यादा गौर नहीं किया जाता था, इसीलिए विवाह से पहले शरीर मिलाने की बजाय नवग्रह-जन्मपत्री मिलाई जाती थी। पता नहीं इसमें क्या विज्ञान है कि प्रत्यक्ष को नजरन्दाज करके अनुमान पर भरोसा किया जाए। सम्भवतः यह नियम सामाजिक समरसता बनाए रखने के लिए भी था, ताकि सभी मर्द चंद खूबसूरत औरतों पर ही न टूट पड़ते, और कुरूप औरतें अविवाहित ही न रह जातीं या उन्हें निम्न दर्जे के मर्द से ही संतुष्ट न होना पड़ता। दरअसल व्यवहार में होता क्या है कि यदि यिन-यांग अच्छे से मैच हो जाए, तो कदकाठी मैच नहीं करते, और यदि कदकाठी अच्छे से मैच हो जाए, तो यिनयांग अच्छे से मैच नहीं होते। इसलिए समझौता करना पड़ता है। यदि दोनों गुण सर्वोत्तम रीति से मैच हो जाए, तो सर्वोत्तम जोड़ी मानी जाए। मेरे साथ भी ऐसा ही होता था। यिनयांग बहुत जबरदस्त ढंग से मैच होता था, पर कदकाठी जरा भी मैच नहीं होते थे। अंततः जन्मपत्री के ऊपर ही सभी कुछ छोड़ना पड़ा। इससे सब ठीक ही रहा। बोलने का मतलब है कि यदि प्रत्यक्ष से काम न बने, तभी पूरी तरह से अदृश्य के सहारे होना चाहिए। वैसे कुल मिलाकर यह निष्कर्ष भी निकलता है कि छोटी कद-काठी यिन है, और बड़ी कद-काठी यांग होता है। इसलिए लम्बू-छोटू जोड़ी बनना भी स्वाभाविक और योगानुसार ही है।

चाइनीज यिन सुस्त और यांग चुस्त है, जबकि तांत्रिक यिन चुस्त और यांग सुस्त है~ दो प्रकार के यौन तंत्र

इसका मतलब है कि चाइनीज सिस्टम में विषमवाही तंत्र को ज्यादा मान्यता है, जबकि भारतीय तंत्र में समवाही तंत्र को। विषमवाही तंत्र मतलब औरत को एक तांत्रिक मशीन समझा जाता है। उसकी इससे ज्यादा अपनी कोई अहमियत नहीं। इसलिए वह सुस्त और दबी हुई सी रहती है। उसकी सहायता से प्रकाश अर्थात कुंडलिनी को घुमाया जाता है। उस कुंडलिनी के रूप में कोई भी मानसिक चित्र हो सकता है, पर वह स्त्री नहीं। इसके विपरीत समवाही तंत्र में स्त्री को कुंडलिनी अर्थात देवी का रूप दिया जाता है। इससे वह अपनी मनमोहक छटाएं प्रदर्शित करती है। इससे स्त्री को भरपूर सम्मान मिलता है। उसे पुरुष के बराबर या उससे भी बढ़कर माना जाता है। आपने देखा होगा कि कैसे भगवान विष्णु देवी लक्ष्मी की, भगवान शिव देवी पार्वती की और भगवान ब्रह्मा देवी सरस्वती की सेवा में लगे रहते हैं। बाकि अपवाद तो हर सिस्टम में ही देखे जाते हैं।

क्या हम स्वाधिष्ठान चक्र के जागरण को बिमारी तो नहीं मान रहे? प्रोस्टेट संभोग शिश्न संभोग से बेहतर है

यहाँ पर बेनाइन प्रॉस्टेट हाइपरट्रॉफी मतलब बीएचपी या प्रॉस्टेट की जलन अर्थात इन्फलेमेशन का जिक्र हो रहा है। परमात्मा शिव ने पूर्वोक्त कार्तिकेय जन्म की कथा में कबूतर बने अग्निदेव को कहा था कि तेरी जलन ठंडे जल से स्नान करने वाली ऋषिपत्नियां हर लेंगी। उस जलन को ही विज्ञान की भाषा में प्रॉस्टेट इंफ्लेमेशन अर्थात प्रॉस्टेटाइटिस या बीएचपी नामक रोग कहते हैं। कहीं यही स्वाधिष्ठान चक्र का जागरण तो नहीं, जिसे शीतजल स्नान से व कुंडलिनी योग से ठीक किया जा सकता हो। वैसे स्वास्थ्य विशेषज्ञ भी मान रहे हैं कि ज्यादातर प्रॉस्टेट प्रॉब्लम चिंता या अवसाद से होती है, जिसे दूर करने के लिए योग एक रामबाण उपाय है। बात कुल मिलाकर वही है। ठंडे जल के स्पर्ष से वह जलन दूसरे चक्रों पर चली जाती है, मतलब वे जागृत हो जाते हैं। इसमें सबसे ज्यादा सम्भावना मणिपुर चक्र के जागृत होने की होती है, क्योंकि चक्र क्रमवार ही जागृत होते हैं। पर ऐसा भी नहीं हमेशा। यह जलन सीधी विशुद्धि चक्र और अनाहत चक्र को भी जा सकती है। उक्त कथा के अनुसार महादेव एक हजार वर्षों तक देवी पार्वती के साथ एक गुफा में विहार करते रहे, और अंततः उनका मूलाधार चक्र और फिर स्वाधिष्ठान चक्र जागृत हो गया। जब स्वाधिष्ठान चक्र जागृत हुआ, तब वे गुफा से बाहर आए मतलब आध्यात्मिक कामक्रीड़ा से विरत हुए। मेरे बोलने का मतलब है कि स्वाधिष्ठान चक्र के जागरण के रूप में जो कुदरत का तोहफा मिलता है, लोग उसे दूर करने के लिए इलाज करवाने भागते हों या उससे परेशान होते हैं, जबकि उसकी ऊर्जा अन्य चक्रों को देकर कुंडलिनी लाभ भी मिलता हो, और वह शांत भी रहता हो। ये मैं इसलिए भी कह रहा हूँ क्योंकि आजकल प्रॉस्टेट की उत्तेजना या जलन से प्राप्त प्रॉस्टेट आर्गेस्म प्राप्त करने की होड़ सी लगी है। बहुत से यंत्र और तकनीकें विकसित हो रही हैं इसके लिए। अनुभवी लोग बताते हैं कि पेनाइल आर्गेस्म के विपरीत प्रॉस्टेट आर्गेस्म बहुत ज्यादा चिरस्थायी होता है, और आनंद भी ज़्यादा देता है। पेनाईल आर्गेस्म तो स्खलन के कुछ क्षणों तक ही मौजूद रहता है। इसमें वाकई अध्यात्मवैज्ञानिक शोध की जरूरत है।

यौन संयम क्यों न अपनाया जाए~ वामपंथी और दक्षिणपंथी जीवन शैली के बीच एक स्वस्थ संतुलन

जैसा कि शिवपुराण में रहस्यात्मक रूप में कहा गया है कि वीर्यपात-अवरोधी सम्भोग से प्रॉस्टेट में स्थायी जलन अर्थात इन्फलेमेशन हो सकती है, हालांकि उसे दूर करने का उपाय भी बताया गया है, तब क्यों न यह मान लिया जाए कि वैष्णवों का दक्षिणाचार ही अच्छा है। या कम से कम यह मान लो कि मध्यमार्ग अच्छा है, जिसमें पुरुष-स्त्री के बीच में असीम सात्विक प्रेम होता है, पर शारीरिक संबंध नहीं होता। इससे यब-युम लाभ मिलने से कुंडलिनी भी घूमेगी, और स्वास्थ्य समस्या भी पैदा नहीं होगी। मतलब हर तरफ लाभ ही लाभ। तो मेरा मानना है कि विवाह न होने तक ऐसा ही परहेज रखना चाहिए। इससे स्वस्थ सामाजिकता भी बनी रहेगी और कुंडलिनी भी बनी रहेगी। विवाह के बाद तो प्रेम के साथ ज्यादा संयम रखना मुश्किल हो जाता है। साथ में, मुझे यह भी लगता है कि कुंडलिनी जागरण को प्राप्त करने के लिए बहुत शक्ति की जरूरत होती है, इसलिए भगवान शिव की तरह अविरत सम्भोग योग जरूरी है। जब एक-दो महीने के भीतर जागरण हो जाए, तो स्वास्थ्य सुरक्षा को देखते हुए सम्भोग कम कर दे। यदि जागरण न होए, तो भी 1-2 महीने ही प्रयास करे, क्योंकि इसका मतलब है कि व्यक्ति जागरण के लिए परिपक्व नहीं है, और अतिरिक्त प्रयास अधिकांशतः विफल ही जाएगा, व स्वास्थ्य समस्याएं भी पैदा करेगा। फिर कुछ वर्षों तक साधारण तांत्रिक कुंडलिनी योग का अभ्यास करते हुए जागरण के लिए पात्र बनाने वाला लाइफस्टाइल अपनाए, और उचित समय और अवसर और एकांत मिलने पर जैसे कि शांति, तनाव व काम के बोझ में कमी महसूस होने पर और शक्ति का

अहसास होने पर फिर 1-2 महीने के लिए अविरत व समर्पित सम्भोग योग करे। इस तरह करता रहे। या दूसरा तरीका यह अपनाए कि भगवान शिव की तरह सर्व-आनंदमयी सम्भोग योग में सालों तक अर्थात तब तक दिनरात इच्छानुसार लगा रहे, जब तक कि प्रॉस्टेट में जलन न होने लगे अर्थात जब तक स्वाधिष्ठान चक्र जागृत न हो जाए, और उससे खुद ही सम्भोग से मन न ऊबने लगे। उस अवस्था के बाद आदमी उभयलिंगी सा बनकर अपने साथ ही संभोग योग करने लगता है। कामकाज के बोझ से उसके आगे के स्वाधिष्ठान चक्र पर जलन के रूप में शक्ति इकठ्ठा होती रहती है, जिसे वह योग व शीतजल स्नान की सहायता से पीठ से ऊपर चढ़ाता रहता है। यह चक्र चलता रहता है। इससे वह अंततः धीरेधीरे क्रमवार चक्रों को जागृत करते हुए सहस्रार को जागृत करके पूर्ण जागृति प्राप्त कर लेता है, उपरोक्त प्रथम उपाय की तरह एक-दो महीने के ताबड़तोड़ सम्भोग योग से एकदम से जागृति प्राप्त नहीं करता। इस पर भी मनोवैज्ञानिक शोध की जरूरत है।

शक्ति का प्रवाह नाड़ियों के माध्यम से होता है, जिसे विज्ञान की भाषा में नर्व कहते हैं~ कैसे शिव तक पहुँचती है शक्ति

कोई भी काम शक्ति से ही होता है। यदि सड़क पर गाड़ी चल रही है तो कहेंगे कि इंजन शक्ति से गाड़ी चली। अगर टांगा चल रहा है तो कहेंगे कि यह अश्व शक्ति से या संक्षेप में शक्ति से चल रहा है। शक्ति का भी कोई प्रेरक जरूर होता है। इंजन शक्ति और अश्व शक्ति, दोनों का प्रेरक ईंधन या अग्नि है। हमारा शरीर भी नाड़ी शक्ति या सिर्फ शक्ति से चलता है। यदि नाड़ी शक्ति न हो, तो हट्टाकट्टा शरीर भी किसी काम का नहीं है। आपने देखा होगा कि पक्षाघात के बाद कैसे बाजू या टांग काम करना बंद कर देती है। वैज्ञानिक रूप से शक्ति या नाड़ी शक्ति नर्व फाइबर्स की क्रियात्मक उत्तेजना के रूप में ही होती है। शरीर की इसी नाड़ी शक्ति को ही संक्षेप में शक्ति कहते हैं। क्या आपने कभी सोचा कि इस शक्ति को प्रेरित करने वाली क्या चीज है? दार्शनिकों ने ऐसा सोचा भी और लिखा भी, जो धर्मशास्त्रों में पढ़ने को मिल जाता है। इंजन की गति रूपी नाड़ी शक्ति को भोजन रूपी ईंधन के सहयोग से प्रेरित करने वाला तत्त्व अग्नि-चिंगारी रूपी चेतन आत्मा ही है। मूलाधार में जो आनंदपूर्ण संवेदना महसूस होती है, वही इस शक्ति को प्रेरित करती है। अर्थात यह सबसे बड़ी मात्रा वाली शक्ति को प्रेरित करती है, जिसे हम कुंडलिनी शक्ति कहते हैं। जब इसे प्राण वायु का विशेष बल भी साथ में मिले, तब इसे ही प्राण शक्ति भी कहते हैं। वैसे तो हर प्रकार का चेतन अनुभव हमारी शक्ति को प्रेरित करता रहता है, जिससे हम जीवित बने रहते हैं, पर क्योंकि मूलाधार की अनुभूति सबसे अधिक आनंददायक और चेतना से भरी है, इसीलिए इसे ही शक्ति या कुंडलिनी शक्ति या प्राण शक्ति का स्रोत कहा जाता है। मुझे आज यह बात समझ में आई कि शास्त्रों में ऐसा क्यों कहा गया है कि परमात्मा अर्थात चेतना ही शक्ति का मूल स्रोत है। शास्त्रों में वैज्ञानिक रूप से ज्यादा विस्तार नहीं लगता मुझे तथ्यों का, सम्भवतः इसीलिए क्योंकि पुराने युग में तथ्य विश्वास के आधार पर समझे या माने जाते थे, वैज्ञानिक जाँचपड़ताल के आधार पर नहीं। चेतना के इसी शक्तिप्रेरक योगदान के कारण ही डोपामीन अर्थात रिवार्ड कैमिकल काम करता है। जो चढ़दी कला में होते हैं, उनके आगे सफलता के द्वार एक के बाद एक खुलते जाते हैं। पर कई बार ज्यादा ही चढ़दी कला से उच्च रक्तचाप और तनाव आदि से संबंधित समस्याएं भी पैदा हो जाती हैं। यह ऐसे ही होता है जैसे बिजली की जरूरत से ज्यादा वोल्टेज से बल्ब ही फ्यूज हो जाता है। मूलाधार की संवेदना पर पैदा हुई शक्ति तो चढ़ेगी ही चक्र तक, क्योंकि उसके साथ चक्र पर चेतन कुंडलिनी का ध्यान किया जा रहा होता है। जिस रास्ते से शक्ति गुजरती है, उसे नाड़ी या चैनल कहते हैं। चक्र पर वह शक्ति ज्यादा प्रभाव पैदा करती है, क्योंकि वहाँ जड़ जैसी संवेदना के साथ चेतन कुंडलिनी चित्र का भी ध्यान होता है। इसीलिए कहते हैं कि शक्ति शिव की ओर गमन करती है। कई लोग कुंडलिनी योग से तृप्त नहीं होते। इसकी मुख्य वजह है कि उनके मूलाधार पर शक्ति ही पैदा नहीं हुई होती है। मूलाधार को हम शक्ति उत्पादक यंत्र कह सकते हैं। वे चक्रों पर कुंडलिनी चित्र का ध्यान

भी करते हैं, पर फिर भी प्यासे से बने रहते हैं। शक्ति की प्यास को तो मूलाधार ही बुझा सकता है। प्रजनन से सृष्टि के विस्तार के लिए ही मूलाधार को विशेष शक्ति दी गई है। होता तो सब नर्व फाइबर से ही। मतलब कि मूलाधार में यह उत्तम गुणवत्ता का है। यह तो मुर्गी और अंडे के जैसी कहानी है। पहले मूलाधार में नर्व फाइबर की उत्तेजना से शक्ति पैदा होती है, फिर वह शक्ति मेरुदण्ड से होकर मस्तिष्क तक जाती है, और उससे मस्तिष्क में आनंदमयी संवेदना महसूस होती है, फिर वह आनंदमयी संवेदना भी नर्व फाइबरस को उत्तेजित करती है, जिससे और शक्ति पैदा होती है। मस्तिष्क से वह शक्ति नाड़ीजालों के माध्यम से पूरे शरीर में और मूलाधार तक फैल जाती है। मतलब शक्ति एक बंद लूप जैसा बनाती है। शक्ति का लूप में घूमना ही माईक्रोकोस्मिक औरबिट के आधार में है। यही बंद लूप ही औरोबोरस सांप है। चिकित्सा विज्ञान की भाषा में इसे रिफ़लेक्स आर्क कहते हैं। यदि उस समय हम किसी विशेष चक्र पर कुंडलिनी चित्र का ध्यान करें, तो शरीर के अन्य हिस्सों की अपेक्षा शक्ति उसी चक्र पर ज्यादा पहुंचती है, जिससे वहाँ कुंडलिनी चित्र और अधिक चमकने लगता है। मतलब कि शक्ति मानसिक चित्र को ज्यादा से ज्यादा चमकाने की कोशिश करती है, ताकि वह जागृत होकर शिव बन सके। यही शक्ति का शिव की तरफ गमन है। कुंडलिनी चित्र का मतलब किसी के ऊपर प्रेम न्योछावर करना नहीं है, बल्कि उसकी मदद से शक्ति को काबू करना है। कहीं ज़ख्म वगैरह हो जाए तो वहाँ दर्द और लाली पैदा हो जाती है। दर्द वह चेतन संवेदना है जो लाल रंग की शक्ति को अपनी ओर खींचती है। फिर कहेंगे कि जिन अंगों की दर्द महसूस नहीं होती, वहाँ शक्ति कैसे पहुंचती है और उनकी हीलिंग कैसे होती है। इसमें चेतना द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से काम होता है। जब दर्द वाले हिस्से से नाड़ी ऊर्जा मस्तिष्क को पहुंचती है, तो मस्तिष्क के अनुभव न होने वाले हिस्से में संवेदना पैदा करती है। इससे वहाँ बहुत सी नाड़ी ऊर्जा और उससे जुड़े रसायनों की खपत हो जाती है। इससे मस्तिष्क के चेतन अनुभव पैदा करने वाले हिस्से में नाड़ी ऊर्जा की कमी हो जाती है। इससे आदमी आनंदहीन सा रहने लगता है। इसलिए चेतना के आनंद को पैदा करने के लिए यही रास्ता बचता है कि शरीर की गहराई में दबे ज़ख्म को जल्दी से जल्दी भरा जाए। इसके लिए नाड़ी ऊर्जा उस ज़ख्म पर केंद्रित होने लगती है। दरअसल रक्त प्रवाह के आधार में यही नाड़ी ऊर्जा होती है। रक्त प्रवाह अगर गाड़ी है, तो उसे नियंत्रित करने वाली नाड़ी ऊर्जा उसका चालक है। चेतन आत्मा को आप स्टेशन मास्टर कह सकते हैं। जब हम नाड़ी ऊर्जा को मूलाधार से मेरुदण्ड के रास्ते ऊपर चूसते हैं, तब रक्त प्रवाह भी खुद ही ऊपर चला जाता है। इससे ही मूलाधार के आसपास का दबाव घटा हुआ महसूस होता है। रक्त तो मेरुदण्ड से ऊपर नहीं चढ़ सकता, क्योंकि उसमें नर्व फाइबर की एक रस्सी है, कोई रक्त की नलिका नहीं है। इसलिए कुंडलिनी योग का साधारण सा सिद्धांत है कि गाड़ी चालक को नियंत्रित करो, गाड़ी खुद नियंत्रित हो जाएगी।

नाड़ियों का जाल ही शिव पर लिपटे सर्प हैं~ नागों से भरा मानव शरीर

भगवान शिव पर लिपटे सर्प आदि को देखकर पार्वती की मां मैना डर गई थीं। दरअसल शिव एक महा योगी थे। उनके शरीर की हरेक नाड़ी जागृत थी, केवल सुषुम्ना ही नहीं। इससे वे हरेक नाड़ी में सरसराहट के साथ कुंडलिनी को महसूस करते रहते थे हमेशा। स्वाभाविक है कि उन सरसराहटों को अनुभव करते हुए उनके अंगों का स्वभाव व उनकी चाल भी सर्प की तरह हो गई हो, जिसे मैना महसूस कर पा रही हो। शायद योगी गोपीकृष्ण के साथ भी ऐसा ही होता था। उन्हें अपने शरीर की हरेक नाड़ी की गति महसूस होती थी। इससे वे परेशान भी हो गए थे। फिर वे उसके अनुसार ढल भी गए थे। इसी पर आधारित सुंदर रचना है शिवपुराण में, त्रिपुरासुर वध की, जो मैं निचले पैराग्राफ में लिख रहा हूँ, संक्षेप में।

त्रिपुरासुर राक्षस प्रकृति के तीन गुण हैं, और कुंडलिनी जागरण ही उनको मारना है~ एक शिव पुराण कथा का रहस्योद्‌घाटन

एक राक्षस का पुर सोने का, एक का चांदी का और एक का लोहे का था। ये क्रमशः सत्त्व, रजस और तमो गुण के प्रतीक हैं। राक्षस मतलब इन गुणों के साथ उठने वाली आसक्तिपूर्ण भावनाएँ। इनको मारने के लिए शिव मतलब आत्मा ने शरीर रूपी रथ बनाया, मंन्द्राचल मतलब मेरुदण्ड को धनुष बनाया, और वासुकि नाग मतलब सुषुम्ना नाड़ी को बाण बनाया। राक्षसों से युद्ध किया मतलब मूलाधार से कुंडलिनी शक्ति को योगसाधना से सुषुम्ना के रास्ते ऊपर चढ़ाया और उसे सहस्रार में जागृत किया। उससे प्रकृति के तीनों गुणों के प्रति सारी आसक्ति खत्म हो गई मतलब त्रिपुरारि राक्षस मर गए। इससे शरीर में बसने वाले देवता खुश हो गए क्योंकि वे शरीर के बंधन से मुक्त हो गए। कभी समय लगा तो इस पर और प्रकाश डालूंगा, पर मूल चीज यही है।

उज्जैन का महाकाल ज्योतिर्लिङ्ग

उज्जैन में महाकाल मंदिर में यह त्रिपुरासुर वाली घटना घटी थी, ऐसा कहते हैं। इसीलिए अभी हाल ही में निर्मित भव्य महाकाल कोरिडोर में इसको दर्शाती मूर्तियां और कलाकृतियाँ प्रमुखता से सबसे मुख्य स्थान पर लगाई गई हैं। त्रिपुरासुरों को मारने के कारण ही महादेव शिव को त्रिपुरारि भी कहते हैं।

शक्ति का गमन बिना सीधी नाड़ी के भी होता है~ मन एक विद्‌युत चुम्बकीय तरंग के रूप में और कुंडलिनी छवि एक इलेक्ट्रॉन के रूप में तंत्रिका रूपी विद्‌युत तार में यात्रा करती है

वैसे शक्ति का गमन बिना सीधी नाड़ी के भी होता है, हालांकि लगता है कि पीठ की सुषुमना नाड़ी से ही सबसे ज्यादा शक्ति का गमन होता है, जिससे कुंडलिनी जागरण होता है। शरीर के आगे के भाग के चैनल में तो पीठ की तरह सीधी नाड़ी होती ही नहीं। वहाँ तो कुंडलिनी चित्र की मदद से ही स्टेप बाय स्टेप चक्रोँ से होते हुए गमन होता है। अगर आप फ्रंट आज्ञा चक्र पर कुंडलिनी चित्र का ध्यान करो तो आपका पेट अंदर की ओर सिकुड़ेगा, मतलब शक्ति फ्रंट आज्ञा चक्र से फ्रंट मणिपुर चक्र तक पहुंच गई। यह एकदम कैसे हुआ जबकि दोनों चक्रोँ को जोड़ने वाली कोई सीधी नाड़ी नहीं है। दरअसल योगाभ्यास में हम ऊपर से नीचे तक बारीबारी से सभी चक्रोँ पर कुंडलिनी चित्र का ध्यान करते हैं। जिस चक्र पर कुंडलिनी चित्र होता है, वहाँ शक्ति क्रियाशील हो जाती है, क्योंकि चेतन शिव शक्ति को नचाता है अर्थात उसे क्रियाशील करता है, और शक्ति फिर बदले में शिव को भी नचाती है मतलब उसे ज्यादा अभिव्यक्त करती है। इससे वहाँ सिकुड़न सी महसूस होती है, और कुंडलिनी चित्र भी ज्यादा चमकने लगता है। शक्ति तो पहले भी वहाँ होती है, पर वह सोई जैसी अवस्था में होती है। विज्ञान की भाषा में इसे ऐसे कह सकते हैं कि वहाँ नाड़ी चलाने वाले कैमिकल अर्थात न्यूरोट्रान्समिटर तो मौजूद हैं, पर क्रियाशील अवस्था में नहीं हैं। बिल्कुल विद्‌युत तरंग की तरह काम होता है। जैसे वास्तव में इलेक्ट्रोन तो बहुत धीमी गति से चलते हैं, एक घंटे में कुछ मीटर ही, पर उन इलेक्ट्रोनों को धक्का देने वाली विद्‌युतचुम्बकीय तरंग प्रकाश की गति से चलती है, इसलिए धरती के एक छोर पर स्विच ऑन करने पर धरती के दूसरे छोर पर उसी क्षण विद्‌युत करेंट पहुंच जाता है। उसी तरह नाड़ी चलाने वाले रसायन तो घूम फिर कर निचले चक्र पर पहुंचने में कुछ सेकंड लगा सकते हैं, क्योंकि सभी नर्व फाइबर्स आपस में कहीं न कहीं से जुड़े हैं, बेशक अगले चक्रोँ को कोई सीधी नाड़ी आपस में नहीं जोड़ती, पर मन से सोचा गया कुंडलिनी चित्र एक क्षण में ही निचले चक्र पर पहुंच जाता है। वह

कुंडलिनी चित्र ही वहाँ की स्थानीय नाड़ियों को क्रियाशील करके वहाँ चमक के साथ संकुचन पैदा करता है। यह ऐसे ही है जैसे विद्‌युतचुंबकीय तरंग अपने दायरे में आने वाले इलेक्ट्रोनों को गति देते हुए एक क्षण में ही हजारों किलोमीटर लम्बी विद्‌युत तार में फैल जाती है। इसलिए हम मन की तुलना विद्‌युतचुम्बकीय तरंग से कर सकते हैं।

कुंडलिनी योग दर्शन को दर्शाती कार्टून फ़िल्म राया एंड द लास्ट ड्रेगन

सभी को श्री गुरु नानकदेव के प्रकाश पर्व पर हार्दिक शुभकामनाएं

दोस्तों, मैं पिछली पोस्टों में ड्रेगन के कुंडलिनी प्रभावों के बारे में बात कर रहा था। इसी कड़ी में मुझे एनीमेशन मूवी राया एंड द लास्ट ड्रेगन देखने का मौका मिला। इसमें मुझे एक सम्पूर्ण योगदर्शन नजर आया। अब यह पता नहीं कि क्या इस फ़िल्म को बनाते समय योगदर्शन की भी किसी न किसी रूप में मदद ली गई या मुझे ही इसमें नजर आया है। जहाँ तक मैंने गूगल पर सर्च किया तो पता चला कि दक्षिण पूर्वी एशियाई (थाईलैंड आदि देश) जनजीवन से इसके लिए प्रेरणा ली गई है, किसी योग वगैरह से नहीं। थाईलैंड में वैसे भी योग काफी लोकप्रिय हो गया है। इसमें एक ड्रेगन शेप की नदी या दुनिया होती है। उसमें एक हर्ट नामक कुमान्द्रा लैंड होती है। वहाँ सब मिलजुल कर रहते हैं। हर जगह ड्रेगन्स का बोलबाला होता है। ड्रेगन सबको ड्रन अर्थात बवंडर नामक पापी राक्षस से बचाती है। ड्रन लोगों की आत्मा को चूसकर उन्हें निर्जीव पत्थर बना देते हैं। ड्रेगन उन ड्रन राक्षसों से लड़ते हुए नष्ट हो जाती हैं। फिर पांच सौ साल बाद वे ड्रन फिर से हमला कर देते हैं। हर्ट लैंड के पास ड्रेगन का बनाया हुआ रत्न होता है, जो ड्रन से बचाता है। वह पत्थर बने आदमी को तो जिन्दा कर सकता है, पर पत्थर बनी ड्रेगनस को नहीं। दूरपार के कबीले उस रत्न की प्राप्ति के लिए हर्ट लैंड के कबीले से अलग होकर नदी के विभिन्न भागों में बस जाते हैं। उन कबीलों के नाम होते हैं, टेल, टेलन, स्पाइन और फैंग। टेलन ट्राइब ने तो ड्रन से बचने के लिए अपने घर नदी पे बनाए होते हैं। दरअसल पानी में ड्रेगन का असर नहीं होता है, जिससे ड्रन वहाँ नहीं पहुंच पाता। हर्ट कबीले का मुखिया बैंज चाहता है कि सभी कबीले इकट्ठे होकर समझौता कर के फिर से कुमान्द्रा बना ले, जिसमें सभी मिलजुल कर ड्रन से सुरक्षित रहें। इसलिए वह समारोह का आयोजन करता है जिसमें वह सभी कबीलों को बुलाता है। वहाँ फैंग कबीले का एक बच्चा बैंज की बेटी राया को धोखा देकर सभी कबीलों के लोगों को रत्न तक पहुंचा देती है। वे सभी रत्न के लिए आपस में लड़ने लगते हैं। इससे रत्न पांच टुकड़ों में टूट जाता है। हरेक कबीले के हाथ एक-एक टुकड़ा लगता है। रत्न के टूटने से ड्रन सब पर हमला कर देता है। सब जान बचाने को इधर-उधर भागते हैं। बैंज भी पुल पर खड़े होकर रत्न का टुकड़ा अपनी बेटी को देकर यह कहते हुए उसे नदी में धक्का देता है कि वह कुमान्द्रा बना ले और वह खुद ड्रन के हमले से पत्थर बन जाता है। छः सालों बाद राया नदी का किनारा ढूंढने किश्ती में जा रही होती है ताकि अंतिम ड्रेगन सिसू कहीं मिल जाए। उसे वह रेगिस्तान जैसे टेल कबीले के नजदीक अचानक मिलती है। सिसू उसे बताती है कि वह रत्न उसके भाई बहिनों ने बनाकर उसे सौम्पा था, उसपर विश्वास करके। वह पाती है कि जब वह एक टुकड़ा रखती है तो वह अपनी शक्तियों का उपयोग कर सकती है। हरेक टुकड़ा उसकी अलग किस्म की शक्ति को क्रियाशील करता है। वह सिसू की मदद से वहाँ के मंदिर में रत्न का दूसरा टुकड़ा ढूंढ लेती है। इससे सिसू ड्रेगन को आदमी के रूप में आने की शक्ति मिल जाती है। फिर फैंग कबीले से बचते हुए वे स्पाइन कबीले में पहुंचते हैं। इस यात्रा में राया को पांच छः दोस्त भी मिल जाते हैं, जिनमें कोई तो बच्चे की तरह तो कोई बंदर की तरह और कोई मूर्ख जैसा होता है, हालांकि सभी ताकतवर होते हैं। शक्तिशाली फैंग कबीले की राजकुमारी नमारी से सिसू लड़ना नहीं चाहती, और उसे तोहफा देकर समझाना चाहती है। जब सिसू उसे रत्न के टुकड़े दिखा रही होती है, तब नमारी धोखे से उसपर तीरकमान साध लेती है। डर के मारे राया उसपर जैसे ही तलवार से हमला करने लगती है, वह वैसे ही तीर चला देती है, जिससे सिसू मरकर नदी में गिर जाती है। सारा पानी सूखने लगता है और ड्रन के हमले एकदम से बढ़ जाते हैं। राया के सभी दोस्त और नमारी भी अपने-अपने रत्न के टुकड़े से ड्रन को भगाने लगते हैं, पर कब तक। वे टुकड़े भाप में गायब हो रहे होते हैं। तभी राया को सिसू की बात याद आती है कि रत्न के टुकड़े जोड़ने के लिए विश्वास भी जरूरी है। इसलिए वह नमारी को रत्न का टुकड़ा थमाती है, और खुद पत्थर बन जाती है। राया को देखकर उसके दोस्त भी नमारी को टुकड़े सौम्प कर खुद पत्थर बन जाते हैं। अंत में नमारी भी अपना टुकड़ा उनमें जोड़कर खुद भी पत्थर बन जाती है। रत्न

पूरा होने पर चारों ओर प्रकाश छा जाता है, राया के पिता बैंज समेत सभी पत्थर बने लोग जिन्दा हो जाते हैं। सभी पत्थर बनी ड्रेगन्स भी जिन्दा हो जाती हैं। कुमान्द्रा वापिस लौट आता है, और सभी लोग फिर से मिलजुल कर रहने लगते हैं।

राया एन्ड द लास्ट ड्रेगन का कुंडलिनी-आधारित स्पष्टीकरण

यह चाइनीस ड्रेगन कम और कुंडलिनी तंत्र वाला नाग ज्यादा है। यही सुषुम्ना नाड़ी है। मैं पिछली एक पोस्ट में बता रहा था कि दोनों एक ही हैं, और कुंडलिनी शक्ति को रूपांकित करते हैं। वह रीढ़ की हड्डी जैसे आकार का है, और पानी में मतलब स्पाइनल कॉर्ड के सेरेबरोस्पाइनल फ्लूड में रहता है। मेरुदण्ड में कुंडलिनी शक्ति के प्रवाह से ड्रन-रूपी या पापरूपी बुरे विचार दूर रहते हैं। कुमान्द्रा वह देह-देश है, जिसमें सभी किस्म के भाव अर्थात लोग मिलजुल कर रहते हैं। विभिन्न चक्र ही विभिन्न कबालई क्षेत्र हैं, और उन चक्रोँ पर स्थित विभिन्न मानसिक भाव व विचार ही विभिन्न कबालई लोग हैँ। कुमान्द्रा दरअसल कुंडलिनी योग की अवस्था है, जिसमें सभी चक्रोँ पर कुंडलिनी शक्ति अर्थात ड्रेगन को एकसाथ घुमाया जाता है। हरेक चक्र के योगदान से इस कुंडलिनी शक्ति से एक कुंडलिनी चित्र अर्थात ध्यान चित्र चमकने लगता है। यह कभी किसी चक्र पर तो कभी किसी दूसरे चक्र पर प्रकट होता रहता है। यही वह रत्न है जो द्वैत रूपी ड्रन से बचाता है। आदमी ने उस कुंडलिनी चित्र को केवल अपने हृदय में धारण किया हुआ था। मतलब आदमी साधारण राजयोगी की तरह था, तांत्रिक कुंडलिनी योगी की तरह नहीं। इससे हर्ट लैंड के लोग मतलब हृदय की कोशिकाएं तो शक्ति से भरी थीं, पर अन्य चक्रोँ से संबंधित अंग शक्ति की कमी से जूझ रहे थे। इसलिए स्वाभाविक है कि वे हर्ट कबीले से शक्तिस्रोत रत्न को चुराने का प्रयास कर रहे थे। एकबार हर्टलैंड के मुखिया बैंज मतलब जीवात्मा ने सभी लोगों को दावत पे बुलाया मतलब सभी चक्रोँ का सच्चे मन से ध्यान किया। पर उन्होंने मिलजुल कर रहने की अपेक्षा छीनाझपटी की और रत्न को तोड़ दिया, मतलब कि आदमी ने निरंतर के तांत्रिक कुंडलिनी योग के अभ्यास से सभी चक्रोँ को एकसाथ कुंडलिनी शक्ति नहीं दी, सिर्फ एकबार ध्यान किया या सिर्फ साधारण अर्थात अल्पप्रभावी कुंडलिनी योग किया। इससे स्वाभाविक है कि शक्ति तो चक्रोँ के बीच में बंट गई, पर कुंडलिनी चित्र गायब हो गया, मतलब वह निराकार शक्ति के रूप में सभी पांचोँ मुख्य चक्रोँ पर स्थित हो गया अर्थात रत्न पांच टुकड़ों में टूट गया और एक टुकड़ा हरेक कबीले के पास चला गया। इस शक्ति से सभी चक्रोँ के लोग जिन्दा तो रह सके थे, पर अज्ञान रूपी ड्रन से पूरी तरह से सुरक्षित नहीं थे, क्योंकि रत्न रूपी सम्पूर्ण कुंडलिनी चित्र नहीं था। अज्ञान से तो ध्यान-चित्र रूपी रत्न ही बचाता है। ध्यान-चित्र अर्थात रत्न के छिन जाने से बैंज नामक आत्मा तो अज्ञान के अँधेरे में डूब गई मतलब वह मर गया, पर उसने बेटी राया मतलब बुद्धि को बचीखुची कुंडलिनी शक्ति का प्रकाश मतलब रत्न का टुकड़ा देकर कहा कि वह शरीर-रूपी दुनिया में पुनः कुमान्द्रा मतलब अद्वैतवाद अर्थात मेलजोल स्थापित करे। राया मतलब बुद्धि फिर पानी मतलब सेरेबरोस्पाइनल फ्लूड या मेरुदण्ड के ध्यान में छलांग लगा देती है, जहाँ कुंडलिनी शक्ति मतलब सिसू ड्रेगन के प्रभाव से वह ड्रन से बच जाती है। दरअसल चक्रोँ के ध्यान को ही ध्यान कहते हैं। चक्र पर ध्यान को आसान बनाने के लिए बाएं हाथ से चक्र को स्पर्ष कर के रखा जा सकता है, क्योंकि दायां हाथ तो प्राणायाम के लिए नाक को स्पर्ष किए होता है। इससे खुद ही कुंडलिनी चित्र का ध्यान हो जाता है। यही हठयोग की विशिष्टता है। राजयोग में ध्यान-चित्र का ध्यान जबरदस्ती और मस्तिष्क पर बोझ डालकर करना पड़ता है, जो कठिन लगता है। जैसे चक्र का ध्यान करने से खुद ही ध्यानचित्र का ध्यान होने लगता है, उसी तरह मेरुदण्ड में स्थित नागरूपी सुषुम्ना नाड़ी का ध्यान करने से भी कुंडलिनी चित्र का ध्यान खुद ही होने लगता है। स्पर्ष में बड़ी शक्ति है। सुषुम्ना का स्पर्ष पीठ की मालिश करवाने से होता है। ऐसे बहुत से आसन हैं, जिनसे सुषुम्ना पर दबाव का स्पर्ष महसूस होता है। जो कुर्सी पूरी पीठ को अच्छे से स्पर्ष करके भरपूर सहारा देती है, वह इसीलिए आनंददायी लगती है, क्योंकि उस पर सुषुम्ना क्रियाशील रहती है। जो मैं ओरोबोरस सांप वाली पिछली पोस्ट में बता रहा था कि कैसे एकदूसरे के सहयोग से पुरुष और स्त्री

दोनों ही अपने शरीर के आगे वाले चैनल में स्थित चक्रोँ के रूप में अपने शरीर के स्त्री रूप वाले आधे भाग को क्रियाशील करते हैं, वह सब स्पर्श का ही कमाल है। राया को उस नदी अर्थात सुषुम्ना नाड़ी में ड्रेगन रूपी शक्ति का आभास होता है, इसलिए वह उसकी खोज में लग जाती है। उसे वह टेल आईलैंड में छुपी हुई मतलब उसे शक्ति मूलाधार चक्र में निद्रावस्था में मिल जाती है। उस ड्रेगन रूपी कुंडलिनी शक्ति की मदद से वह रत्न के टुकड़ों को मतलब कुंडलिनी चित्र को उपरोक्त टापुओं पर मतलब शक्ति के अड्डों पर मतलब चक्रोँ पर ढूंढने लगती है। एक टुकड़ा तो उसके पास दिल या मन या आत्मा या सहस्रार रूपी बैंज का दिया हुआ है ही, सदप्रेरणा के रूप में। आत्मा दिल या मन में ही निवास करती है। दूसरा टुकड़ा उसे टेल आईलैंड के मंदिर मतलब मूलाधार चक्र पर मिल जाता है। इससे ड्रेगन मानव रूप में आ सकती है, मतलब वीर्यबल से कुंडलिनी शक्ति पूरी सुषुम्ना नाड़ी में फैल गई, जो एक फण उठाए नाग या मानव की आकृति की है। टेलन द्वीप के लोग पानी के ऊपर रहते हैं, मतलब फ्रंट स्वाधिष्ठान चक्र के बॉडी सेल्स तरल वीर्य से भरे प्रॉस्टेट के ऊपर स्थित होते हैं। फ्रंट स्वाधिष्ठान चक्र एक पुल जैसे नाड़ी कनेक्शन से रियर स्वाधिष्ठान चक्र से जुड़ा होता है। इसे ही टेलन द्वीप के लोगों का नदी के बीच में बने प्लेटफॉर्म आदि पर घर बना कर रहना बताया गया है। इसी नदी जल रूपी तरल वीर्य की शक्ति से इस द्वीप रूपी चक्र पर ड्रून रूपी अज्ञान या निकम्मेपन का प्रभाव नहीं पड़ता। पुल से गुजरात राज्य के मोरबी का पुल हादसा याद आ गया। हाल ही में एक लोकप्रिय हिंदु मंदिर से जुड़े उस झूलते पुल के टूटने से सौ से ज्यादा लोग नदी में डूब कर मर गए। उनमें ज्यादातर बच्चे थे। सबसे कम आयु का बच्चा दो साल का बताया जा रहा है। टीवी पत्रकार एक ऐसे छोटे बच्चे के जूते दिखा रहे थे, जो नदी में डूब गया था। जूते बिल्कुल नए थे, और उन पर हँसते हुए जोकर का चित्र था। बच्चा अपने नए जूते की खुशी में पुल पर आनंद में खोया हुआ कूद रहा होगा, और तभी उसे मौत ने अपने आगोश में ले लिया होगा। मौत इसी तरह दबे पाँव आती है। इसीलिए कहते हैं कि मौत को और ईश्वर को हमेशा याद रखना चाहिए। दिल को छूने वाला दृश्य है। जो ऐसे हादसों में बच जाते हैं, वे भी अधिकांशतः तथाकथित मानसिक रूप से अपंग से हो जाते हैं। मैं जब सीनियर सेकंडरी स्कूल में पढ़ता था, तब हमें अंग्रेजी विषय पढ़ाने एक नए अध्यापक आए। वे शांत, गंभीर, चुपचाप, आसक्ति-रहित, और अद्वैतशील जैसे रहते थे। कुछ इंटेलिजेंट बच्चों को तो उनके पढ़ाने का तरीका धीमा और पिछड़ा हुआ लगा पहले वाले अध्यापक की अपेक्षा, पर मुझे बहुत अच्छा लगा। सम्भवतः मैं उनके तथाकथित आध्यात्मिक गुणों से प्रभावित था। प्यार से देखते थे, पर हँसते नहीं थे। कई बार कुछ सोचते हुए कहा करते थे कि कभी किसी का बुरा नहीं करना चाहिए, इस जीवन में क्या रखा है आदि। बाद में सुनने में आया कि जब वे अपने पिछले स्कूल में स्कूल का कैश लेके जा रहे थे, तब कुछ बदमाशों ने उनसे पैसे छीनकर उन्हें स्कूटर समेत सड़क के पुल से नीचे धकेल दिया था। वहाँ वे बेहोश पड़े रहे जब उनकी पत्नि ने उन्हें ढूंढते हुए वहाँ से अस्पताल पहुंचाया। डरे हुए और मजबूर आदमी के तरक्की के सारे रास्ते बंद हो जाते हैं, यहाँ तक कि उसकी पहले की की हुई तरक्की भी नष्ट होने लगती है। बेशक वह पिछली तरक्की के बल पर आध्यात्मिक तरक्की जरूर कर ले। पर पिछली तरक्की का बल भी कब तक रहेगा। हिन्दुओं को पहले इस्लामिक हमलावरों ने डराया, अब पाकिस्तान पोषित इस्लामिक आतंकवाद डरा रहा है। तथाकथित ख़ालिस्तानी आतंकवाद भी इनमें एक है। जिस धर्म के लोगों और गुरुओं ने मुग़ल हमलावरों से हिंदु धर्म की रक्षा के लिए हँसते-हँसते अपने प्राण न्योछावर कर दिए थे, आज उन्हींके कुछ मुट्ठी भर लोग तथाकथित हिंदुविरोधी खालिस्तान आंदोलन का समर्थन कर रहे हैं, बाकि अधिकांश लोग भय आदि के कारण चुप रहते हैं, क्योंकि बहुत से बोलने वालों को या तो जबरन चुप करवा दिया गया या मरवा दिया गया। अगर विरोध में थोड़ा-थोड़ा सब स्वतंत्र रूप से बोलें, तो आतंकवादी किस किस को मारेंगे। सूत्रों के अनुसार कनाडा उनका मुख्य अड्डा बना हुआ है। अभी हाल ही में हिन्दूवादी शिवसेना के नेता सुधीर सूरी की तब गोली मारकर हत्या कर दी गई, जब वे देव मूर्तियों को कूड़े में फ़ेंके जाने का विरोध करने के लिए शांतिपूर्ण प्रदर्शन कर रहे थे। सूत्रों के अनुसार इसके तार भी पाक-समर्थित खालिस्तान से जुड़े बताए जा रहे हैं। तथाकथित हिंदु विचारधारा वाले राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नेता गगनेजा हो या रवीन्द्र गोसाईं, इस अंतर्राष्ट्रीय साजिश के

शिकार लोगों की सूचि लंबी है। गहराई से देखने पर तो यह लगता है कि हिंदु ही हिंदु से लड़ रहे हैं, उकसाने और साजिश रचने वाले तथाकथित बाहर वाले होते हैं। हाँ, अब पोस्ट के मूल विषय पर लौटते हैं। आपने भी देखा ही होगा कि कोई चाहे कैसा ही क्यों न हो, किसी न किसी बहाने सम्भोग की तरफ आकर्षित हो ही जाता है, ताकि अपनी ऊर्जा को बढ़ा सके, मतलब यहाँ निकम्मापन नहीं पनपता। तीसरा टुकड़ा उसे स्पाइन ट्राईब अर्थात मेरुदण्ड में मिला, सुषुम्ना में उठ रही संवेदना के रूप में। मेरुदण्ड स्थित कुंडलिनी शक्ति अर्थात सिसू ड्रेगन को कुंडलिनी चित्र चक्रों से मिला होता है, जैसा कि शिवपुराण में आता है कि ऋषिपत्नियों (चक्रों) ने अपने वीर्य तेज को हिमालय (मेरुदण्ड) को दिया। इसीको सिसू कहती है कि उसे रत्न के टुकड़े उसके भाई-बहिनों ने दिए, जो इन विभिन्न टापुओं पर रहते थे। हरेक चक्र से मिली कुंडलिनी चित्र रूपी चिंतन शक्ति से सिसू रूपी कुंडलिनी शक्ति मजबूती प्राप्त करती है, और अपने मस्तिष्क में अर्थात आदमी के मस्तिष्क में (क्योंकि फन उठाए नाग का मस्तिष्क ही आदमी का मस्तिष्क है) एक विशेष शक्ति और उससे एक नया सकारात्मक रूपांतरण महसूस करती है। इसको उपरोक्त मिथक कथा में ऐसे कहा है कि हरेक रत्न का टुकड़ा प्राप्त करने से वह एक विशेष नई शक्ति प्राप्त करती है। राया और सिसू फैंग कबीले से बचते हुए स्पाइन कबीले में पहुंचते हैं, मतलब अवेयरनेस या बुद्धि और कुंडलिनी शक्ति आगे के चक्रों से ऊपर नहीं चढ़ती, अपितु पीछे स्थित रीढ़ की हड्डी से ऊपर चढ़ती है। यह इसलिए कहा गया है क्योंकि फैंग मतलब मुंह का नुकीला दाँत आगे के चक्रों के रास्ते में ही आता है। इस यात्रा में उसे चार-पांच मददगार दोस्त मिल जाते हैं, मतलब पाँच प्राण और मांसपेशियों की ताकत जो कि कुंडलिनी शक्ति को घुमाने में मदद करते हैं। फैंग आईलैंड में वे पीछे से मतलब पीछे के विशुद्धि चक्र से प्रविष्ट होती हैं। वह इसलिए क्योंकि कुंडलिनी शक्ति को विशुद्धि चक्र से ऊपर चढ़ाना सबसे कठिन है, इसलिए वह आगे की तरफ फ़िसलती है। वहाँ राजकुमारी निमारी मतलब बीमारी मतलब कमजोरी या अंधभौतिकता उसे मार देती है, मतलब उसे वापिस हटने पर मजबूर करती है, और वह नदी में गिर जाती है, मतलब मेरुदण्ड के फ्लूड में बहती हुई वापिस नीचे चली जाती है। उससे बवंडर ताकतवर होकर लोगों को मारने लगते हैं, मतलब चक्रों में फँसी भावनाओं को बाहर निकलने का मौका न देकर वहीं उन्हें पत्थर अर्थात शून्य अर्थात बेजान बनाने लगते हैं। चक्र भी बवंडर की तरह गोलाकार होते हैं। सिसू नमारी से लड़ना नहीं चाहती मतलब जब कुंडलिनी शक्ति विशुद्धि चक्र को लांघ कर ऊपर चढ़ने लगती है, तब मन की लड़ाई-झगड़े वाली सोच नष्ट हो जाती है। मन का सतोगुण बढ़ा हुआ होता है। वह नमारी को तोहफा देना चाहती है मतलब उसे कुछ मिष्ठान्न आदि खिलाकर। वैसे भी मुंह में कुछ होने पर कुंडलिनी सर्कट कम्प्लीट हो जाता है, जिससे कुंडलिनी आसानी से घूमने लगती है। पर हुआ उल्टा। उस तोहफे से कुंडलिनी की मदद करने की बजाय वह दुनियादारी के दोषों जैसे गुस्से, लड़ाई व अति भौतिकता आदि को बढ़ाने लगी। इससे तो कुंडलिनी शक्ति नष्ट होगी ही। इसको ऐसे दिखाया गया है कि सिसू तीर लगने से मरकर नदी में गिर जाती है, मतलब शक्ति फिर सेरेबरोस्पाइनल द्रव से होती हुई मेरुदण्ड में वापिस नीचे चली जाती है। इससे फिर से ड्रून के हमले शुरु हो जाते हैं। इससे शक्ति की कमी से टुकड़ों में बंटे कुंडलिनीचित्र रूपी रत्न से वे बवंडर से बचने की कोशिश करते हैं, पर शक्ति के बिना कब तक कुंडलिनी चित्र बचा पाएगा। कुंडलिनी चित्र अर्थात ध्यान चित्र को शक्ति से ही जान और चमक मिलती है, और शक्ति को कुंडलिनी चित्र से। दोनों एकदूसरे के पूरक हैं। इससे वह मेडिटेशन चित्र भी धूमिल पड़ने लगता है। इससे राया मतलब बुद्धि को याद आता है कि आपसी सौहार्द और विश्वास से ही सीसू मतलब शक्ति ने वह कुंडलिनी रत्न प्राप्त किया था। इसलिए वह अपना रत्न भाग नमारी मतलब दुनियादारी या भौतिकता को दे देती है। सभी अंग और प्राण बुद्धि का ही अनुगमन करते हैं, इसलिए उसके सभी दोस्त मतलब प्राण भी जिन्होंने विभिन्न चक्रों से कुंडलिनी भागों को कैपचर किया है, वे भी अपनेअपने रत्नभाग नमारी को दे देते हैं। नमारी भी अपना टुकड़ा उसमें जोड़ देती है, मतलब वह भी पूरी शक्ति का इस्तेमाल करते हुए दुनियादारी में अनासक्ति और अद्वैत के साथ व्यवहार करने लगती है। इससे वह रत्न पूरा जुड़ जाता है मतलब अद्वैत की शक्ति से कुंडलिनी चित्र आनंद और शांति के साथ पूरा चमकने लगता है। इससे चक्रों में दबी हुई भावनाएँ फिर से प्रकट होकर

आत्मा के आनंद में विलीन होने लगती हैं, मतलब बवंडर द्वारा पत्थर बनाए लोग फिर से जिन्दा होकर आनंद मनाने लगते हैं। सुषुम्ना की शक्ति भी उस चित्र की मदद से जागने लगती है। सुषुम्ना नाड़ी के साथ ही शरीर की अन्य सभी नाड़ियों में भी अवेयरनेस दौड़ने लगती है, मतलब उनमें दौड़ती हुई शक्ति की सरसराहट आनंद के साथ महसूस होने लगती है। इसको ऐसे कहा गया है कि फिर पत्थर बनी सभी ड्रेगन भी जिन्दा हो जाती हैं। वे ड्रेगन पूरे कुमान्द्रा में खुशहाली और समृद्धि वापिस ले आती है। क्योंकि शरीर भी एक विशाल देश की तरह ही है, जिसमें शक्ति ही सबकुछ करती है। हरेक नाड़ी में आनंदमय शक्ति के दौड़ने से पूरा शरीर खुशहाल, हट्टाकट्टा और तंदुरस्त तो बनेगा ही। इससे पहले रत्न के टुकड़े पत्थर बने लोगों को तो जिन्दा कर पा रहे थे पर पत्थर बनी ड्रेगनों को नहीं। इसका मतलब है कि धुंधले कुंडलिनी चित्र से चक्रों में दबी भावनाएँ तो उभरने लगती हैं, पर उससे सरसराहट के साथ चलने वाली शक्ति महसूस नहीं होती। शक्तिशाली नाग के रूप में सरसराहट करने वाली कुण्डलिनी शक्ति मानसिक कुंडलिनी छवि का ही अनुसरण करती है। इसके और आगे, तांत्रिक यौन योग इस शक्ति को और ज्यादा मजबूती प्रदान करता है। महाराज ओशो भी यही कहते हैं। मतलब कि शक्ति चक्रों पर विशेषकर मूलाधार चक्र में सोई हुई अवस्था में रहती है। इसका प्रमाण यह भी है कि यदि आप मन में नींद-नींद का उच्चारण करने लगो, तो कुंडलिनी शक्ति के साथ कुंडलिनी चित्र स्वाधिष्ठान चक्र और मूलाधार चक्र पर महसूस होने लगेगा, नाभि चक्र में भी अंदर की ओर सिकुड़न महसूस होगी। साथ में रिलेक्स फील भी होता है, असंयमित विचारों की बाढ़ शांत हो जाती है, मस्तिष्क में दबाव एकदम से कम होता हुआ महसूस होता है, और सिरदर्द से भी राहत मिलती है। यह तकनीक उनके लिए बहुत फायदेमंद है जिनको नींद कम आती हो या जो तनाव में रहते हैं।

निद्रा देवी ही नींद की अधिष्ठात्री है। "श्री निद्रा है" मंत्र मैंने डिज़ाइन किया है। श्री से शरीरविज्ञान दर्शन का अद्वैत अनुभव होता है, जिससे कुंडलिनी मस्तिष्क में कुछ दबाव बढ़ाती है, निद्रा से वह कुंडलिनी दबाव के साथ निचले चक्रों में उतर जाती है, है से आदमी सामान्य स्थिति में लौट आता है। अगर योग करते हुए मस्तिष्क में दबाव बढ़ने लगे, तब भी यह उपाय बहुत कारगर है। दरअसल योग के लिए नींद भी बहुत जरूरी है। जागृति नींद के सापेक्ष ही है, इसलिए नींद से ही मिल सकती है। जो जबरदस्ती ही हमेशा ही सतोगुण को बढ़ा के रखकर जागे रहने का प्रयास करता है, वह कई बार मुझे ढोंग लगता है, और उससे आध्यात्मिक जागृति प्राप्त होने में मुझे संदेह है। इसी तरह किताब में पढ़ते समय मुझे लगता था कि शाम्भवी मुद्रा पता नहीं कितनी बड़ी चमत्कारिक विद्या है, क्योंकि लिखा ही ऐसा होता था। लेखन इसलिए होता है ताकि कठिन चीज सरल बन सके, न कि उल्टा। सब कुछ सरल है यदि व्यावहारिक ढंग से समझा जाए। नाक पर या नासिकाग्र पर नजर रखना कुंडलिनी शक्ति को केंद्रीकृत कर के घुमाने के लिए एक आम व साधारण सी प्रेक्टिस है। एकसाथ दोनों आँखों से बराबर देखने से आज्ञा चक्र पर भी ध्यान चला जाता है, यह भी साधारण अभ्यास है। जीभ को तालू से ज्यादा से ज्यादा पीछे छुआ कर रखना भी एक साधारण योग टेक्टिक है। इन तीनों तकनीकों को एकसाथ मिलाने से शाम्भवी मुद्रा बन जाती है, जिससे तीनों के लाभ एकसाथ और प्रभावी रूप से मिलते हैं। इसीलिए जीवन संतुलित होना चाहिए ताकि उसमें पूरे शरीर का बराबर योगदान बना रहे, और शरीर कुमान्द्रा अर्थात संतुलित बना रहे। संतुलन ही योग है। इसी तरह रत्न के टुकड़े लोगों का ड्रन से स्थायी बचाव नहीं कर पा रहे थे। यह राजयोग वाला उपाय है, जिसमें केवल मन या दिल में कुंडलिनी चित्र का ध्यान किया जाता है, हठयोग के योगासन व प्राणायाम आदि के रूप में पूरी योगसाधना नहीं की जाती। इसलिए जबतक कुंडलिनी चित्र का ध्यान किया जाता है तब तक तो वह बना रहता है, पर जैसे ही ध्यान हटाया जाता है, वैसे ही वह एकदम से धूमिल पड़ जाता है। यही बैंज कबीले वाला स्थानीय उपाय है। इससे मन या हृदय में तो ड्रन से बचाव होता है, पर अन्य चक्रों पर लोगों के पत्थर बनने के रूप में भावनाएँ दबती रहती हैं। इसलिए सम्पूर्ण, सार्वकालिक व सार्वभौमिक उपाय हठयोग के साथ यथोचित दुनियादारी ही है, राजयोग मतलब खाली बैठकर केवल ध्यान लगाना नहीं। ऐसा इसलिए क्योंकि हठयोग में पूरे शरीर का और बाहरी संसार का यथोचित इस्तेमाल होता है। संसार में भी पूरे शरीर का

इस्तेमाल होता है, केवल मन व दिल का ही नहीं। हालांकि प्रारम्भिक तौर पर पूर्ण सात्विक राजयोग ही कुंडलिनी चित्र को तैयार करता है, और उसे संभाल कर रखता है। यह ऐसे ही है, जैसे बैंज कबीले के मुखिया ने रत्न को संभाल कर रखा हुआ था। कई लोग हठयोग के आसनों को देखकर बोलते हैं कि यह तो शारीरिक व्यायाम है, असली योग तो मन में ध्यान से होता है। उनका कहने का मतलब है कि मन रूपी चिड़िया बिना किसी आधार के खाली अंतरिक्ष में उड़ती रहती है। पर सच्चाई यह है कि मन रूपी चिड़िया शरीर रूपी पेड़ पर निवास करती है। पेड़ जितना ज्यादा स्वस्थ और फलवान होगा, चिड़िया उतनी ही ज्यादा खुश रहेगी।

कुंडलिनी-ध्यानचित्र का वाममार्गी तांत्रिक यौनयोग में महत्त्व

मित्रो, मैं इस पोस्ट में शिवपुराण में वर्णित राक्षस अंधकासुर, दैत्यगुरु शुक्राचार्य, देवासुर संग्राम और शिव के द्वारा देवताओं की सहायता का रहस्योदघाटन करूंगा।

शिवपुराणोक्त अन्धकासुर कथा

एक बार भगवान शिव पार्वती के साथ काशी से निकलकर कैलाश पहुंचते हैं, और वहाँ भ्रमण करने लगते हैं। एकदिन शिव ध्यान में होते हैं कि तभी देवी पार्वती पीछे से आकर उनके मस्तक पर हाथ रखती हैं, जिससे शिव के माथे की गर्मी से उनकी अंगुली से एक पसीने की बूंद जमीन पर गिर जाती है। उससे एक बालक का जन्म होता है, जो बहुत कुरूप, रोने वाला और अंधा होता है। इसलिए उसका नाम अंधकासुर रखा जाता है। उधर राक्षस हिरण्याक्ष पुत्र न होने से बहुत दुखी रहता है। वह शिव को प्रसन्न करने के लिए घोर तप करता है, और उनसे पुत्र-प्राप्ति का वर मांगता है। शिव अंधक को उसे सौंप देते हैं। वह शिवपुत्र अंधक की प्राप्ति से अति प्रसन्न और उत्साहित होकर स्वर्ग पर चढ़ाई कर देता है, जिससे देवता स्वर्ग से भागकर धरती पर छिप कर रहने लगते हैं। वह धरती को समुद्र में डुबोकर पाताल लोक में छुपा देता है। फिर भगवान विष्णु देवताओं की सहायता करने के लिए वाराह के रूप में अवतार लेकर हिरण्याक्ष को मार देते हैं और धरती को अपने दाँतों पर रखकर पाताल से ऊपर उठाकर पूर्ववत यथास्थान रख देते हैं। उधर बालक अंधक जब अपने भाई प्रह्लाद आदि अन्य राक्षस बालकों के साथ खेल रहा होता है, तो वे उसे यह कह कर चिढ़ाते हैं कि वह अंधा और कुरूप है इसलिए वह अपने पिता हिरण्याक्ष की जगह राजगद्दी नहीं संभाल सकता। इससे अन्धक दुखी होकर भगवान शिव को खुश करने के लिए घोर तप करने लगता है। वह धुएं वाली अग्नि को पीता है, अपने मांस को काटकाट कर हवनकुण्ड में हवन करता है। इससे वह हड्डी का कंकाल मात्र बच जाता है। शिवजी उससे प्रसन्न होकर उसके मांगे वर के अनुसार उसे बिल्कुल स्वस्थ व आँखों वाला कर देते हैं, और कहते हैं कि वह केवल तभी मरेगा जब किसी महान योगी की पतिव्रता स्त्री को अपनी स्त्री बनाने का प्रयास करेगा। वर से खुश और दंभित होकर अन्धक उग्र भोगविलास में डूब जाता है, अनेकों कामिनियों के साथ विभिन्न रतिवर्धक स्थानों में रमण करता है, और अपनी आयु का दुरुपयोग करता है। वह साधुओं और देवताओं पर भी बहुत अत्याचार करता है। वे सब इकट्ठे होकर भगवान शिव के पास जाते हैं। शिव उनकी मदद करने के लिए कैलाश पर पार्वती के साथ विहार करने लगते हैं। एकदिन अन्धक के सेवक की नजर देवी पार्वती पर पड़ती है, और वह यह बात अन्धक को बताता है। अंधक पार्वती पर आसक्त होकर शिव को गंदा तपस्वी, जटाधारी आदि कह कर उनका अपमान करता है और कहता है कि उतनी सुंदर नारी उसी के योग्य है, न कि किसी तपस्वी के। फिर वह सेना के साथ शिव से युद्ध करने चला जाता है। उसे शिव का गण वीरक अकेले ही युद्ध में हरा कर भगा देता है, और उसे शिवगुफा के अंदर प्रविष्ट नहीं होने देता। फिर शिव पाशुपत मंत्र प्राप्त करने के लिए दूर तप करने चले जाते हैं। मौका देखकर अंधक फिर हमला करता है। पार्वती अकेली होती है गुफा में। उसे वीरक भी नहीं रोक पा रहा होता है। डर के मारे पार्वती सभी देवताओं को सहायता के लिए बुलाती है, जो फिर स्त्री रूप में अस्त्रशस्त्र लेकर पहुंच जाते हैं। स्त्री रूप इसलिए क्योंकि देवी के कक्ष में पुरुष रूप में जाना उन्हें अच्छा नहीं लगता। घोर युद्ध होता है। अंधक का सैनिक विघस सूर्य चन्द्रमा आदि देवताओं को निगल जाता है। चारों ओर अंधेरा छा जाता है। हालांकि वे किसी दिव्य मंत्र के जाप से उसके मुंह में घूँसे मारकर बाहर भी निकल आते हैं। तभी शिव भी वहाँ पहुँच जाते हैं। उससे उत्साहित गण राक्षसों को मारने लगते हैं। पर राक्षस गुरु शुक्राचार्य अपनी संजीवनी विद्या से सभी मृत राक्षसों को पुनर्जीवित कर देते हैं। शिव को यह बात शिवगण बता देते हैं कि शुक्राचार्य उनकी दी हुई विद्या का कैसे दुरूपयोग कर रहा है। इससे नाराज होकर शिव उसे पकड़ कर लाने के लिए नंदी बैल को भेजते हैं। नंदी राक्षसों को मारकर उसे पकड़कर ले आता है। शिव शुक्राचार्य को निगल जाते हैं। वह शिव के उदर में बाहर निकलने का छेद न पाकर चारों तरफ ऐसे घूमता है, जैसे वायु के वेग से घूम रहा हो। वह

वहाँ से निकलने का वर्षों तक प्रयास करता है, पर निकल नहीं पाता। फिर शिव उसे शुक्र अर्थात वीर्य रूप में अपने लिंग से बाहर निकालते हैं। इसीलिए उनका नाम शुक्राचार्य पड़ा।

दरअसल संजीवनी विद्या उन्हें एक बहुत पुराने समय में शिव ने दी होती है। वह एक बहुत सुंदर स्थान पर शिव का लिंग स्थापित करते हैं। उस पर वे शिव की कठिन अराधना करते हैं। अग्निधूम को पीते हैं, और कठिन तप करते हैं। उससे शिव लिंग से प्रकट होकर उन्हें संजीवनी विद्या देते हैं, और वर देते हैं कि वे भविष्य में उनके उदर में प्रविष्ट होकर उनके वीर्य रूप में जन्म लेंगे। वे लिंग का नाम शुक्रेश और उनके द्वारा स्थापित कुएँ का नाम शुक्रकूप रख देते हैं। वे भक्तों द्वारा उस कूप में स्नान करने का अमित फल बताते हैं।

अंधकासुर कथा का कुंडलिनी-आधारित विश्लेषण

शुक्र मतलब ऊर्जा या तेज। शुक्र, ऊर्जा और तेज तीनों एकदूसरे के पर्याय हैं। शुक्राचार्य को निगल गए, मतलब योगी शिव ने खेचरी मुद्रा में जिह्वा तालु से लगाकर कुंडलिनी ऊर्जा को आगे के नाड़ी चैनल से नीचे उतारा, जिससे वीर्यशक्ति के रूपान्तरण से निर्मित कुंडलिनी ऊर्जा मूलाधार चक्र से पीठ की सुषुम्ना नाड़ी से होते हुए ऊपर चढ़ गई। वायु के वेग से वे इधरउधर भटकने लगे, मतलब साँसों की गति से कुंडलिनी ऊर्जा माइक्रोकोस्मिक औरबिट लूप में गोल-गोल घूमने लगी। शुक्राचार्य को बहुत समय तक घुमाने के बाद योगी शिव ने उन्हें वीर्य मार्ग से बाहर निकाल दिया, मतलब बहुत समय तक शक्ति को चक्रों में घुमाते हुए व उससे चक्रों पर इष्ट देव या गुरु आदि के रूप में कुंडलिनी चित्र का ध्यान करने के बाद जब वह शक्ति क्षीण होने लगी मतलब शुक्राचार्य शिथिल पड़ने लगे, तब उसे वीर्यरूप में बाहर निकाल दिया। उन्हें योगी शिव ने पुत्र रूप में स्वीकार किया, मतलब कि जिसे ओशो महाराज कहते हैं, 'संभोग से समाधि', वह तरीका अपनाया। इस यौनतंत्र में सहस्रार चक्र के समाधि चित्र को स्खलन-संवेदना के ऊपर आरोपित किया जाता है। इससे वही बात हुई जैसी एक पिछली पोस्ट में लिखी गई है कि गंगा नदी के किनारे पर उगी सरकंडे की घास पर शिववीर्य से बालक कार्तिकेय का जन्म हुआ, मतलब शुक्राचार्य ने कार्तिकेय के रूप में शिवपुत्रत्व प्राप्त किया। उपरोक्त कथा के ही अनुसार सबसे प्रसिद्ध, प्रिय व शक्तिशाली लिंग शुक्रलिंग ही माना जाएगा, क्योंकि यह पूरी तरह से असली है, अन्य तो प्रतीतात्मक ज्यादा हैं, जैसे कोई पाषाणलिंग होता है, कोई पारदलिंग, तो कोई हिमलिंग आदि। शुक्रकूप आसपास में एक ठंडे जल का कुआँ है, जो संभोगतंत्र में सहयोगी है, क्योंकि जैसा एक पिछली पोस्ट में दिखाया गया है कि कैसे ठंडे जल से स्नान यौनऊर्जा को गतिशील व कार्यशील बनाने का काम करता है।

शुक्राचार्य जो राक्षसों को जिन्दा कर रहे थे, उसका यही मतलब है कि वीर्यशक्ति बाह्यगामी होने के कारण संसारमार्गी मानसिक दोषों, आसक्तिपूर्ण भावनाओं और विचारों को बढ़ावा दे रही थी। शिव ने नंदी को शुक्राचार्य को पकड़ कर लाने को कहा, इसका मतलब है कि नंदी अद्वैत भाव का परिचायक है क्योंकि वह एक ऐसा शिवगण है जिसमें बैल के रूप में पशु और गण के रूप में मनुष्य एक साथ विद्यमान है। वह एक यिन-यांग मिश्रण है। अद्वैत से कुंडलिनी शक्ति को मूलाधार से ऊपर चढ़ने में मदद मिलती है।

देवी पार्वती ने महादेव शिव की आँखें बंद कीं, इससे वे अंधे जैसे हो गए। इसको यह समझाने के लिए कहा गया है कि कोई भावी योगी अज्ञान वाली अवस्था में था, न तो उसे लौकिक व्यवहार का ज्ञान था, और न ही आध्यात्मिक ज्ञान। फिर वह इश्कविश्क़ के चक्कर में पड़ गया। उससे उसकी शक्ति तो घूमने लगी, पर वह बिना कुंडलिनी चित्र के थी। कुंडलिनी चित्र माने ध्यान चित्र आध्यात्मिक ज्ञान की उच्चावस्था में बनता है। आध्यात्मिक ज्ञान लौकिक ज्ञान व अनुभव के उत्कर्ष से प्राप्त होता है। ऐसा होने में जीवन का लम्बा समय बीत जाता है। ज्ञानविज्ञानरहित प्यार-मोहब्बत से क्या होता है कि आदमी यौन

शक्ति को ढंग से रूपान्तरित और निर्देशित नहीं कर सकता, जिससे उसका क्षरण या दुरुपयोग होता है। वही दुरुपयोग अंधक नाम वाला पुत्र है। इसका सीधा सा अर्थ है कि अमुक भावी योगी ने शक्ति को घुमाया तो जरूर। ऐसा उक्त कथानक की इस बात से सिद्ध होता है कि पार्वती ने दोनों नेत्रों को एकसाथ बंद किया, मतलब यिन-यांग संतुलित हो गए। पर परिपक्वता की कमी से इस संतुलन से किंचित चमक रहे कुंडलिनी चित्र को समझ नहीं पाया और उसे जानबूझकर व्यर्थ समझ कर त्याग दिया। चमक बुझने से स्वाभाविक है कि अंधेरा छा गया, जिसे आँखों को बंद करने के रूप में दिखाया गया है। क्योंकि शक्ति से मस्तिष्क में जो उच्च स्पष्टता के साथ छवि बनती है, उसे ही पुत्र कहा जाता है, जैसे कि इस ब्लॉग की एक पोस्ट में सिद्ध भी किया गया था। बिना किसी भौतिक सहवास के असली या भौतिक पुत्र तो पैदा हो ही नहीं सकता, वह भी मिट्टी-पत्थर से भरी जमीन के ऊपर या सरकंडों के ऊपर। क्योंकि इस पोस्ट के भावी योगी के मस्तिष्क में उस शक्ति से अंधेरा ही घनीभूत हुआ, इसलिए उसे पुत्र अंधक के रूप में दिखाया गया। चूंकि अँधेरे से भरा व्यक्ति किसी को प्रिय व कार्यक्षम नहीं लगता, इसलिए इसे ऐसा दिखाया गया है कि वह अंधकासुर सबको अप्रिय था और उसके बालमित्र उसे राजगद्दी के अयोग्य बताकर उसका मजाक उड़ाते थे। स्वाभाविक है कि भावी योगी दुनिया में सम्मान, सुखसमृद्धि और यहाँ तक कि जागृति के रूप में सम्पूर्णता को प्राप्त करने के लिए भरपूर प्रयास करता है, क्योंकि उसमें बहुत शक्ति होती है, केवल स्थिर ध्यानचित्र की ही कमी होती है। उसे दुनिया में ठोकरें खाने के बाद इस कमी का अप्रत्यक्ष अहसास हो ही जाता है, इसलिए वह कुंडलिनी ध्यानयोग के लिए एकांत में चला जाता है। इसे ही ऐसे दिखाया गया है कि अंधक फिर वन में जाकर शिव या ब्रह्मा का ध्यान करते हुए घोर तप करता है। अपने मांस को टुकड़ों में काटकाट कर वह उन्हें अग्नि में होम करता रहता है। साथ में अग्निधूम का पान करता है। इसका मतलब है कि भावी योगी कठिन हठयोग करता है, जिससे उसकी अतिरिक्त चर्बी तो घुलती ही है, साथ में मांसल शरीर भी योगाग्नि से जलकर दुबला हो जाता है। इस दहन से जो कार्बन डायक्साइड गैस निकलती है, उसे ही धुआँ कहा है। क्योंकि योग में अक्सर सांस को अंदर रोक कर रखा जाता है, इसलिए उसे ही धुएं को पीना कहा गया है। जब वह इतना कमजोर हो जाता है कि वह हड्डी का ढांचा जैसा दिखने लगता है, तब भगवान शिव उसे दर्शन दे देते हैं। इसका मतलब है कि जब हठयोगाभ्यास करते हुए काफी समय हो जाता है, जिससे योगी को अपने सहस्रार चक्र में बढ़ी हुई सात्विकता के कारण अपना शरीर अस्थिपंजर की तरह हल्का लगने लगता है, तब कुंडलिनी जागृत हो जाती है। मतलब अदृश्य या सुप्त कुंडलिनी शक्ति मानसिक शिवचित्र के रूप में जागृत हो जाती है। अब शिव अंधक को बिल्कुल स्वस्थ व सुंदर बना देते हैं। ठीक है, कुंडलिनी जागरण से ऐसा ही अकस्मात और सकारात्मक रूपान्तरण होता है। अब वह शिव से वर मांगता है कि वह कभी न मरे। शिव कहते हैं कि ऐसा सम्भव नहीं। विश्व की रक्षा के लिए भी यह जरूरी है। अमरता पाकर तो कोई भी अत्याचारी बनकर दुनिया को तबाह कर सकता है, क्योंकि उसे रोकने व डराने वाला कोई नहीं होगा। इसलिए ब्रह्मा उससे कोई न कोई मौत का कारण चुनने को कहते हैं, बेशक वह असम्भव सा ही क्यों न लगे। इस पर ब्रह्मा कहते हैं कि जब वह माँ के समान आदरणीय महिला को पत्नि बनाना चाहेगा, वह तब मरेगा। अब ये तंत्र की गूढ़ बातें हैं, जिनके यदि रहस्य से पर्दा उठाया जाए, तो आम जनमानस को अजीब लग सकता है। तिब्बतन यौनतंत्र में गुरु की यौनसाथी उनकी अनुमति से उनके शिष्यों को तांत्रिक यौनकला प्रयोगात्मक रूप में सिखाती है। गुरुपत्नि को माँ के समान माना गया है। मतलब कि तांत्रिक यौनयोग सीखने के बाद अंधक अंधी दुनियादारी से उपरत होकर अपनी आत्मा या अपने आप में शांत हो जाएगा, मतलब वह एक प्रकार से मर जाएगा। बाद में हुआ भी वैसा ही, मरने के बाद उसे शिव ने अपना गण बना लिया, मतलब वह मुक्त हो गया। आम मृत्यु के बाद तो कोई मुक्त नहीं होता। इसका एक मतलब यह भी है कि जब विवाह या सम्भोग के अयोग्य सम्मानित नारी से प्यार होता है, तब उसका रूप बारबार मन में आने लगता है, जिससे वह समाधि का रूप ले लेता है, जैसा कि प्रेमयोगी वज्र के साथ भी हुआ था। ब्रह्मा के वर को पाकर अन्धक राजा बन गया, और बहुत अय्याश हो गया। सुंदर व सुडोल शरीर तो उसे मिला ही था, इसलिए वह अनगिनत कामिनियों के साथ विभिन्न मनोहर स्थानों में रमण करते हुए अपना

बहुमूल्य समय नष्ट करने लगा। इस यौन शक्ति के बल से वह बहुत पाप भी करने लगा। देवताओं को स्वर्ग से भगा कर वहाँ खुद राज करने लगा। जब कोई बुरे काम करेगा तो शरीर रूपी स्वर्ग में स्थित देवता दुखी होकर भागेंगे ही, क्योंकि देवताओं का मुख्य उद्देश्य है शरीर से अच्छे काम करवाना। अब मैं इससे जुड़ी हाल की घटना बताता हूँ और फिर पोस्ट को खत्म करता हूँ क्योंकि नहीं तो यह बहुत लंबी होकर पढ़ने में मुश्किल हो जाएगी। अगले हफ्ते तक शेष कथा के रहस्य को उजागर करने की कोशिश करूंगा, क्योंकि अभी मैं लगभग इतना ही समझ सका हूँ। हो सकता है कि आप मेरे से पहले उजागर कर दें, यदि ऐसा है तो कमेंट बॉक्स में जरूर लिखना।

आफताब-श्रद्धा से जुड़ा बहुचर्चित लवजिहाद काण्ड

आजकल बहुचर्चित आफताब पूनावाला से संबंधित मर्डर मिस्ट्री उपरोक्त अंधक कथा से बहुत मेल खा रही है। सूत्रों के अनुसार वह मुस्लिम युवक श्रद्धा नामक हिंदु लड़की के साथ लिव इन रिलेशनशिप में था। वह डेटिंग ऐप के माध्यम से अपना घरपरिवार छोड़कर उसके साथ लम्बे अरसे से रह रही थी। कई मकान मालिकों को तो वह उसे अपनी पत्नि तक बता कर साथ रखता था, क्योंकि यहाँ के परिवेश में लिव इन रिलेशनशिप को अच्छा नहीं समझा जाता। चोरी छुपे उसके 20 अन्य हिंदु लड़कियों के साथ भी प्रेमसंबंध थे। श्रद्धा को शायद यह बात पता चली होगी और वह उसे ऐसा करने से रोककर उससे शादी करना चाहती होगी। इसको लेकर झगड़े भी हुए और मारपीट भी। अंततः उसने उसका गला दबाकर हत्या कर दी और बिना अफ़सोस के उसके पेंतीस टुकड़े करके उन्हें फ्रिज में पैक कर दिया। धीरेधीरे करके वह उन्हें निकट के जंगल में फ़ेंकता रहा। छः महीने बाद श्रद्धा के पिता द्वारा लिखी शिकायत के बाद पुलिस उसे पकड़ सकी। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि आज की तथाकथित आधुनिक महिलाओं को प्रसन्न करने के लिए कैसे आफताब की तरह शातिर, बेईमान, नशेड़ी, धूम्रपानी, मांसभक्षी, हिंसक और धोखेबाज बनना पड़ता है, हालाँकि ऐसे अतिवाद को कोई सभ्य व पढ़ालिखा समाज कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता, जिसमें मानवता का हनन होता हो। दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि बहुत से हिन्दुओं द्वारा शिवपुराण का कहीं गलत अर्थ तो नहीं निकला जा रहा, या बिना जानेबूझे कहीं वैसी विकृत सोच अवचेतन मन में तो नहीं बैठी हुई है। पुराण से प्राप्त आम धारणा के अनुसार महादेव शिव बिना कुलपरम्परा वाले एक भूतिया किस्म के आदमी थे, जिनको पति रूप में पाने के लिए पार्वती कई जन्मों तक घरपरिवार को छोड़कर भटकती रही। पति-पत्नि के परस्पर प्रेम को परवान चढ़ाने के लिए कुछ हद तक ऐसा पागलपन ठीक भी है, पर वह भी कुछ जरूरी शर्तों के साथ ही पूरा सफल होता है, और वैसे भी अति तो कहीं भी अच्छी नहीं है, ख़ासकर उस कौम के व्यक्ति के साथ तो बिल्कुल भी संबंध अच्छा नहीं है, जिनके तथाकथित लवजिहाद से जुड़े जालिमपने और जाहिलियत के उदाहरण आए दिन मिलते रहते हैं। सब पता होते हुए भी बारम्बार गलती करना तो ऐसा लगता है कि या तो परिवार में बच्चों को सही व संस्कारपूर्ण शिक्षा नहीं दी जा रही या ऐसी लड़कियों के ऊपर जादूटोना कर दिया गया है, या यह हिन्दुओं के पवित्र और ज्ञानविज्ञान से भरे शास्त्रों और पुराणों को बदनाम करने की एक सोचीसमझी और बहुत बड़ी साजिश चल रही है। कई लोग सख्त कानून की कमी को भी मुख्य वजह बता रहे हैं। कुछ लोग विकृत दूरदर्शन, ऑनलाइन व बॉलीवुड कल्चर को भी बड़ी वजह मानते हैं। कई लोग लिव इन रिलेशनशिप और डेटिंग एप्स को दोष दे रहे हैं। इससे हिंदु पुरुषों को भी शिक्षा लेनी चाहिए और महिलाओं की अपेक्षाओं पर खरा उतरने की कोशिश करनी चाहिए। जिसके अंदर ध्यान-कुंडलिनी चित्र नहीं है, यदि वह भी यौनतंत्र का अभ्यास करे, तो उसका हाल भी अंधक जैसा हो सकता है, जैसा आपने ऊपर पढ़ा, फिर यदि जिसको यौनतंत्र का कखग भी पता नहीं, यदि वह यौनसंबंधों के मामले में मनमर्जी करे, तो उसका उससे भी कितना बुरा हाल हो सकता है, यह उपरोक्त हाल की घटना से प्रत्यक्ष देखने को मिल रहा है।

प्रेमरोग से बचने का बेजोड़ उपाय

दोस्तों, इस समस्या का हल भी है। सौभाग्य से आज “शरीरविज्ञान दर्शन~एक आधुनिक कुंडलिनी तंत्र(एक योगी की प्रेमकथा)” नामक पुस्तक ऑनलाइन और ऑफलाइन दोनों तरह से उपलब्ध है। यह ईबुक के रूप में भी और प्रिंट पुस्तक के रूप में भी उपलब्ध है। इसमें ऐसा लगता है कि शिवपुराण का विवेचन आधुनिक शैली में किया गया है, जो हर किसी को समझ आ जाए, और उसके बारे में गलतफहमी दूर हो जाए। यह सत्य जीवनी और सत्य घटनाओं पर आधारित है। इसमें आधारभूत यौनयोग पर सामाजिकता के साथ प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक में स्त्री-पुरुष संबंधों का आधारभूत सिद्धांत भी छिपा हुआ है। यदि कोई प्रेमामृत का पान करना चाहता है, तो इस पुस्तक से बढ़िया कोई भी उपाय प्रतीत नहीं होता। इस पुस्तक में प्रेमयोगी वज्र ने अपने अद्वितीय आध्यात्मिक व तांत्रिक अनुभवों के साथ अपनी सम्बन्धित जीवनी पर भी थोड़ा प्रकाश डाला है। इस उपरोक्त “शरीरविज्ञान दर्शन” पुस्तक को एमाजोन डॉट इन पर एक गुणवत्तापूर्ण व निष्पक्षतापूर्ण समीक्षा में पांच सितारा, सर्वश्रेष्ठ, सबके द्वारा अवश्य पढ़ी जाने योग्य व अति उत्तम (एक्सेलेंट} पुस्तक के रूप में समीक्षित किया गया है। गूगल प्ले बुक की समीक्षा में भी इसे फाईव स्टार व शांतिदायक (कूल) आंका गया है। कुछ गुणग्राही पाठक तो यहाँ तक कहते हैं कि अगर इस पुस्तक को पढ़ लिया तो मानो जैसे सबकुछ पढ़ लिया। आशा है कि पुस्तक पाठकों की अपेक्षाओं पर खरा उतरेगी।

कुंडलिनी योग को ही गंगा अवतरण की कथा के रूप में दिखाया गया है

अश्वमेध यज्ञ साक्षीपन साधना या विपासना का अलंकारिक शैली में लिखा रूप प्रतीत होता है

दोस्तों, हिन्दु दर्शन में गंगा के अवतरण की एक प्रसिद्ध कथा आती है। क्या हुआ कि राजा सगर के साठ हजार पुत्र थे। एक बार वे अश्वमेध यज्ञ करने लगे। यज्ञ के अंत में यज्ञ का घोड़ा छोड़ा गया। देवराज को डर लगा कि अगर राजा सगर का वह सौवां अश्वमेध यज्ञ सफल हो गया तो सगर को उसका इंद्र का पद मिल जाएगा। इसलिए उसने घोड़े को चुराकर पाताल लोक में कपिल मुनि के आश्रम के बाहर बाँध दिया। सगरपुत्रों ने समझा कि घोड़े को कपिल मुनि ने चुराया था। इसलिए वे उन्हें अपशब्द कहने लगे। इससे जब कपिल मुनि ने आँखें खोलीं तो वे उनसे निकले तेज से खुद ही भस्म हो गए। फिर इससे दुखी होकर राजा सगर कपिल मुनि से क्षमा मांगने लगे और अपने पुत्रों के उद्धार का उपाय पूछने लगे। फिर उन्होंने गंगा नदी से उनका उद्धार होने की बात कही। फिर इतना बड़ा काम कोई नहीं कर सका। सगर के बाद की कई पीढ़ियों के बाद जन्मे भागीरथ ने ब्रह्मा से वरदान में माँ गंगा को माँगा और शिव से उसे जटा में धारण करने की प्रार्थना की। उनकी इच्छा पूरी हुई और गंगा नदी ने उन भस्मित सगर पुत्रों की राख के ऊपर से गुजर कर उनका उद्धार किया।

गंगा नदी के जन्म की कथा का कुंडलिनीविज्ञान आधारित विश्लेषण

राजा सगर संसार-सागर का प्रतीक है। मतलब संसार में आसक्त आदमी। साठ हजार पुत्र हजारों इच्छाओं व भावनाओं के प्रतीक हैं। अश्वमेध यज्ञ का मतलब इन्द्रियों का दमन है। मेध का मतलब बलि या वध होता है। अश्व की बलि मतलब इन्द्रियों की बलि। अगर बाह्य इन्द्रिय रूपी अश्व की बलि अवचेतन मन रूपी हवनकुण्ड में दी जाए और उससे दबे हुए विचारों को उघाड़ने के रूप में अग्नि प्रज्वलित की जाए तो स्वाभाविक है कि उससे मुक्ति रूपी स्वर्ग मिलेगा। उस यज्ञ से देवता प्रसन्न होते हैं क्योंकि पूरे शरीर को देवताओं ने ही बनाया है और वे ही उसे नियंत्रित करते हैं, जैसे कि आँख को सूर्य देव, भुजाओं को इंद्र आदि। इससे परमात्मा-निर्देशित देवताओं का उद्देश्य पूरा होता है, क्योंकि बारबार के जन्ममरण आदि के दुःख से जीव को मुक्ति दिलाकर उसे अपना सर्वोत्तम पद प्रदान करना ही जीवविकास के पीछे मुख्य वजह प्रतीत होती है। इस उद्देष्य की पूर्ति से देवताओं को शक्ति मिलती है। इसीलिए कहा गया है कि यज्ञ से देवता प्रसन्न होते हैं और वर्षा आदि उचित समय पर करवाकर धनधान्य में वृद्धि करते हैं। प्रत्यक्ष लाभ यह तो होता ही है कि लोगों के बीच आपसी मनमुटाव नहीं रहता और एकदूसरे से प्रेम और सहयोग बना रहता है, जिससे सकारात्मक विकास होता है। एकबार ऐसा यज्ञ करने से काम नहीं चलता। यज्ञ पूरी उम्र भर लगातार करते रहना पड़ता है। यह अवचेतन मन बहुत गहरे और आकर्षक कुएँ की तरह है, जिससे बाहर निकला विचारों का कचरा फिर से उसमें गिरता रहता है, हालांकि फिर ऊपर ही रहता है, और बारम्बार के प्रयास से स्थायी रूप से बाहर निकल जाता है। हो सकता है कि किसी वार्षिक उत्सव की तरह साल में एक बार विचारों के कचरे को विस्तार से बाहर निकालने की जरूरत हो। उसे अश्वमेध यज्ञ कहते हों। इसीलिए सौ साल की पूरी उम्र में सौ यज्ञ हुए। सौवां यज्ञ न होने से जीवन के अंतिम वर्ष में पैदा हुए विचारों और भावों का कचरा अवचेतन मन में दबा रह जाता हो, जो आदमी को मुक्त न होने देता हो। हमारी दादी माँ हमें एक दंतकथा सुनाया करती थी। एक स्वर्ग को जाने वाली रस्सी थी। उस पर सावधानी से चलते हुए लोग स्वर्ग जाया करते थे। एक बार एक बुढ़िया एक योगी को उस पर जाते हुए देख रही थी। उसने योगी को आवाज लगाई कि उसे भी साथ ले चल। योगी को उस पर दया आ गई और उसका हाथ पकड़कर उसे भी रस्सी पर चलाने लगा। पर योगी ने एक शर्त रखी कि वह पीछे मुड़कर अपने भाई-बंधुओं को उससे बिछड़ने के दुःख में रोते-बिलखते नहीं देखेगी। अगर उसने पीछे देखा तो उसका संतुलन बिगड़ जाएगा और वह वापिस धरती पर गिर जाएगी। बुढ़िया ने उसकी शर्त मान ली। पर रास्ते में उससे रहा नहीं

गया, और जैसे ही उसने नीचे को देखा, वह नीचे गिर गई, पर योगी बिना उसकी तरफ देखे आगे निकल लिए। ऐसी दंतकथाओं के बहुत गहरे और ज्ञानविज्ञान से भरे अर्थ होते हैं।

मन की सफाई तो अंततः विपासना से ही होती है, जो एक शांत किस्म का ध्यानयोग है

वैसे कुंडलिनी जागरण, आत्मज्ञान वगैरह-वगैरह से मुक्ति नहीं मिलती। इनसे तो विचारों या कर्मों के दबे कचरे की सफाई में मदद भर मिलती है, अगर कोई लेना चाहे तो। अगर कोई न लेना चाहे तो अलग बात है। इसीलिए आजकल कुंडलिनी जागरण जैसे मस्तिष्क झकझोरने वाले अनुभव का ज्यादा प्रचलन व महत्त्व नहीं रह गया है, अगर सच कहूँ तो। वैसे भी आज के व्यस्त, तकनीकी और अध्ययन से भरे युग में दिमाग़ पर पहले से ही बहुत दबाव है। वह और कितना दबाव झेलेगा जागृति के नाम पर। अधिकांश लोगों को एकांत व शांति तो नसीब होना बहुत मुश्किल है। अत्यधिक मस्तिष्क दबाव से कहीं पार्किंसन, अलजाइमर जैसे लाइलाज मस्तिष्क रोग हो गए तो। पर ये मेरे नहीं कुछ अन्य योगियों के विचार हैं। दरअसल ऐसा होता नहीं अगर अपनी सहनशक्ति की सीमा के अंदर रहकर और सही ढंग से ध्यानयोग या कुंडलिनी जागरण किया जाए। ध्यान से हमेशा लाभ ही मिलता है। यह पैराग्राफ कुछ अन्य लोगों के विचारों को परखने के लिए लिख रहा हूँ। सही अर्थों में आजकल तो शांत विपश्यना अर्थात साक्षीभाव साधना का युग है। वैसे विपासना भी एक ध्यान ही है, शांत, सरल, स्वाभाविक व धीमा ध्यान। अगर भैंस खुद ठीक रस्ते पे जा रही है तो उसे डंडे क्यों मारने भाई। कचरा ही साफ करना है न, तो सीधे जाके कर लो, टेढ़ेमेढ़े रास्ते से क्यों भागना। बाहर स्थित विचारों का कचरा कभी कभार अगर दिख भी जाए तो भी वह शुद्ध ही होता है क्योंकि उससे लगाव या क्रेविंग पैदा नहीं होता। यह भी कह सकते हैं कि विपासना से आदमी शांत, तनावमुक्त और हल्का हो जाता है, जिससे खुद ही उसका मन कुंडलिनी ध्यान को करता है। उससे और कुंडलिनी जागरण से विपासना में और मदद मिलती है, बदले में विपासना से कुंडलिनी ध्यान और ज्यादा मजबूती प्राप्त करता है। इस तरह से विपासना और कुंडलिनी ध्यान साधना एकदूसरे को बढ़ाते रहते हैं।

ध्यानयोग या ध्यान यज्ञ ही असली यज्ञ है, और इन्द्रियों का दमन ही पशुबलि है

इन्द्रियों को शास्त्रों में घोड़े या पशु की उपमा दी जाती है। पशुपति अर्थात इन्द्रियों का पति भगवान शिव का ही एक नाम है। जैसे पशु का झुकाव आंतरिक आत्मा की बजाय बाहरी दुनिया की तरफ होता है, उसी तरह बाह्य इन्द्रियों का भी। आदमी की उम्र सौ साल होती है। उसके बाद मृत्यु मतलब स्वर्ग की प्राप्ति। स्वर्ग को जीते जी प्राप्त नहीं किया जा सकता। मुक्ति तो देवराज इंद्र के लिए भी स्वर्ग है। इसीलिए इस परम स्वर्ग की प्राप्ति को इंद्र अपना अपमान मानता है कि कोई कैसे उससे और उसके द्वारा नियंत्रित तीनों लोकों से ऊपर उठ सकता है। हालांकि देवताओं के साथ इंद्र भी आदमी की मुक्ति से बल प्राप्त करता है, पर यह अहंकार जो है न, वह अपना भला-बुरा कब देखने देता है। सौवें घोड़े को पाताल में बाँधने का अर्थ है कि इंद्र ने इन्द्रियों की शक्ति को मूलाधार के अंधकार भरे क्षेत्र में स्थापित कर दिया। शरीर इंद्र के द्वारा संचालित है। शरीर की अतिरिक्त शक्ति कुदरती तौर पर खुद ही मूलाधार को चली जाती है, इसीलिए इंद्र से इसका नाम जोड़ा गया है। इतना तो सबको पता ही है कि नाभि चक्र को चली जाती है, इसीलिए जब कोई काम और तनाव न हो तो बहुत भूख लगती है और खाना भी अच्छे से पचता है। उससे शरीर में और शक्ति बढ़ती है। वह वहाँ से स्वाधिष्ठान चक्र को उतरती है क्योंकि शक्ति की चाल की दिशा ऐसी ही है। वहाँ अगर उससे यौनता से संबंधित काम लिया गया तो वह पीठ से दुबारा ऊपर चढ़कर पूरे शरीर में आनंद के साथ फैल जाती है या बाहर निकल कर बर्बाद हो जाती है। अगर वह काम भी नहीं लिया गया तो वह मूलाधार को उतरकर वहीं पड़ी रहती है। अगर कभी थकान व तनाव देने वाला खूब काम किया जाए तो वह वहाँ से पीठ से होते हुए संबंधित थके हुए अंग तक पहुंच कर उसकी मुरम्मत करती है, नहीं तो वहीं सोई रहती है। मूलाधार में शक्ति का सोया हुआ होना इसलिए भी कहा गया होगा क्योंकि जब हम मन में नींद-नींद का लगातार

उच्चारण करते हैं तो शक्ति आगे के चक्रों से नीचे जाते हुए महसूस होती है और वापिस ऊपर नहीं चढ़ती। अगर चढ़ती है, तो एकदम से नीचे उतर जाती है। अगर शक्ति को नीचे आने में रुकावट लग रही हो, तो मस्तिष्क से गले तक तो आ ही जाती है। इसके साथ एकदम से शांति और राहत महसूस होती है, और ऐसा लगता है कि मस्तिष्क दाब और रक्तचाप एकदम से कम हुआ। हरेक चक्र में शक्ति काम करती है, पर मूलाधार में आमतौर पर नहीं, क्योंकि वह शक्ति का शयनकक्ष है। वहाँ शक्ति को जगा कर करना पड़ता है। हरेक चक्र के साथ विभिन्न अंग जुड़े हैं। वैसे तो मूलाधार के साथ भी गुदामार्ग जुड़ा है, पर वह स्वाधिष्ठान से भी जुड़ा है। मुझे लगता है कि मूलाधार वाले सभी काम स्वाधिष्ठान चक्र भी कर लेता है। जागृति का स्थान मस्तिष्क है, इसलिए स्वाभाविक है कि शक्ति मस्तिष्क से जितना ज्यादा दूर होगी, वह वहाँ उतनी ही ज्यादा सोई हुई होगी। शास्त्रों में नाभि चक्र को यज्ञ कुंड भी कहा जाता है जहाँ भोजन रूपी आहुति जलती रहती है। इसका यह मतलब नहीं कि बाहरी या भौतिक स्थूल यज्ञ की जरूरत नहीं। दरअसल बाहरी यज्ञ भीतरी कुंडलिनी यज्ञ को प्रेरित भी करता है। समारोह आदि में भौतिक हवन यज्ञ करते हुए मुझे कुंडलिनी की क्रियाशीलता महसूस होती है। हाँ इतना जरूर किया जा सकता है कि भौतिक यज्ञ के नाम पर भौतिक संसाधनों का बेवजह दुरुपयोग न हो।

शक्ति नीचे से ऊपर चढ़ती है, पर अवचेतन मन का निवास मूलाधार और स्वाधिष्ठान पर होने के कारण वह सहस्रार से नीचे जाते हुए दिखाई गई है

मूलाधार में कपिल मुनि का आश्रम मतलब वहाँ मूलाधर चक्र का पवित्र अधिष्ठाता देवता है। उसे अपशब्द कहना मतलब मूलाधार को अपवित्र मानना। सगर का साठ हजार पुत्र उसे ढूंढने भेजना मतलब आदमी द्वारा अपनी खोई हुई शक्ति अर्थात इन्द्रिय शक्ति अर्थात कुंडलिनी शक्ति को प्राप्त करने के लिए हजारों इच्छाओं व भावनाओं को खुले छोड़ देना मतलब संसार में हर तरफ अपना डंका बजाने की कोशिश करना। शास्त्र कहते हैं कि जैसे जंगल में भटकने वाले को जल्दी रत्न मिल जाता है, उसी तरह दुनिया में भटकने वाले को जल्दी ही मूलाधार और उसमें सोई शक्ति मिल जाती है। यह बहुत बड़ी शिक्षा है, जिसके अनुसार दुनिया में भटकते हुए थकने के बाद आदमी बाह्य इन्द्रियों से ऊबकर अवचेतन मन में डूबने लगता है। पर यह तभी होता है अगर आदमी अद्वैत व अनासक्ति के साथ दुनिया में जीवनयापन कर रहा हो, नहीं तो दुनिया के लोग उसका अवचेतन मन में भी पीछा नहीं छोड़ते और उसे वहाँ से भी बाहर खींच लाते हैं और उसे ध्यानसाधना नहीं करने देते। इससे साफ है कि आम आदमी को आध्यात्मिक तरक्की के लिए अद्वैत और अनासक्ति का भाव बना के रखना बहुत ज्यादा जरूरी है। जैसे इस कथा में पाताल समुद्र से नीचे है और समुद्र से होकर ही वहाँ तक रास्ता जाता है, उसी तरह मूलाधार चक्र भी सभी दुनियावी (शास्त्रों में संसार को भी समुद्र कहा गया है) चक्रों के नीचे है, और पाताल की तरह ही सुषुप्त लोक जैसा है। तभी तो अवचेतन कह रहे इसको। वहाँ मुनि कपिल को देखना मतलब सांख्ययोग व जैन धर्म के मूल प्रवर्तक को ध्यान रूप में देखना। जैनी मुनि भी दिगंबर अर्थात नग्न अवस्था में रहते हैं। मुनि को अपशब्द कहते हुए उन पर चोरी का इल्जाम लगाना मतलब उनको पता चलना कि इस ध्यान चित्र ने ही शक्ति को नीचे खींच कर अपने पास कैद किया है। किसी चीज का अपमान करके आदमी उससे भरपूर फायदा नहीं उठा सकता।अगर मूलाधार को छि-छि करते रहोगे, तो उस पर कुंडलिनी छवि का ध्यान करके उसे जगाओगे कैसे। उस छवि पर ही अगर ऐसा इल्जाम लगाओगे कि इसने मेरी सारी शक्ति छीन ली है, तो उसे और शक्ति कैसे दोगे। अतिरिक्त या अन्यूजड शक्ति तो उसमें जाएगी ही, अनजाने में और वहाँ सुषुप्त पड़ी रहेगी। वह शक्ति वहाँ तभी अवचेतन मन को उघाड़ पाएगी, यदि उसे ऐसा करने का मौका दोगे और उसके साथ सहयोग करोगे। तभी तो आपने देखा होगा कि सेक्सी किस्म के लोग बहुत गहराई से देखने और सोचने वाले होते हैं। यह इसलिए क्योंकि उनके मन में ज्यादा कचरा नहीं होता। वे अपनी मूलाधार स्थित यौन शक्ति से मन के कचरे को लगातार साफ करते रहते हैं, और दूसरी तरफ साफसुथरे होने का और यौनता से दूरी

रखने का दिखावा करने वाले अंदर से अवचेतन मन के कचरे से भरे होते हैं। सेक्सी आदमी स्पष्टवादी और तेज दिमाग लिए होते हैं। उनका ध्यान शरीर के दूसरे क्षेत्रों की बजाय मूलाधार क्षेत्र में ज्यादा टिका होता है। हालांकि चेहरा और मूलाधार आपस में जुड़े होते हैं। मुनि की दृष्टि रूपी क्रोधाग्नि से उन साठ हजार पुत्रों का भस्म होना मतलब मन के सभी विचारों और भावनाओं का मूलाधार में शक्ति के साथ सो जाना। मतलब कुंडलिनी शक्ति अवचेतन मन को साथ लेकर सुषुप्तावस्था में चली गई। सगर वंश में कई पीढ़ियों के बाद भागीरथ नामक एक महापुरुष हुआ जो गंगा को लाने में स्मर्थ हुआ जिसने सभी सगरपुत्रों को जीवित करके मुक्त कर दिया मतलब व्यक्ति कई जन्मों के बाद इस काबिल हुआ कि सुषुम्ना को जागृत करके कुंडलिनी जागरण को प्राप्त कर सका जिससे अवचेतन मन (पाताल लोक समतुल्य) में दबे हुए विचार और भावनाएं आनंद, अद्वैत व आनंद के साथ अभिव्यक्त होते गए और ब्रह्म में विलीन होते गए। भागीरथ ने घोर तपस्या की मतलब कुंडलिनी योग किया। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर वर दिया मतलब कुंडलिनी सहस्रार में क्रियाशील हो गई। सहस्रार चक्र भी कमल की तरह है और ब्रह्मा भी कमल पर बैठते हैं। कैलाश पर रहने वाले शिव ने गंगा को अपनी जटाओं में धारण किया मतलब सुषुम्ना नाड़ी में बहती हुई चेतना रेखा सहस्रार में समाहित हो जाती है। सहस्रार चक्र बालों से भरे हुए सिर के अंदर ही होता है। कई जगह सहस्रार को कैलाश पर्वत की उपमा दी जाती है। वह गंगा स्वर्ग लोक से आई मतलब सुषुम्ना में बहती हुई शक्ति से सहस्रार चक्र दिव्यता अर्थात दिव्य लोक के साथ जुड़ जाता है जिसे कुंडलिनी जागरण के दौरान का अनुभव कहते हैं। दरअसल अवचेतन मन का स्थान भी मस्तिष्क ही है, पर क्योंकि वह मुलाधार से ऊपर आती सुषुम्ना-शक्ति से जागता है, इसलिए कहा जाता है कि वह मूलाधार चक्र में शक्ति के साथ सुषुप्तावस्था में फंसा हुआ था। इसी तरह अगर अवचेतन मन को ध्यान लगाकर उघाड़ने लगो तो मूलाधार और सुषुम्ना क्रियाशील होने लगते हैं। मतलब ये तीनों आपस में जुड़े हैं। इसीलिए इस मिथकीय कहानी में कहा गया है कि गंगा मतलब सुषुम्ना शक्ति स्वर्ग मतलब जागृति के सर्वव्यापी व सर्वानन्दमयी अनुभव से कैलाश मतलब मस्तिष्क को आई, वहाँ से नीचे हिमालय मतलब रीढ़ की हड्डी से उतरते हुए महासागर अर्थात दुनिया अर्थात विभिन्न चक्रोँ से गुजरते हुए पाताल लोक मतलब मूलाधार चक्र में पहुंची। होता उल्टा है दरअसल, मतलब शक्ति नीचे से ऊपर चढ़ती है। फिर कहते हैं कि भागीरथ गंगा के साथ-साथ चलता रहा, और जहाँ भी उसका मार्ग अवरुद्ध हो रहा था, वहाँ-वहाँ वह उस अवरोध को हटा रहा था। यह ऐसे ही है जैसे आदमी बारीबारी से चक्रोँ पर ध्यान लगाते हुए शक्ति के अवरोधों को दूर करता है। चक्र-ब्लॉक ही वे अवरोधन हैं। तथाकथित अंतर्राष्ट्रीय भगोड़े इस्लामिक विद्वान और आतंकवाद के आरोपों से घिरे जाकिर नईक जैसे लोगों को यह ब्लॉग जरूर फॉलो करना चाहिए, क्योंकि वह हिंदु शास्त्रों के मिथकीय पक्ष को तो उजागर करके दुष्प्रचार से उन्हें बदनाम करने की कोशिश करते हैं, पर उनके वैज्ञानिक पक्ष से अपरिचित हैं।

कुंडलिनी योग ही सभी धर्मों की रीढ़ है, इसपर आधारित इनका वैज्ञानिक विश्लेषण इनके बीच बढ़ रहे अविश्वास पर रोक लगा सकता है

आक्रमणकारियों से शास्त्रों की रक्षा करने में ब्राह्मणों की मुख्य भूमिका थी

कई बार कट्टर किस्म के लोग छोटीछोटी विरोधभरी बातों का बड़ा बवाल बना देते हैं। अभी हाल ही में दिल्ली के जवाहर लाल यूनिवर्सिटी (जेएनयू) की दीवारों पर लिखे ब्राह्मण विरोधी लेख इसका ताज़ा उदाहरण है। यह सबको पता है कि यह तथाकथित पिछड़े वर्णों ने नहीं लिखा होगा। हिंदु समुदाय के बीच दरार पैदा करने के लिए यह तथाकथित निहित स्वार्थ वाले बाहरी लोगों की साजिश लगती है। ऐसा सैंकड़ों सालों से होता चला आ रहा है। दरअसल यह सामाजिक कर्मविभाजन था, जिसे वर्ण व्यवस्था कहते थे। इसमें सभी बराबर होते थे, केवल यही विशेष बात होती थी कि वंश परम्परा से चले आए काम को करना ही अच्छा समझा जाता था, जैसे व्यापारी का बेटा भी अपने पिता के व्यापार को संभालता है। जबरदस्ती कोई नहीं थी, क्योंकि शूद्र वर्ण के बाल्मीकि ने रामायण लिखी है, विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण बन गए थे। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं। हालांकि ज्यादातर लोग अपने ही वर्ण का काम सँभालने में ज्यादा गौरव, सम्मान और गुणवत्तापूर्णता महसूस करते थे। जैसे वर्णमाला के वर्ण अपना अलग-अलग विशिष्ट रूप-आकार लिए होते हैं, वैसे ही समाज के लोग भी अलग-अलग रूपाकार के कर्म करते हैं। अगर कर्म के अनुसार ही किसी का स्वभाव बन जाता हो, तो यह अलग बात है, पर ऐसा कभी नहीं हुआ कि सबको पंक्ति में खड़ा किया गया और शरीर के रंगरूप के अनुसार विभिन्न किस्म के समूह बनाए गए। वर्ण या वर्णभेद से मतलब रंग या रंगभेद बिल्कुल नहीं है, क्योंकि हरेक वर्ण के लोगों में हरेक किस्म के त्वचा-रंग के लोग मिलेंगे। इसी तरह यह परम्परा विदेशी कास्ट या जाति परम्परा की तरह भी नहीं है। यह नाम भी इसको गलतफहमी से दिया गया लगता है। रही बात ब्राह्मणों की तो यह बता दूँ कि सबसे कठिन जीवन उन्हीं का होता था। उनको विलासिता भरे जीवन से अपने को कोसों दूर रखना पड़ता था। फिर धनसम्पत्ति किस काम की अगर उसे भोग ही न सको। अधिकांशतः उनकी कमाई संपत्ति औरों के या परमार्थ के काम ही आती थी। दुनिया में ठगों की कमी न आज है, न पुराने समय में थी। पहली बात तो उनके पास सम्पत्ति होती ही नहीं थी। भिक्षाजीवी की तरह वे दक्षिणा में मिले मामुली से मेहनताने से अपना और अपने परिवार का गुजारा मुश्किल से चलाते थे। फिर बोलते कि राजा उन्हें बहुत सारी धनसंपत्ति दान में दिया करते थे। राजा भी कितनों को देंगे। कर वसूलने वाले इतनी आसानी से दान दिया करते तो आज कोई गरीब न होता। कुछेक ब्राह्मणों को अगर मुहमाँगा दिया गया होगा तो उसको हमेशा गिनते हुए सब पर तो लागू नहीं करना चाहिए। मुफ्त में तो राजा भी नहीं देते थे। जब उन्हें ब्राह्मण से कोई बड़ा ज्ञान प्राप्त होता था, तभी वे अपने आध्यात्मिक कल्याण के लिए दान देते थे। कहावत भी है कि फ्री लंच का अस्तित्व ही नहीं है। मैं ऐसा इसलिए लिख रहा हूँ, क्योंकि मुझे पता है। मेरे दादा खुद एक आदर्श हिंदु पुरोहित थे, जो लोगों के घरों में पूजापाठ किया करते थे। मैंने उनके साथ काम करते हुए खुद महसूस किया है कि आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करना और उसे दुनिया में बाँटना कितना मुश्किल और आभारहीन माने थैंकलेस काम है। ये काम ही ऐसा है, इसमें लोगों की गल्ती नहीं है। ये बातें अधिकांश लोगों को अब पुनः समझ में आने लग गई हैं। इसीका परिणाम है कि ब्राह्मणों के खिलाफ उक्त भड़काऊ लेखन के विरोध में सोशल मीडिया में "हैशटैग ब्राह्मण लाइफ मैटर्स" ट्रैण्ड किया। इसी तरह "हैशटैग मैं भी ब्राह्मण हूँ" भी ट्विटर पर काफी ट्रैण्ड रहा, जब क्रिकेटर सुरेश रैना के अपने आप को ब्राह्मण कहने का बहुत से वामपंथी किस्म के लोगों ने विरोध किया था। हम ये नहीं कह रहे कि सभी ब्राह्मण आदर्श हैं। पर इससे ब्राह्मणवाद को गलत नहीं ठहरा सकते। ब्राह्मणवाद ज्ञानवाद, बुद्धिवाद या अध्यात्मवाद का पर्याय है। अगर कहीं पर चिकित्सक निपुण नहीं हैं, तो उससे चिकित्सा विज्ञान झूठा नहीं हो जाता। आज जो हम इस ब्लॉग पर आध्यात्मिक ज्ञान से भरी जिन रहस्यवादी कथाओं के विश्लेषण का आनंद लेते हैं, वे अधिकांशतः ब्राह्मणों ने ही बनाई हैं। इन्हें आजतक सुरक्षित भी इन्होंने ही रखा है। अगर ब्राह्मण हमलावरों के आगे

झुक जाते तो न तो हिंदु धर्म का नामोनिशान रहता और न ही इस धर्म के रहस्यमयी ग्रंथों का। क्षत्रिय भी किसके लिए लड़ते, अगर ब्राह्मण ही डर के मारे धर्म बदल देते। किसी पर मनगढंत इल्जाम लगाना आसान है, पर अपने अहंकार को नीचे रखकर सच्ची प्रशंसा करना मुश्किल। फिर कहते हैं कि ब्राह्मण विदेशों से यहाँ आकर बसे। एक तो इसके स्पष्ट प्रमाण नहीं हैं, हमला करके आने के तो बिल्कुल भी नहीं, और अगर मान लो कि वे आए ही थे, तो यहाँ प्रेम से घुलमिलकर यहाँ की सरजमीं के सबसे बड़े रखवाले और हितैषी सिद्ध हुए। इसमें बुरा क्या है। हाँ, यह जरूर है कि जिस कुंडलिनी योग के आधार पर बने शास्त्रों और उनकी परम्पराओं का वे निर्वहन करते हैं, उसे वे समझें, प्रोत्साहित करें और हठधर्मिता छोड़कर उसके खिलाफ जाने से बचें।

विश्व के सभी धर्म और सम्प्रदाय कुंडलिनी योग पर ही आधारित हैं

शिवपुराण में भगवान शिव कहते हैं कि वे विभिन्न युगों में विभिन्न योगियों का अवतार लेकर उन-उन युगों के वेदव्यासों की वेद-पुराणों की रचना में सहायता करते हैं। वे लगभग 5-6 पृष्ठ के दो अध्यायों में यही वर्णन करते हैं कि किस युग में कौन वेद व्यास हुए, उन्होंने किस योगी के रूप में अवतार लेकर उनकी सहायता की और उनके कौन-कौन से शिष्य हुए। इससे स्पष्ट हो जाता है कि ध्यान योग माने कुंडलिनी योग ही सनातन धर्म की रीढ़ है। मुझे तो अन्य सारे धर्म सबसे प्राचीन सनातन धर्म की नकल करते हुए जैसे ही लगते हैं। इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि सभी धर्म योग पर ही आधारित हैं, और योग को सरल, लोकप्रिय व व्यावहारिक बनाने का काम करते हैं। जब सबसे योग ही हासिल होता है, तो क्यों न सीधे योग ही किया जाए। अन्य धर्म भी यदि साथ में चलते रहे, तो भी कोई बुराई नहीं है, बल्कि योग के लिए फायदेमंद ही है।

ध्यान ही सबकुछ है

साथ में महादेव शिव कहते हैं कि ध्यान के बिना कुछ भी संभव नहीं है। वे कहते हैं कि केवल ध्यान से ही मोक्ष मिल सकता है, यदि ध्यान न किया तो सारे शास्त्र और वेदपुराण निष्फल हैं।

नए धर्म व नए योग स्टाइल बदलते दौर के साथ अध्यात्म को ढालने के प्रयास से पैदा होते रहते हैं

जमाने के अनुसार सुधार धर्म में भी होते रहने चाहिए। मतलब सुधार का मौका मिलता रहना चाहिए, यह जनता पर निर्भर करता है कि सुधार को स्वीकार करती है या नहीं। हालांकि इसके साथ षड्यंत्र से भी बचना जरूरी होगा, क्योंकि कई लोग दुष्प्रचार आदि तिकड़में लगाकर किसी घटिया सी रचना को भी बहुत मशहूर कर देते हैं। इसके लिए कोई निष्पक्ष संस्था होनी चाहिए जो रचनाओं की सही समीक्षा करके जनता को अवगत करवाती रहे। कट्टर बनकर यदि सुधार का मौका ही नहीं दोगे, तो धर्म जमाने के साथ कंधा से कंधा मिला कर कैसे चल पाएगा। सुधार का मतलब यह नहीं है कि पुरानी रचनाओं को नष्ट किया जाए। सम्भवतः इसी डर से सुधार नहीं होने देते कि इससे पुरानी रचना नष्ट हो जाएगी। पर यह सोच मिथ्या और भ्रमपूर्ण है। नए सुधारों से दरअसल पुरानी रचनाओं को बल मिलता है क्योंकि इनसे वे बाप का दर्जा हासिल करती हैं। आइंस्टीन के गुरुत्वाकर्षण के नए सिद्धांत से न्यूटन का पुराना सिद्धांत नष्ट तो नहीं हुआ। गुरुत्वाकर्षण तो वही है, बस उसको समझने के दो अलगलग तरीके हैं। इसी तरह ध्यान व अद्वैत को अध्यात्म की मूल विषयवस्तु मान लो। इसको प्राप्त कराने के लिए ही विभिन्न पुराण, मंत्र व पूजा पद्धतियाँ बनी हैं। हो सकता है कि इनमें सुधार कर के जमाने के अनुसार नई रचनाएं बन जाएं, जो इनसे भी ज्यादा प्रभावशाली हों, और ज्यादा लोगों के द्वारा स्वीकार्य हों। शरीरविज्ञान दर्शन भी एक ऐसा ही छोटा सा प्रयास है, हालांकि उसमें भी विकास की गुंजाईश है। मेरा व्यक्तिगत अनुभवरूपी शोध इसके साथ जुड़ा है। मतलब यह ऐसा दर्शन नहीं कि मन में आया और

बना दिया। जब मुझे इसकी मदद से जागृति का अनुभव हुआ, तभी इस पर प्रमाणिकता की मुहर लगी। यह अलग बात है कि साथ में उस सनातन धर्म वाली सांस्कृतिक जीवनचर्या का भी योगदान रहा होगा, जिसमें मैं बचपन से पला-बढ़ा हूँ। पर इतना जरूर लगता है कि कम से कम पचास प्रतिशत योगदान शरीरविज्ञान दर्शन का रहा ही होगा। अब आम जीवन में इतना शुद्ध शोध तो कहाँ हो सकता है कि अन्य सभी सहकारी कारणों को ठुकरा कर केवल एक ही कारण के असर को परखा जाए। दरअसल एक मेरे जैसे आम आदमी के पास इतना समय नहीं होता कि ऐसे सुधारों और विकास के लिए विस्तृत शोध किया जाए। जैसे ज्ञानविज्ञान के अन्य क्षेत्रों में विशेषज्ञ व अनुभवशाली शोध-वैज्ञानिकों की सेवा ली जाती है, वैसी ही अध्यात्म के क्षेत्र में भी ली जा सकती है। इसमें बुरा क्या है। पर समस्या यह है कि समर्पित शोधार्थी से ज्यादा पार्ट टाइम या हॉबी शोधार्थी ज्यादा अच्छा काम कर सकते हैं। मतलब कि अध्यात्म रोजाना के व्यवहार से ज्यादा जुड़ा होता है। एकाकीपन के शोध से व्यावहारिक नतीजे नहीं निकलते। यह भी समस्या है कि शोध के लिए जागृत व्यक्ति कहाँ से लाए। परीक्षा लेने वाले भी जागृत ही चाहिए। जागृत व्यक्ति को ही असली लक्ष्य का पता होता है। जिसको लक्ष्य की ही पहचान नहीं है, वह उसके लिए शोध कैसे करेगा। आज तक कोई मशीन नहीं बनी जो किसी की जागृति का पता लगा सके। अध्ययन के बल पर कुछ टोटके तो कोई भी ईजाद कर सकता है, पर ज्यादा असली व प्रामाणिक तो जागृत व्यक्ति का शोध ही माना जाएगा।

पुराण व अन्य धर्म संबंधित लौकिक साहित्य शहद के साथ मिश्रित की हुई कड़वी दवाई की तरह काम करते हैं

पिछली पोस्ट में मैं बता रहा था कि कैसे राजा भागीरथ गंगा नदी के प्रवाह में आई रुकावटों को हटा रहा था। हमारे दादा उस बात को शास्त्रों का हवाला देते हुए ऐसे कहा करते थे कि भागीरथ हाथ में कुदाली को लेकर गंगा के आगे-आगे चलता रहा और उसके जलप्रवाह के लिए जमीन खोद कर रास्ता बनाता रहा, जैसे कोई किसान सिंचाई की कूहल के लिए रास्ता मतलब चैनल बनाता है। मत भूलो, शरीर में शक्ति संचालन मार्ग को भी अंग्रेजी में चैनल ही कहते हैं। शब्दावली में भी कितनी समानता है। वे खुद एक छोटे से किसान भी थे। वैसे तो आलोचक विज्ञानवादी को यह बात अजीब लग सकती है, पर इसमें एक गहरा मनोवैज्ञानिक सबक छिपा हुआ है। यह बात मनोरंजक और हौसला बढ़ाने वाली है। साथ में यह अध्यात्मवैज्ञानिक रूप से बिल्कुल सत्य भी है, जैसा कि पिछली पोस्ट में दिखाया गया है। बेशक यह बात हमें स्थूल रूप में समझ नहीं आती थी, पर हमारे अवचेतन मन पर एक गहरा प्रभाव छोड़ती थी। उसी का परिणाम है कि कालांतर में हमारे को खुद ही यह रहस्य अनुभव रूप में समझ आया। पौराणिक ऋषि बहुत बड़े व्यावहारिक मनोवैज्ञानिक होते थे। वे जानते थे कि अनपढ़ और बाह्यमुखी जनता को सीधे तौर पर गहन आध्यात्मिक तकनीकें नहीं समझाई जा सकतीं, इसीलिए वे उन तकनीकों को व्यावहारिक, रहस्यात्मक और मनोरंजक तरीके से प्रकट करते थे, ताकि वे अवचेतन मन पर गहरा असर डालती रहें, जिससे आदमी धीरेधीरे उनकी तरफ बढ़ता रहे। सहज पके सो मीठा होय। एकदम से पकाया हुआ फल मीठा नहीं होता। ऐसी मिथकीय कथाओं पर लोगों की अटूट आस्था का ही परिणाम है कि वे आज तक समाज में प्रचलित हैं। किसीसे अगर पूछो कि उसे इन कथाओं से क्या लाभ मिला, तो वह पुख्ता तौर पर कुछ नहीं बता पाएगा, पर उन्हें पूजनीय व अवश्य पढ़ने योग्य जरूर कहेगा। कई कथाएं ऋषियों ने जानबूझ कर ऐसी बनाई हैं कि उनका रहस्योद्घाटन नहीं किया जा सकता। अगर सभी कुछ का पता चल गया तो विश्वास करने के लिए बचेगा क्या। ऋषि विश्वास और सस्पेंस की शक्ति को पहचानते थे। होता क्या है कि जब कुछ कथाओं के रहस्य से परदा उठता है, तो अन्य कथाओं की सत्यता पर भी विश्वास हो जाता है। वैसे गैरजरूरी कथाओं को उजागर करना ही नामुमकिन लगता है। जो कथा-रहस्य जितना ज्यादा जरूरी है, उसे उजागर करना उतना ही आसान है। वैसे धर्म के बारे ज्यादा कहने का मुझे बिल्कुल शौक नहीं है, पर कई बारे सीमित रूप में कहना पड़ता है, क्यकि अध्यात्म को धर्म के साथ बहुत पक्के से जोड़ा गया है, और कई बारे इनको अलग

करना मुश्किल हो जाता है।आज जब विभिन्न धर्मों के बीच इतना अविश्वास बढ़ गया है, तो यह जरूरी हो गया है कि उनका आध्यात्मिक व वैज्ञानिक रूप में वर्णन करके विरोधियों की शंका दूर कर दी जाए।

कुंडलिनी ऊर्जा इड़ा और पिंगला नाड़ियों से पकड़ में आने के बाद ही सुषुम्ना में आसानी से प्रविष्ट हो पाती है

मित्रों, मैं पिछले से पिछली पोस्ट में बता रहा था कि गंगा नदी का अवतरण कैसे हुआ। राजा सगर के साठ हजार पुत्र हजारों वासनाओं के प्रतीक हैं। सगर का मतलब संसार सागर मतलब शरीर में डूबा हुआ आदमी। हरेक जीवात्मा अपने शरीर रूपी संसार का राजा ही है। सारा संसार इस शरीर में ही है। सागर शब्द से ही सगर शब्द बना है। कहते हैं कि राजा सगर की पत्नि के गर्भ से एक घड़े जैसी आकृति पैदा हुई थी। उसमें चींटियों की तरह साठ हजार बच्चे थे। वे बाहर निकलकर बढ़ते गए और कालांतर में साठ हजार पूर्ण मनुष्य बन गए। मस्तिष्क भी तो घड़े जैसा ही है, जिसमें बहुत सूक्ष्म वासनाएं हजारों की संख्या में रहती हैं। इन्द्रियों के माध्यम से वे बाहर निकलकर चित्रविचित्र अनेकों रचनाओं व भावनाओं का निर्माण करती हैं, मतलब पूर्ण विकसित मनुष्य की तरह हो जाती हैं। मनुष्य क्या है, भावनामय रूप की एक विशेष अवस्था ही तो है। अनगिनत अवस्थाएं मतलब अनगिनत मनुष्य। महारानी गांधारी से भी इसी तरह सौ कौरव पुत्रों का जन्म हुआ था। हो सकता है कि इसके पीछे भी ऐसा ही कोई रहस्य छुपा हो। प्राइमरी स्कूल की शुरुआती कक्षाओं के दिनों की बात है। एक हिंदी कविता थी, 'कौरव सौ थे पांडव पांच, सगे भाइयों की संतान; पांडव वीर धरम के रक्षक, कौरव को था धन अभिमान'। मैं कक्षा के सभी बच्चों को समझाने की कोशिश करता कि किसी के सौ पुत्र होना असम्भव है, इसलिए 'सौ' की बजाय यह शब्द 'सो' है, मतलब 'जो थे सो थे', पर सभी बच्चे कहते कि गुरुजी ने 'सौ' ही कहा है। मैं उन्हें कहता कि उनसे सुनने में गल्ती हुई है। जब मैंने अपने तरीके से अध्यापक के बोलने पर कविता पढ़ी, तब उन्होंने मुझे सही किया। मुझे आश्चर्य हुआ पर उन्होंने उसकी वैज्ञानिक वजह नहीं बताई, और न ही मैंने पूछने की हिम्मत की। इतना गहरा विश्वास होता था ऐसी कथाओं पर, हालांकि ऐसा नहीं था कि कोई उसकी देखादेखी असल में भी सौ पुत्र पैदा करने की कोशिश करने लग जाता। हालांकि ऐसी कथाओं का जनसंख्या बढ़ाने में योगदान हो भी सकता है। ऐसी कथाओं में मानसिक छवियों को पुत्र रूप में दर्शाने का प्रचलन रहा है शास्त्रों में। यह अध्यात्मविज्ञान की दृष्टि से सही भी है क्योंकि जिस वीर्य से पुत्र की प्राप्ति होती है वही एक ऊर्जावान या जागृत विचार भी उत्पन्न कर सकता है। हो सकता है कि यदि हम उनके रहस्य समझ जाते, तो वे हमारे मन में वह मनोवैज्ञानिक सस्पेंस बना के न रखतीं, जो आदमी को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता रहता है।

प्रभावी व स्पष्ट नाक की तरह नासिका-दृष्टि का आध्यात्मिकता से भरा मनोवैज्ञानिक लाभ

दूसरा हम यह मुद्दा उठा रहे थे कि मूलाधार की शक्ति कैसे अवचेतन मन के कचरे को जलाती रहती है। नाक पर ध्यान बनाते ही किसी भी तनाव व थकान वाले स्थान पर एकदम से शांति मिलती है और अद्वैत के जैसा आनंद अनुभव होता है। मन में साक्षीभाव के साथ दृश्य उभरने लगते हैं, जिससे ऐसा लगता है कि मन का कचरा साफ हो रहा है। सांसों में सुधार होने लगता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि इससे ऊर्जा चैनल केंद्रीय रेखा में सक्रिय हो जाता है, जिसमें स्वाधिष्ठान व मूलाधार से शक्ति पीठ के रास्ते से ऊपर चढ़कर गोल लूप में प्रवाहित होने लगती है। एकदिन मैं एक निमंत्रण पर निकट की पाठशाला में वार्षिक पारितोषिक वितरण समारोह देखने गया। वहाँ बच्चे बहुत अच्छा रंगारंग कार्यक्रम प्रस्तुत कर रहे थे। उस दौरान यह सब मनोवैज्ञानिक लाभ मुझे बीचबीच में अपनी नाक के ऊपर नीचे की तरफ तिरछी नजर बना कर महसूस हुआ। साथ में नाक के अंदर स्पर्ष करती हवा पर भी ध्यान लगा रहा था। नाई से ताज़ा-ताज़ा शेव करवाई थी और फेस स्क्रब करवाया था, जिससे मूँछ बड़ी और स्पष्ट महसूस हो रही थी। सम्भवतः वह भी नाक की तरफ ध्यान खींच रही थी। हो सकता है कि मूंछ का प्रचलन इसी आध्यात्मिक लाभ के दृष्टिगत बना हो। लगता है कि बड़ी नाक वाले आदमी की आकर्षकता और सेक्सी लुक के पीछे यही बड़ी नाक और उससे उत्पन्न उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक लाभ है। वैसे भी नाक की तरफ ध्यान देता आदमी सुंदर, अंतरमुखी, आध्यात्मिक और अपने आप में

संतुष्ट लगता है। सम्भवतः इसीलिए नाक के ऊपर बहुत सी कहावतें बनी हैं, जैसे कि नाक पे दिया जलाना, अपने नाक की परवाह कर, अपनी नाक को ऊँचा रखो, अपनी नाक को बचा, नाक न कटने दे, अपनी नाक मेरे काम में न घुसा आदि-आदि। मुझे यह भी लगता है कि दूरदर्शन को दीवार पर आँखों की सीध में या उससे भी थोड़ा नीचे फिक्स करवाने से जो उसे देखने का ज्यादा मजा आता है, वह इसीलिए क्योंकि उसको देखते समय नाक पर भी नजर बनी रहती है, इससे ज्यादा ऊँचाई पर ऐसा कम होता या नहीं होता और साथ में गर्दन में भी दर्द आती है। कुछ एकसपर्ट तो यहाँ तक कहते हैं कि दूरदर्शन का ऊपरी किनारा आँखों की सीध में होना चाहिए, जैसे कम्प्यूटर मॉनिटर का होता है। साथ में मुझे नींद का मानसिक उच्चारण करने से भी शांति जैसी मिलती थी। नींद के मन में उच्चारण से सांस विशेषकर बाहर निकलती सांस ज्यादा चलती है, इससे सिद्ध होता है कि ऊर्जा एक्सहेलेशन माने निःश्वास से आगे के चैनल से नीचे उतरती है। प्राणायाम करते समय नाक को पकड़ते हुए उसी हाथ की एक अंगुली की टिप से आज्ञा चक्र बिंदु पर संवेदनात्मक दबाव बना कर रखने से भी मुझे शक्ति केंद्रीभूत माने सेन्ट्रलाईज़ड होते हुए महसूस होती है। मुझे तो आज्ञा चक्र और स्वाधिष्ठान चक्र को एकसाथ अंगुली से दबा कर रखने से अपना शरीर एकदम से शक्ति से रिचार्ज होता हुआ महसूस होता है। लगती यह तांत्रिक तकनीक अजीब है, पर बड़े काम की है। साँस अपनी मर्जी से चलने-रुकने दो, शक्ति को अपनी मर्जी से इड़ा या पिंगला या जहाँ मर्जी दौड़ने दो। अंततः वह खुद ही केंद्रीय सुषुम्ना चैनल में आ जाएगी, क्योंकि उसके दो कॉर्नर पॉइंट ऊँगली से जो दबाए हुए हैं, जिनसे पैदा हुई दाब की आनंदमयी सी संवेदना शक्ति को खुद ही सुषुम्ना में धकेल कर गोलगोल घुमाने लगती है। इससे शरीर के उस हिस्से तक पर्याप्त शक्ति आसानी से पहुंच जाती है, जहाँ उसकी जरूरत हो। जैसे थके हुए दिल तक, बेशक यह उपले शरीर के बाएं हिस्से में है। इसी तरह थकी हुई टांगों में। दरअसल ऊर्जा नाड़ी के उन दो कॉर्नर पॉइंट के बीच में चलती है, बीच रास्ते में वह कोई भी रास्ता अख्तियार कर सकती है। पसंदीदा रास्ता वही होता है, जिसमें कम अवरोध होता है। स्वाभाविक है कि शक्ति की कमी वाला रास्ता ही कम प्रतिरोध वाला होगा, क्योंकि वह शक्ति को अपनी ओर ज्यादा आकर्षित करेगा, और अपनी शक्ति को पूरा करने के बाद आगे भी जाने देगा। कई बार योगासन करते समय जब सांस रोकने से मस्तिष्क में दबाव ज्यादा बढ़ा लगता है, तब आज्ञा चक्र वाला बिंदु नहीं दबाता, सिर्फ नाक पर हल्का सा अवलोकन बना रहता है। उससे मस्तिष्क का दबाव एकदम से कम होकर निचले चक्रों की तरफ चला जाता है। दरअसल सुषुम्ना सीधे वश में नहीं आती। उसे इड़ा और पिंगला से काबू करके वहां से सुषुम्ना में धकेलना पड़ता है। इसीलिए आपने देखा होगा कि कई लोग माथे पर ऊर्ध्वत्रिपुण्ड लगाते हैं। इसमें दोनों किनारे वाली रेखाएं क्रमशः इड़ा और पिंगला को दर्शाती हैं, और बीच वाली रेखा सुषुम्ना को। यह ऐसे ही है जैसे बच्चा सीधा पढ़ने नहीं बैठता, पर थोड़ा खेल लेने के बाद पढ़ाई शुरु करता है। हालांकि सुषुम्ना में शक्ति ज्यादा समय नहीं रहती, कुछ क्षणों के लिए ही टिकती है। वैसे तो इड़ा और पिंगला में भी थोड़े समय ही महसूस होती है, पर सुषुम्ना से तो ज्यादा समय ही रहती है। ऐसे ही जैसे बच्चा पढ़ाई कम समय के लिए करता है, और खेलकूद ज्यादा समय के लिए। और तो और, एकदिन मैं दूरदर्शन पर किसी हिंदु संगठन के कुछ युवाओं को देख रहा था। उनके माथे पर लम्बे-लम्बे तिलक लगे हुए थे। किसी की पतली लकीर तो किसी की चौड़ी। एक सबसे चौड़ी, लंबी और चमकीली तिलक की लकीर से मेरी शक्ति बड़े अच्छे से सुषुम्ना में घूम रही थी, और मैं बड़ा सुकून महसूस कर रहा था। मैं बारबार उस तिलक को देखकर लाभ उठा रहा था। बेशक वह इतना बड़ा तिलक ऑड जैसा और हास्यास्पद सा लग रहा था। उसकी आँखों और चालढाल में भी व्यावहारिक अध्यात्म व अद्वैत नजर आ रहा था। दूसरे तिलकों से भी शक्ति मिल रही थी, पर उतनी नहीं। उनके चेहरों पर अध्यात्म का तेज भी उतना ज्यादा नहीं था। असली जीवन में तो तिलक लगाने वाले को भी अप्रत्यक्ष रूप से कुंडलिनी लाभ मिलता है, जब दूसरे लोग उसके तिलक की तरफ देखते हैं। इसका मतलब है कि सत्संग की शक्ति दूरदर्शन के माध्यम से भी मिल सकती है। गजब का आध्यात्मिक विज्ञान है यारो।

कुण्डलिनी ध्यान योग में विपासना अर्थात साक्षीभाव साधना का अत्यधिक महत्त्व है

विपासना साधना के लिए अति उपयोगी प्राणायाम कपालभाति

पिछली से पिछली पोस्ट में ही मैं विपासना के बारे में भी बता रहा था। मेरे अनुभव के अनुसार कपालभाति प्राणायाम भी विपासना में बहुत मदद करता है। सिर्फ सांस को बाहर ही धकेलना है। अंदर जैसी जाती हो, जाने दो। अपने को थकान न होने दो। तनावरहित बने रहो। जो रंगबिरंगे विचार उमड़ रहे हों, उन्हें उमड़ने दो। जो पुरानी यादें आ रही हों, उन्हें आने दो। वे खुद शून्य आत्मा में विलीन होती जाएंगी। दरअसल ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि मस्तिष्क में बिना किसी भौतिक वस्तुओं की सहायता के उनके प्रकट होने से आदमी को यह पता चल जाता है कि वे असत्य व आकाश की तरह सूक्ष्म हैं, पर भौतिक संसार के सम्पर्क में आने से भ्रम से सत्य व स्थूल जान पड़ते हैं। विपासना का सिद्धांत भी यही है। इसीलिए शास्त्रों में बारबार यही कहा गया है कि संसार असत्य है। सम्भवतः यह विपासना के लिए लिखा गया है, क्योंकि जब विपासना से संसार असत्य जान पड़ता है, तब संसार को असत्य जान लेने से विपासना खुद ही हो जाएगी। कपालभाति प्राणायाम से इसलिए विपश्यना ज्यादा होती है, क्योंकि व्यस्त दैनिक व्यवहार में भी हम ऐसे ही तेजी से और झटकों से सांस लेते हैं। जैसे ही कोई विचार आता है, ऐसा लगता है कि सांस के लिए भूख बढ़ गई, और अंदर जाने वाली सांस भी गहरी, मीठी, स्वाद व तृप्त करने वाली लगती है। अगर विचार को बलपूर्वक न दबाओ, तो इससे आगे से आगे जुड़ने से विचारों की श्रृंखला बन जाती है, और लगभग सारा ही मन घड़े से बाहर आ जाता है, जिसे पिछली पोस्ट की कथा में कहा गया है कि एक घड़े से सैंकड़ो या हजारों पुत्रों ने जन्म लिया। जो विचार-चित्र पहले से ही हल्का जमा हो, वह कम उभरता है। मतलब साफ है कि आसक्ति भरे व्यवहार से ही मन में कचरा जमा होता है। उसको विपासना से बारबार बाहर निकालना मतलब कचरा साफ करना। जैसे कढ़ाई में पक्के जमे मैल को बारबार धोकर बाहर निकलना पड़ता है, वैसे ही आसक्ति वाले विचार को बारबार निकालना पड़ता है।

आदमी को घूमक्कड़ की तरह रहना चाहिए, क्योंकि विपश्यना साधना नए-नए स्थानों व व्यक्तियों के सम्पर्क में आने से मजबूत होती है

पिछली पोस्ट में कहे रंगारंग कार्यक्रम को देखते हुए मेरे मन में नए-पुराने विचार साक्षीभाव व आनंद के साथ उमड़ रहे थे, और आत्मा में विलीन हो रहे थे। मतलब विपश्यना साधना खुद ही हो रही थी। दरअसल वह क्षेत्र मेरे लिए खुद ही विपश्यना क्षेत्र बना था। ऐसा होता है जब किसी स्थान के साथ एक पुराना व अज्ञात सा संबंध जुड़ता है, जो अपने गृहक्षेत्र से मिलता जुलता तो है, पर वहाँ के लोग नए आदमी को अजनबी व बाहरी सा समझ कर उसके प्रति तटस्थ से रहते हैं। विरोध तो नहीं कर पाते क्योंकि उन्हें भी नए व्यक्ति से अपनापन सा लगता है। इससे आदमी की शक्ति खुद ही दुappearing व रिश्तों के फालतू झमेलों से बची रहकर विपश्यना में खर्च होती रहती है। हमारे गाँव के जो देवता हैं, वे हमारे पुराने राजा हुआ करते थे। वे एकप्रकार से हमारे पूर्वज भी थे। उनके साथ हमारे पूर्वज पुरानी रियासत से नई रियासत को आए थे। नई रियासत में उन्होंने अपना घर उस जगह पर बनवाया, जहाँ से उन्हें अपनी पुरानी रियासत वाली पहाड़ी सीधे और हर समय नजर आती थी। अपने घर के ज्यादातर द्वार और खिड़कियां भी उन्होंने उसी पहाड़ी की दिशा में बनवाए थे। उनकी मृत्यु के बाद जब वहाँ उनका मंदिर बनवाया गया, तब भी उसका द्वार उसी दिशा में रखा गया। इसी तरह मेरी दादी माँ बताया करती थीं कि एक वैरागी साधु बाबा उनके गाँव में रहते थे, जो उन्हें बेटी की तरह प्यार देते थे। दादी का गाँव एक ऊँचे पहाड़ के शिखर के पास ही था। वह पहाड़ बहुत ऊँचा था, और आसपास के पहाड़ उसके सामने कहीं नहीं ठहरते थे। उस पहाड़ के शिखर पर आने का उनका मुख्य मकसद था, नीचाई पर बसे उनके अपने पुराने गांव का लगातार नजर में बने रहना, ताकि अच्छे से साधना हो पाती, और पुराने घर की याद विपासना के साथ बनी रहती अर्थात वह याद उनकी साधना में विघ्न न डालकर

लाभ ही पहुंचाती। वास्तव में, दुर्भाग्य से, धीरे-धीरे उनके परिवार के सभी सदस्य विभिन्न आपदाओं से कालकवलित हो गए थे। इस वजह से ढेर सारी दौलत भी मौत की भेंट चढ़ गई थी। इससे वे संसार के मोह से बिल्कुल विरक्त हो गए थे। व्यक्तिगत संबंध के मामले में भी यही आध्यात्मिक मनोविज्ञान काम करता है। किसी व्यक्ति के प्रति आकर्षण हो पर यदि वह बाहरी व विदेशी समझ कर प्यार करने वाले को ठुकरा दे तो विपश्यना खुद ही होती रहती है। मुझे बताते हुए कोई संकोच नहीं कि इस दूसरे किस्म की व्यक्तिगत संबंध की विपशयन से मेरी नींद में जागृति में बहुत बड़ा हाथ था।

हिंदु शास्त्रीय कथाएं एकसाथ दो अर्थ लिए होती हैं, भौतिक रूप में प्रकृति संरक्षक व आध्यात्मिक रूप में मनोवैज्ञानिक

हम इस पर भी बात रहे रहे थे कि इन कथाओं को पढ़ने का पूरा मजा तब आता है जब इनके पहेली जैसे रूप के साथ असली मनोवैज्ञानिक अर्थ भी समझ में आता है। कोई यह कह सकता है कि इन कथाओं से अंधविश्वास बढ़ता है। पर इनको मानने वालों ने इनके असली या भौतिक रूप पर ज्यादा अमल नहीं किया, इन पर अटूट श्रद्धा करके इनकी दिव्यता और पारलौकिकता को बनाए रखा। इनको पवित्र व पारलौकिक कथाओं की तरह समझा, लौकिक और भौतिक नहीं। वैसे ये कथाएं ज्यादा अमानवीय भी नहीं हैं। गंगा नदी को पूजने को ही कहा है, उसे गंदा करने को तो नहीं। इससे प्रकृति के प्रति प्रेम जागता है। वैसे भी नाड़ी विशेषकर सुषुम्ना नाड़ी नदी की तरह बहती है। नदी के ध्यान से संभव है कि नाड़ी की तरफ खुद ही ध्यान चला जाए। मतलब जो भी कथाएं हैं, दोनों प्रकार से फायदा ही करती हैं, भौतिक रूप से प्रकृति का संरक्षण करती हैं, और आध्यात्मिक रूपक के रूप में आध्यात्मिक उत्थान करती हैं। कुछ गिनेचुने मामले में मानवता के अहित में प्रतीत भी हो सकती हैं, जैसे कि मनु स्मृति के कुछ वाक्यों पर आरोप लगाया जाता है। पर आरोप के जवाब में ज्यादातर उनका आध्यात्मिक या पारलौकिक अर्थ ही लगाया जाता है, भौतिक नहीं। हमने तो अपने जीवन में उनके अनुसार चलते हुए कोई देखा नहीं, सिर्फ उन पर आरोप ही लगते देखे हैं। बहुत सम्भव है कि वे वाक्य मूल ग्रंथ में नहीं थे और बाद में उनको साजिश के तहत जोड़ दिया गया हो। इसके विपरीत कुछ अन्य धर्मों में मुझे अधिकांश लोग वैसी रहस्यात्मक कथाओं पर हूबहू चलते दिखाई देते हैं, उनके विकृत जैसे भौतिक रूप में। यहाँ तक कि वे उन कथाओं के आध्यात्मिक विश्लेषण व रहस्योद्‌घाटन की इजाजत भी नहीं देते, और जबरदस्ती ऐसा करने वालों को जरा भी नहीं बख्शते। जेहाद, काफीरों की अकारण हत्या, जबरन धर्मान्तरण जैसे उदाहरण आज सबके सामने हैं। हमने एक पोस्ट लिखी थी, जिसमें होली स्पिरिट व कुंडलिनी के बीच में समानता को प्रदर्शित किया गया था। दो-चार लोग किसी भी वैज्ञानिक तर्क को नकारते हुए उस पोस्ट को नकारने लगे। एक जेंटलमेन तो उसे शैतान व डेमन या शत्रु की कारगुजारी बताने लगे। वे इस बात को नहीं समझ रहे थे कि वह विभिन्न धर्मों के बीच मैत्री व समानता पैदा करने का प्रयास था। वे इस वैबसाईट में दर्शाए तंत्र को ओकल्ट या भूतिया प्रेक्टिस समझ रहे थे। हमें किसी भी विषय में पूर्वाग्रह न रखकर ओपन माइंडड होना चाहिए। हिंदु दर्शन में अन्य की अपेक्षा विज्ञानवादी सोच व तर्कशीलता को ज्यादा महत्त्व दिया गया है, और जबरदस्ती अंधविश्वास को बनाए रखने को कम, जहाँ तक मैं समझता हूँ। वैसे कुछ न कुछ कमियाँ तो हर जगह ही पाई जाती हैं। साथ में वे महोदय मुझे कहते हैं कि मैं किसी धर्म वगैरह से अपनी पहचान बना कर रखता हूँ। मैं जब हिंदु हूँ तो अपने हिंदु धर्म से पहचान बना कर क्यों नहीं रखूंगा। सभी धर्मों में अपनी विशिष्टताएं हैं। विभिन्न धर्मों से दुनिया विविध रंगों से भरी व सुंदर लगती है, हालांकि उनमें अवश्यँभावी रूप से अनुस्यूत मानव धर्म सबके लिए एकसमान ही है। पर फिर भी मैं अपने स्वतंत्र विचार रखता हूँ, और जो मुझे गलत या अंधविश्वास लगता है, उसे मैं नहीं भी मानता। मेरी लगभग हरेक पोस्ट में किसी न किसी हिंदु मान्यता का वैज्ञानिक व मानवीय स्पष्टीकरण होता है। मेरे धर्म की उदार और सर्वधर्मसमभाव वाली सोच का भला इससे बड़ा सीधा प्रमाण क्या होगा। एकबार हिंदी भाषा पढ़ाने वाले एक विद्वान व दार्शनिक अध्यापक से व्हट्सएप्प पर मेरी मुलाक़ात हुई थी। मैंने उन्हें बताया कि कैसे पाश्चात्य लोग योग में यहाँ

के स्थानीय हिंदु लोगों से ज्यादा रुचि ले रहे हैं। तो उन्होंने लिखा कि उनमें संस्कार नहीं होते। संस्कार मतलब पीढ़ियों से चली आ रही सांस्कृतिक परम्परा। अब मुझे उनकी वह बात समझ आ रही है कि कैसे संस्कारों की कमी से आदमी एकदम से उस परम्परा के खिलाफ जा सकता है, जिसको वह जीजान से मान रहा हो। संस्कार आदमी को परम्परा से जोड़ कर रखते हैं।

गांव शहर में भी बसता, तन से न सही मन से मानें

हम गाँवों के गबरू हैं तुम सा
शहर में जीना क्या जानें।
है गांव शहर में भी बसता तन
से न सही मन से मानें।
बस सूखी रोटी खाई है तुम सा शहद
में पला नहीं।
हमने न झेली न टाली ऐसी भी
कोई बला नहीं।
हमने न पेड़ से खाया हो फल
ऐसा कोई फला नहीं।
तब तक सिर को दे मारा है जब
तलक पहाड़ भी टला नहीं।
सिर मत्थापच्ची करते जब तुम
थे भरते लंबी तानें।
हम गाँवों -----
दिल-जान से बात हमेशा की तुम
सी घुटन में जिया नहीं।
है प्यार बाँट कर पाया भी नफ़रत
का प्याला पिया नहीं।
इक काम जगत में नहीं कोई भी
हमने है जो किया नहीं।
है मजा नहीं ऐसा कोई भी
हमने हो जो लिया नहीं।
फिर अन्न-भरे खेतों में खड़ के
दाना-दाना क्यों छानें।
हम गाँवों के ----
है इज्जत की परवाह नहीं
बेइज्जत हो कर पले बढ़े।
अपनों की खातिर अपने सर
सबके तो ही इल्जाम मढ़े।
कागज की दुनिया में खोकर भी

वेद-पुराण बहुत ही पढ़े।
हैं असली जग में भी इतरा कर
खूब तपे और खूब कढ़े।
बस बीज को बोते जाना था कि
स्वर्ण कलश मिलते न गढ़े
इस सोच के ही बलबूते हम तो
हर पल निशदिन आगे बढ़े।
फिर छोटा मकसद ठुकरा कर हम
लक्ष्य बड़ा क्यों न ठानें।
हम गाँवों के -----
जो शहर न होते फिर अपनी हम
काबिलियत को न पाते।
रहते अगर न वहाँ तो क्या है
घुटन पता कैसे पाते।
न लोकतंत्र से जीते गर ये
नियम-व्यवस्था न ढाते।
फिर बेर फली तरु न भाते गर
भेल पकौड़े न खाते।
हम साइलेंट जोन में न बसते तो
घाट मुरलिया न गाते।
हम रिमझिम स्नान भी न करते गर
नगर में न तनते छाते।
है रात के बाद सुबह आती तम से ही
लौ दमखम पाती।
है सुखदुख का चरखा चलता वह
न देखे जाति-पाति।
फिर अहम को अपने छोड़ के हम यह
सत्य नियम क्यों न मानें।
हम गाँवों ----
है ढोल-गंवार यही कहते बस
तुलसी ताड़न-अधिकारी।
है अन्न उगाता जो निशदिन वो
कैसे है कम अधि-कारी।
जो दुनिया की खातिर जाता हो
खेतों पर ही बलिहारी।
वो कम कैसे सबसे बढ़कर वो
तो मस्ती में अविकारी।
फिर ऊंच-नीच ठुकरा क्यों न हम
इक ही अलख को पहचानें।
हम गाँवों ---

कुछ लेखक अनुमोदित साहित्यिक पुस्तकें-

1) **Love story of a Yogi- what Patanjali says**
2) **Kundalini demystified- what Premyogi vajra says**
3) **कुण्डलिनी विज्ञान- एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान (पुस्तक 1,2, और 3)**
4) **The art of self publishing and website creation**
5) **स्वयंप्रकाशन व वैबसाईट निर्माण की कला**
6) **कुण्डलिनी रहस्योद्घाटित- प्रेमयोगी वज्र क्या कहता है**
7) **बहुतकनीकी जैविक खेती एवं वर्षाजल संग्रहण के मूलभूत आधारस्तम्भ- एक खुशहाल एवं विकासशील गाँव की कहानी, एक पर्यावरणप्रेमी योगी की जुबानी**
8) **ई-रीडर पर मेरी कुण्डलिनी वैबसाईट**
9) **My kundalini website on e-reader**
10) **शरीरविज्ञान दर्शन- एक आधुनिक कुण्डलिनी तंत्र (एक योगी की प्रेमकथा)**
11) **श्रीकृष्णाज्ञाभिनन्दनम**
12) **सोलन की सर्वहित साधना**
13) **योगोपनिषदों में राजयोग**
14) **क्षेत्रपति बीजेश्वर महादेव**
15) **देवभूमि सोलन**
16) **मौलिक व्यक्तित्व के प्रेरक सूत्र**
17) **बघाटेश्वरी माँ शूलिनी**
18) **म्हारा बघाट**
19) **भाव सुमन: एक आधुनिक काव्यसुधा सरस**
20) **Kundalini science~a spiritual psychology (books 1,2,and 3)**

इन उपरोक्त पुस्तकों का वर्णन एमाजोन, ऑथर सेन्ट्रल, ऑथर पेज, प्रेमयोगी वज्र पर उपलब्ध है। इन पुस्तकों का वर्णन उनकी निजी वैबसाईट https://demystifyingkundalini.com/shop/ के वैबपेज "शॉप (लाईब्रेरी)" पर भी उपलब्ध है। साप्ताहिक रूप से नई पोस्ट (विशेषतः कुण्डलिनी से सम्बंधित) प्राप्त करने और नियमित संपर्क में बने रहने के लिए कृपया इस वैबसाईट,"https://demystifyingkundalini.com/" को निःशुल्क रूप में फोलो करें/इसकी सदस्यता लें।

सर्वत्रं शुभमस्तु